आलोचनात्मक अध्ययन

आषाढ़ का एक दिन समीक्षा

रीगल बुक डिपो नई सड़क-दिल्ली ६

आलोचनात्मक अध्ययन

आषाढ़ का एक दिन : समीक्षा

प्रो० कृष्णमोहन अग्रवाल
एम० ए०

रीगल बुक डिपो, दिल्ली-६

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो,
नई सड़क, दिल्ली-६

संस्करण : द्वितीय, सन् १९७८

मूल्य : ४.५०

मुद्रक :
स्वतंत्र प्लेयिंग कार्ड कम्पनी,
सदर बाजार, दिल्ली

विषय-सूची

आषाढ़ का एक दिन

प्रश्न १—नाटक के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए उसमें 'आषाढ़ का एक दिन' का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—नाटक शब्द संस्कृत की 'नट्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है अनुकृति (नकल) या नृत्य करना। इस अर्थ के आधार पर नाटक का अर्थ सिद्ध होता है मानव-जीवन के विविध कृत्यों और भावों की अनुकृति या नकल करना। नाटक का उद्‌भव भारत में ही हुआ अथवा इसको हमने पाश्चात्य जगत् से अपनाया है, इस विषय में किंचित मत-वैभिन्य मिलता है। नाटकों के 'यवनिका' शब्द से आरम्भ में कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि हमारे नाटकों पर यूनानी नाटकों का प्रभाव है और इसलिए हमने यवन लोगों के प्रति आभार प्रकट करने के लिए उनका यवनिका शब्द ग्रहण किया है। किन्तु जैसा कि नाटक-सम्राट् जयशंकर 'प्रसाद' ने स्पष्ट किया है—यवनिका शब्द से यह सूचित नहीं होता कि हमारी नाटक-परम्परा यूनानियों के नाटकों से विकसित हुई है। अपितु जिस यवनिका शब्द के आधार पर (यवनिका का अर्थ होता है जल्दी-जल्दी उठने-गिरने वाला परदा) भारतीय नाटकों पर यूनान का प्रभाव बताया जाता है, उसके विषय में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यूनान के नाटकों में ड्राप-सीन (नाटक के परदे) का प्रयोग ही नहीं होता था।

भारत में नाटकों का प्रचलन कैसे आरम्भ हुआ इस सन्दर्भ में भारत के नाट्यशास्त्र में एक मनोरंजक कथा दी गई है। उसमें बताया गया है कि शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था, अतः ब्रह्मा ने नाटक नामक ऐसे पंच वेद की रचना की जिसमें सभी जातियां भाग ले सकें—

> "न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
> तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सर्ववर्णिकम्॥"

भारत के नाट्यशास्त्र में यह कथा भी मिलती है कि वैवस्वत मनु के दूसरे युग में प्राणी बहुत दुःखी थे। त्रासमयी दशा से परित्राण पाने के लिए इन्द्र और देवों ने मिलकर ब्रह्मा से यह निवेदन किया कि आप हमें मनोविनोद का कोई ऐसा साधन प्रदान कीजिए जिससे हम दुःख के क्षणों में अपना मन बहला

कर दुःखों से छुटकारा पा सकें। देवों की इस इच्छापूर्ति के लिए ब्रह्मा ने नाटक नामक पंचम वेद की रचना की थी। अभिप्राय यह कि नाटकों का जन्म मनोविनोद की दृष्टि से हुआ था और अपने इस गुण से वह आज तक ज्यों-की-त्यों समृद्ध है। यद्यपि आजकल नाटकों की अपेक्षा सिनेमा का अधिक प्रचार है, किन्तु सिनेमा भी तो नाटक का सगा भाई है—उसमें भी तो उन्हीं अभिनय, गीत-नृत्य आदि का सहारा लेते हुए मानव-जीवन की अनुकृति की जाती है, जो नाटक के प्राण तत्त्व होते हैं।

जहाँ तक नाटकों के विकास का प्रश्न है, संस्कृत-साहित्य में तो इनकी बड़ी समृद्ध परम्परा मिलती है। संस्कृत के भास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त आदि नाटककारों के नाटकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। हाँ, प्राकृत और अपभ्रंश में नाटकों की उतनी समृद्ध परम्परा नहीं मिलती। प्राकृत में रंभामंजरी और कर्पूरमंजरी जैसे कुछ ही सेट्टकों की रचना मिलती है। इन भाषाओं में रासक या रास नाम से जिन नाटकों की रचना की गई है, उनमें नाट्य-तत्त्वों का प्रायः अभाव ही है। हिन्दी भाषा के विकास के आरंभिक काल में गद्य का प्रचलन नहीं था। पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, विद्यापति की पदावली, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी आदि कवियों की कृतियाँ पद्यात्मक या काव्यात्मक ही हैं। एक तो हिन्दी में गद्य के अभाव, दूसरे मुस्लिम शासकों के नाटक-विरोधी दृष्टिकोण के कारण मुगल राज्यकाल में नाटकों का विकास नहीं हो पाया। हाँ, बाद में अवसर विशेषों पर रामलीला और रासलीला का अभिनय अवश्य प्रचलित हो गया था। सत्रहवीं शताब्दी में कुछ पद्यात्मक नाटक लिखे गए, जो रासलीला और रामलीला के अभिनय से प्रभावित और अनुप्रेरित कहे जा सकते हैं। इन पद्यात्मक नाटकों में उल्लेखनीय हैं—हृदयरामकृत हनुमन्नाटक, प्राणचन्द चौहानकृत रामायण महानाटक, ब्रजवासीलाल कृत प्रबोध चन्द्रोदय, नेवाजकृत शकुन्तला नाटक, महाराज विश्वनाथकृत आनन्द रघुनन्दन और गीता रघुनन्दन, गोपालदास (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता) कृत नहुष नाटक आदि। इस सन्दर्भ में डा० श्यामसुन्दर दास का यह अभिमत अवलोकनीय है—"यों कहने को चाहे हिन्दी में नेवाज कवि कृत शकुन्तला, हृदयरामकृत हनुमन्नाटक और ब्रजवासीलाल कृत प्रबोध चन्द्रोदय आदि कई सौ वर्ष पहले बने हुए नाटक वर्तमान हों, पर वास्तव में नाटयकला की दृष्टि से वे नाटक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनमें नाटकों के नियमों का

पालन नहीं किया गया है और वे काव्य ही हैं। हां, प्रभावती और आनंद रघुनंदन आदि कुछ नाटक अवश्य ऐसे हैं जो किसी प्रकार नाट्य की सीमा में आ सकते हैं।" वास्तव में हिन्दी नाटक का जन्म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों से ही हुआ। हिन्दी के नाटकों के विकास को स्थूलतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) भारतेन्दु-युग—(सन् १८५७ से १९१० ई०)

(२) प्रसाद-युग—(सन् १९११ से १९३३ ई०)

(३) प्रसादोत्तर-युग—(सन् १९३३ से अद्यावधि)

इन तीनों युगों के प्रमुख नाटककारों के नाटकों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

(१) भारतेन्दु-युग—भारतेन्दु-युग में मुख्यतया तीन प्रकार के नाटक लिखे गये--(क) अन्य भाषाओं से अनुवादित, (ख) पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गये नाटक, तथा (ग) मौलिक नाटक। अनुवादित नाटकों में बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी के नाटकों को हिन्दी में रूपान्तरित किया गया। पं० सत्यनारायण कविरत्न तथा स्वयं भारतेन्दुजी ने संस्कृत के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् १८६१ में राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् १८६८ में भारतेन्दुजी ने 'विद्या-सुन्दर' नामक नाटक का बंगला से छायानुवाद प्रस्तुत किया। तदनन्तर उनके अनेक मौलिक और अनुवादित नाटक प्रकाश में आए। अनुवादी नाटकों के क्षेत्र में अंग्रेजी-नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करने की दिशा में लाला सीताराम अग्रणी रहे, जबकि बंगला नाटकों का अनुवाद करने में सर्वाधिक योगदान पं० रूपनारायण पांडेय ने किया। इनके अतिरिक्त देवदत्त तिवारी, तोताराम, नन्दलाल, मथुराप्रसाद उपाध्यायं, ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि ने भी अन्य भाषाओं के नाटकों को हिन्दी में अनूदित रूप में प्रस्तुत किया।

पारसी नाटक कम्पनियों के लिए लिखे गये नाटकों के शिल्पविधान पर पारसी रंचमंच के विधान का बहुत प्रभाव है। पारसी कम्पनियों का हिन्दी के नाटकों की विकास की दिशा में विशेष योगदान तो नहीं है, हां उन्होंने पाश्चात्य रंगमंच के आधार पर अपने जिस रंगमंच का विकास किया था, उसका कुछ प्रभाव हिन्दी नाटकों के स्वरूप पर भी पड़ा। रौनक बनारसी, अहसान लखनवी, विनायकप्रसाद तालिब बनारसी, नारायणप्रसाद बेताब, आगा-

हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक के नाटक इसी श्रेणी के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। राधेश्याम कथावाचक का वीर अभिमन्यु तथा रौनक बनारसी के 'इन्साफे महमूद' और गुल बकावली अपने समय के अति प्रसिद्ध नाटक थे। इन नाटकों का दुर्बल पक्ष यह था कि पारसी कम्पनियों का मूलोद्देश्य लोगों का सस्ता मनोरंजन करके अधिक-से-अधिक मात्रा में पैसा बटोरना होता था, अतः उनमें अश्लील और फूहड़ दृश्यों की योजना की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। इन नाटकों की भाषा में उर्दू-फारसी के शब्दों का बाहुल्य मिलता है।

भारतेन्दु और उनके समकालीन मौलिक नाटककारों में से भारतेन्दुजी ने मौलिक और अनूदित कुल मिलाकर लगभग बीस नाटक लिखे हैं जिनमें से सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, नील देवी, भारत-दुर्दशा, चन्द्रावली और अन्धेर नगरी अधिक प्रसिद्ध हैं। धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस सत्य-हरिश्चन्द्र और कर्पूर मंजरी उनके प्रसिद्ध अनुवादित नाटक हैं जबकि उनके मौलिक नाटकों और प्रसहनों के नाम हैं—पाखण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम-योगिनी, विषस्य विषमौषधम्, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी और अन्धेर नगरी आदि। अपने नाटकों द्वारा भारतेन्दुजी ने देशवासियों में राष्ट्र-प्रेम की भावना जाग्रत करने की चेष्टा करते हुए, सामाजिक कुरीतियों पर मार्मिक प्रहार किए हैं। डॉ० सोमनाथ ने इनके नाटकों की महत्ता का आकलन करते हुए कहा है—"भारतेन्दु ने संस्कृत नाटक-शास्त्र की निर्धारित परम्परा में सबसे बड़ा परिवर्तन किया। नाटक के विषय को उन्होंने इतना विस्तृत और अनेक रूपी बना दिया कि लेखक के सामने कोई कठिनाई नहीं रही। ऐसा करने से नाटक में जीवन-प्रदर्शन करने की विशालता का समावेश हो गया और लेखक की विचारधारा सीमित न रहकर अनेक नवीन आख्यानों में लगी। पात्रों के चुनाव और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी परिधि को और अधिक विस्तृत कर दिया। सब प्रकार के पात्र लिए हैं और सबका चरित्र प्रत्येक पात्र के अनुकूल है, उपदेश प्रधान और यथार्थ भी।···उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें साहित्य भी है और अभिनीत होने की क्षमता भी।"

भारतेन्दुकाल में पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धित सभी प्रकार के विषयों को आधार बनाकर नाटक लिखे गए। ऐतिहासिक वर्ण्य-वस्तु पर लिखे गए नाटकों में उल्लेखनीय हैं—भारतेन्दु कृत नीलदेवी,

बैकुण्ठनाथ दुग्गलकृत श्रीहर्ष, राधाकृष्णदासकृत पद्मावती और महाराणा प्रताप, गोपालराम कृत यौवन योगिनी आदि। राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धित नाटकों में उल्लेखनीय हैं—भारतेन्दुकृत भारत-दुर्दशा, खड्गबहादुर मल्लकृत भारत-आरत, शरतकुमार मुखर्जीकृत भारतोद्धार, प्रतापनारायण मिश्रकृत भारत-दुर्दशा आदि। पौराणिक नाटकों में उल्लेखनीय हैं—दामोदर सप्रेम का रामलीला, शीतलप्रसाद त्रिपाठी का रामचरितावली, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन का महारास, अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रद्युम्न-विजय और रुक्मिणी परिणय।

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में से उल्लेखनीय हैं—श्री बालकृष्ण भट्ट जिन्होंने अग्रलिखित छह नाटक लिखे हैं—१. कविराज की सभा, २. रेल का विकट खेल, ३. कलिराज की सभा, ४. बाल-विवाह, ५. चन्द्रलेखा तथा ६. शर्मिष्ठा देवयानी। इसी प्रकार भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों के नाटक हैं—श्री निवासदासकृत संयोगिता-स्वयंवर, प्रह्लाद-चरित्र, रणधीर प्रेममोहिनी, प्रतापनारायण मिश्रकृत-गो-संकट, कलि-प्रभाव, हठी हमीर, जुआरी-खुआरी, राधाचरण गोस्वामीकृत अमरसिंह राठौर, सती चन्द्रावली आदि, राधाकृष्णदास कृत महाराणा प्रताप, दुखिनी बाला, श्रीदामा, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य, प्रयाग रामागमन, वृद्धविलाप, वारांगना रहस्य आदि। इनके अतिरिक्त अम्बिकादत्त व्यास, केशवदास, गजाधर भट्ट और किशोरीलाल गोस्वामी आदि लेखकों ने भी कुछ मौलिक नाटक लिखे हैं। इस युग में हिन्दी रंगमंच का जो विकास हुआ उसके विषय में डॉ० कृष्णदेव झारी के ये शब्द अवलोकनीय हैं—"इस युग में रंगमंच के निर्माण का भी बहुत स्तुत्य प्रयोग स्वयं भारतेन्दु बाबू ने किया। उन्होंने अपना धन व्यय कर कई स्थानों पर हिन्दी रंगमंच खड़ा किया। वे स्वयं भी कई बार अभिनय करते थे। इस काल के बहुत से नाटक उस समय काशी, इलाहाबाद, कानपुर आदि कई स्थानों पर सफलतापूर्वक अभिनीत हुए। भाषा की सरलता, रोचकता, हास्य-व्यंग्य, भाव-रसपूर्णता आदि विशेषताएँ इन नाटकों को सर्वसाधारण के मनोरंजन की उत्तम रचनाएँ बनाती थीं। पारसी रंगमंच के सस्ते, भद्दे मनोरंजन के जवाब में ये नाटक जनता की रुचि के परिष्कार के साधन बने। रंगमंच पर इनसे मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा का भी लाभ हुआ। फिर भी इस युग के नाटकों में नाट्यकला अपने शैशव काल में ही रही, नाट्यकला का पूर्ण विकास इस

युग में नहीं हुआ।"

प्रसाद-युग—बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसादजी स्वयं में ही एक युग थे। उन्होंने साहित्य की जिस किसी भी विधा का संस्पर्श किया वही सोना बन गयी है—क्या काव्य, क्या कहानी, क्या उपन्यास और क्या नाटक—प्रसादजी ने जो कुछ भी सृजन किया है, वही अनुपम-अनूठा सिद्ध होता है। उनको जहाँ आधुनिक काल के सर्वोत्कृष्ट कवि के रूप में समाहृत किया जाता है, वहीं उन्हें नाटक सम्राट की पदवी से भी विभूषित किया जाता है। हिन्दी नाटक के पादप को यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मण्डल एवं काल के नाटककारों ने आरोपित करके कुछ-कुछ परिवर्द्धित भी किया था, किन्तु उसके पुष्पित और फलित होने का काल प्रसाद-युग ही है। प्रसादजी ने नाटकों की वर्ण्य-वस्तु, विषय के प्रतिपादन, नाटक के शिल्प-विधान और उनकी भाषा-शैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। उनके कई नाटकों के अन्त में सुख-दुःख की भावना का ऐसा गंगा-यमुनी सम्मिश्रण है कि न तो उन्हें परम्परागत सुखान्त नाटकों की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है और न दुःखान्त नाटकों में, अपितु उनके लिए एक नूतन विशेषण 'प्रसादान्त' का प्रचलन हो गया है।

प्रसादजी मूलतया कवि थे, अतः उनकी सभी कृतियों में उनके कवि-हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। यह उनके कवित्वमय व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि उनके उपन्यास, कहानियों और नाटकों की भाषा में काव्यात्मक लालित्य के दर्शन होते हैं। इसका एक प्रभाव यह भी पड़ा है कि उनके नाटकों में गीतों की अपेक्षाकृत अधिक योजना की गई है और बहुत से ऐसे गीत जो स्वतंत्र रूप में हिन्दी काव्य की अमूल्य थाती हैं, किन्तु नाटक के कथा-विकास में गतिरोध तक करते मिलते हैं। 'प्रसादजी' भारत की अतीत संस्कृति के उपासक थे। उन्होने अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन भारत के गौरवमय अतीत से ही चुने हैं। इन नाटकों की उन्होंने बड़ी गवेषणापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं। इनके द्वारा उन्होंने अपने वर्ण्य-विषय के औचित्य का प्रतिपादन किया है, तथा इतिहास की विलुप्त कड़ियाँ जोड़ने के साथ-साथ नूतन ऐतिहासिक मान्यताओं की प्रतिष्ठापना की है 'प्रसाद' के नाटकों के वर्ण्य विषय ऐतिहासिक और पौराणिक हैं। उन्होंने निम्नांकित तेरह नाटकों के द्वारा हिन्दी-साहित्य की नाट्य-विधा को समृद्ध किया है—

१. सज्जन (१९१३ ई०), २. कल्याणी परिणय (१९१२ ई०), ३. करुणा-

लय (१९१३ ई०), ४. प्रायश्चित (१९१४ ई०), ५. राज्यश्री (१९१५ ई०), ६. विशाख (१९२१ ई०), ७. अजातशत्रु (१९२२ ई०), ८. जनमेजय का नाग-यज्ञ (१९२६ ई०), ९. स्कंदगुप्त (१९२८ ई०), १०. एक घूंट (१९२९ ई०), ११. कामना (१९२९ ई०), १२. चन्द्रगुप्त (१९३१ ई०), १३. ध्रुवस्वामिनी (१९३३ ई०)।

उपर्युक्त नाटकों में से कामना और एक घूंट एकांकी नाटक हैं। चन्द्रगुप्त उनके कल्याणी परिणय नामक नाटक का ही परिवर्तित रूप था, जिससे उनके नाटकों की संख्या बारह रह जाती है। प्रसादजी के नाट्य-शिल्प के विषय में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु-काल में यद्यपि नाटकों के पाश्चात्य प्रतिमानों के अपनाने की ओर ध्यान दिया जाने लगा था, किन्तु प्रमुखता भारतीय प्रतिमानों की ही थी। इसके विपरीत प्रसादजी ने पाश्चात्य सिद्धान्त अधिक अपनाए हैं, जिससे उनके नाटकों में नान्दी-पाठ, भरत वाक्य, विदूषक आदि भारत के परम्परागत-नाट्य लक्षणों का प्रयोग नहीं मिलता। इसी प्रकार उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र में उल्लिखित नाट्य-वर्णनाओं के सिद्धान्त का भी पालन नहीं किया है, जिसके अनुसार रंगमंच पर युद्ध, आलिंगन, वध आदि के दृश्य नहीं दिखाए जाने चाहिए। आपके नाटकों में आन्तरिक और बाह्य अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष की पर्याप्त योजना मिलती है, जिसे पाश्चात्य नाटकों का प्रमुख तत्त्व माना जाता है। भारतीय नाट्य-शास्त्र में वस्तु, नेता और रस नाटकों के अनिवार्य तत्त्व माने जाते हैं, तथा इन भारतीय तत्त्वों की दृष्टि से भी उनके नाटक पर्याप्त समृद्ध हैं। श्री हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविन्द वल्लभ पंत आदि नाटककारों ने यद्यपि प्रसाद युग में ही नाटक लिखना आरम्भ कर दिया था तथापि उनके नाट्य-कौशल में प्रौढ़ता प्रसाद-युग के बाद ही आई है, अतः उनका उल्लेख प्रसादोत्तर-युग में ही करना समीचीन है।

प्रसादोत्तर-युग—विवेचन सौकर्य की दृष्टि से प्रसादोत्तर काल के नाटक स्थूलतया चार वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—

(क) ऐतिहासिक-पौराणिक नाटक,

(ख) समस्या-प्रधान और सामाजिक नाटक।

(ग) एकांकी, रेडियो-रूपक, काव्य-रूपक आदि भव्य नाट्य विधाएँ।

(क) ऐतिहासिक-पौराणिक नाटक—इस विधा के नाटककारों में श्री हरि-

कृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास, गोविन्द वल्लभ पंत, वृन्दावनलाल वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, लक्ष्मीनारायण मिश्र, देवराज आदि नाटककारों के नाम उल्लेखनीय है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने प्रतिशोध, रक्षाबंधन, शिवासाधना, उद्धार, शपथ, आहुति, स्वप्नभंग, प्रकाश-स्तम्भ, कीर्तिस्तम्भ आदि बीस ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। आपने अपने कथानकों का चयन मध्ययुगीन भारतीय इतिहास या मुस्लिम-काल से किया है, और उनका मूलोद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयता की भावनाओं को उद्बुद्ध करना रहा है। अपने सुष्ठु रचना-विधान, विषयानुरूप भाषा-शैली और मार्मिक चरित्रांकन-कौशल के कारण आप प्रसादोत्तर काल के बहु-प्रशंसित नाटककार रहे हैं। सेठ गोविन्ददास ने लगभग सौ नाटकों की रचना की है। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की दृष्टि से आपके शशिगुप्त और हर्ष नामक नाटक विशेष उल्लेखीय हैं। श्री उदयशंकर भट्ट भी प्रसादोत्तर काल के सशक्त नाटककारों में से एक हैं। संदर्भगत वर्ग में उनके शक विजय, मुक्तिपथ, दाहर, अम्बा, मत्स्यगन्धा और विश्वामित्र शीर्षक नाटक विशेषतया उल्लेखनीय हैं। श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने भारती के भांडार को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों से ही अभिवृद्ध नहीं किया है, अपितु ऐतिहासिक नाटकों से भी समृद्ध किया है। इस दृष्टि से उनके उल्लेखनीय नाटक हैं—झाँसी की रानी, पूर्व की ओर, ललितविक्रम और बीरवल। इसी प्रकार ऐतिहासिक-पौराणिक नाटककार और उनके नाटकों में विशे . ल्लेखनीय हैं—चन्दगुप्त विद्यालंकार कृत—अशोक तथा देवर, सियारामशरण गुप्त कृत—पुण्य-पर्व, लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत—वत्सराज, गरुड़ ध्वज, वितस्ता की लहरें, गोविन्द वल्लभ पंत कृत—अन्तःपुर का छिद्र, ययाति, वरमाला और राजमुकुट, देवराज दिनेशकृत—प्रतिशोध, मानव प्रताप, यशस्वी भोज, जगदीशचन्द्र माथुर कृत—कोणार्क, पहला राजा, सदगुरुशरण अवस्थी कृत—मझली रानी, किशोरीदास वाजपेयी कृत—सुदामा, पांडेय बेचन शर्मा उग्र कृत—गंगा का बेटा, चतुरसेन शास्त्री कृत—राधाकृष्ण, मेघनाद, रांगेय राघव कृत—स्वर्ग भूमि का यात्री, रामवृक्ष बेनीपुरी कृत सीता की माँ, कैलाशनाथ भटनागर कृत—श्रीवत्स, भीम प्रतिज्ञा आदि। श्री राजनाथ शर्मा के शब्दों में— "उपर्युक्त ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की मूल चेतना सांस्कृतिक पुनरुत्थान की रही थी। नाटककार भारतीय पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं द्वारा एक ओर प्राचीन भारतीय आदर्शों को प्रस्तुत करने के अभिलाषी थे तथा दूसरी

और उनके माध्यम से जनता में प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने में प्रयत्नशील थे। इस प्रकार इन नाटकों का मूल उद्देश्य—जनता में एक दृढ़ राष्ट्रीय भावना का संचार करना रहा था। इन नाटकों की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इन्होंने इतिहास के संदर्भ में उन समस्याओं का अंकन करने का प्रयास किया था, जो हमारे आधुनिक जीवन को आक्रांत किए हुए थीं। सत्य, अहिंसा, नारी की महत्ता, सामाजिक विभेद, मानव की एकता, राजनीति, पाखंड, आडम्बर, धार्मिक मतभेद आदि ऐसी ही समस्याएँ थीं, जो प्राचीन युग में भी थीं और अब भी हैं। इन नाटकों में ऐसी ही समस्याओं का चित्रण और समाधान प्रस्तुत किया गया था।" ऐतिहासिक-पौराणिक नाटककारों में से कुछ ने किन्हीं प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों की जीवनी की पृष्ठभूमि पर भी नाटकों की रचना की है और 'आषाढ़ का एक दिन' इसी परम्परा के नाटकों की एक कड़ी है।

डा० कृष्णदेव झारी के शब्दों में—"इस कोटि के नाटकों का आरम्भ बलदेव प्रसाद मिश्र के मीरांबाई (१८६७) और 'शंकर दिग्विजय' से माना जा सकता है जिनमें भक्त कवयित्री मीरां और शंकराचार्य के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। प्रसादयुग में पृथ्वीनाथ भट्ट रचित तुलसीदास (१९२५), सुदर्शन रचित (दयानन्द) इसी परम्परा के नाटक हैं। प्रसादोत्तर काल में उदयशंकर भट्ट का मुक्तिपथ (१९४४), कालिदास (१९५०), लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत कवि भारतेन्दु (१९५५), सेठ गोविन्ददास रचित 'भारतेन्दु' रहीम (१९५५), वृन्दावन लाल वर्मा कृत बीरबल (१९५०), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का तुलसीदास (१९३४) आदि जीवनी मूलक नाटक रचे गये।" श्री मोहन राकेश का आलोच्य नाटक इसी परम्परा की एक कड़ी है जिसमें महाकवि कालिदास के जीवन को कुछ नूतन रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें कालिदास का चरित्रांकन जिस रूप में किया गया है वह परम्परा से कुछ हटकर है-- और यह परम्परा-त्याग उनके चरित्रोत्कर्ष से सम्बद्ध न होकर उनके चारित्रिक आकर्षण से सम्बन्धित है, अतः इस पर आक्षेप भी किए गए हैं। मोहन राकेश का 'लहरों के राजहंस' शीर्षक नाटक भी इसी श्रेणी की कृति है, जिसमें नन्द द्वारा बौद्धधर्म में दीक्षित होने का चित्रांकन किया गया है। नन्द की पत्नी सुन्दरी को अपने सौंदर्य पर बड़ा गर्व है, किन्तु नन्द द्वारा भिक्षुधर्म स्वीकार कर लेने पर उसका गर्व चूर-चूर हो जाता है।

(ख) **समस्या प्रधान और सामाजिक नाटक**—प्रसादोत्तर काल में परिमाण की दृष्टि से इस वर्ग के नाटकों की सर्वाधिक रचना हुई है। इन नाटकों में, समाज में व्याप्त नाना प्रकार की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। समस्या-नाटकों के क्षेत्र में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र अग्रगण्य हैं। इनके नाटकों में समस्या के उपस्थापन और निर्वहण पर इतना बल मिलता है कि उनके नाटक समस्या-नाटक कहलाते हैं। इनके नाटकों पर पाश्चात्य जगत के इब्सन, बर्नार्ड शा आदि नाटककारों के नाट्य-शिल्प का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। समस्या नाटकों में नाटककार का ध्यान किसी समस्या पर ही केन्द्रित रहता है और वह ऐसे शिल्प-विधान का प्रयोग करता है कि वह समस्या बड़े प्रखर रूप में पाठक प्रेक्षकों के समक्ष प्रस्तुत की जा सके। मिश्रजी के नाटकों पर यह आक्षेप किया गया है कि वे समस्या तो प्रस्तुत करते हैं किन्तु उनका समाधान नहीं प्रस्तुत करते, अर्थात् आलोचक यह चाहते हैं— 'तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' किन्तु हमारी दृष्टि से यह तर्क लचर है कि यदि कोई साहित्यकार समाज में व्याप्त किसी कुरीति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है, तो हम उससे यह भी अपेक्षा करें कि वह उसका कोई सर्वमान्य सर्वशुद्ध, सार्वभौमिक हल भी प्रस्तुत करे—गोया साहित्यकार, साहित्यकार न होकर कोई Problem minister हो! यदि साहित्यकार कोई समाधान प्रस्तुत भी करता है तो उसके साहित्य को आदर्शवादी या प्रचारात्मक कह कर उपहास किया जाता है और यदि वह समाधान न प्रस्तुत करे तो यह प्रहार कि समस्या का हल नहीं सुझाया गया—हिन्दी आलोचना क्षेत्र की यह दुरंगी नीति जितनी शीघ्र समाप्त हो उतना ही अच्छा है। मिश्रजी के प्रसिद्ध समस्या नाटक हैं—संन्यासी, राजयोग, मुक्ति का रहस्य, गरुड़ध्वज, राक्षस का मन्दिर, नारद की वीणा, आधीरात और सिन्दूर की होली।

अन्य सामाजिक नाटककारों में से विशेष प्रसिद्ध हैं—सेठ गोविन्ददास, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि। सेठ गोविन्द दास के इस वर्ग के नाटकों में विशेष उल्लेखनीय हैं—सेवा-पथ सन्तोष कहाँ, दुःख क्यों, सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य, कुलीनता, त्याग या ग्रहण, गरीबी-अमीरी, पाकिस्तान आदि। सेठजी के नाटक प्रेमचन्दजी के उपन्यासों के समान आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। अभिनेयता की दृष्टि से वे पर्याप्त सफल हैं। और उनमें मुख्यतया धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया

गया है। गोविन्द वल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों के नाम हैं--अंगूर की बेटी तथा सिन्दूर की बिन्दी आदि। वृन्दावन लाल वर्मा के इस वर्ग के नाटक हैं—राखी की लाज, केवट, खिलौने की खोज, विस्तार, बाँस की फाँस, देखादेखी, नीलकंठ आदि। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी ऐसे अनेक सामाजिक नाटक लिखे हैं जिनमें मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर सामाजिक समस्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। उनमें से कुछ के नाम हैं—छटा बेटा, स्वर्ग की झलक, कैद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते आदि। मुंशी प्रेमचन्द, बद्रीनाथ भट्ट, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, रामनरेश त्रिपाठी, रघुवीरशरण मित्र तथा शम्भूनाथसिंह आदि लेखकों ने भी सामाजिक नाटकों की रचना की है।

(ग) एकांकी, रेडियो-रूपक आदि अन्य विधाएँ

एकांकी नाटक—प्रसादोत्तर काल में नाटक की जिन नवीन विधाओं का विकास हुआ है, उनमें एकांकी नाटक विशेषतया उल्लेखनीय हैं। प्रसादजी के कामना और 'एक घूंट' नाटकों को भी यद्यपि एकांकी नाटकों के वर्ग में परिगणित किया जा सकता है, तथापि एकांकी नाटक प्रसादोत्तर काल में ही पूर्णतया विकसित हुए हैं। इस दिशा में डा० रामकुमार वर्मा ने सर्वाधिक सराहनीय योगदान किया है। उनके अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, विष्णु प्रभाकर आदि नाटककारों ने भी एकांकी-साहित्य की प्रयाप्त सेवा की है। डा० रामकुमार वर्मा के अग्रलिखित एकांकी संग्रह विशेष प्रसिद्ध हैं—पृथ्वीराज की आंखें, चारुमित्रा, ऋतुराज, ध्रुवतारिका, रेशमी टाई दीपदान, कामकन्दला, बापू, रिमझिम, इन्द्रधनुप, विभूति, सप्तकिरण आदि। उपेन्द्रनाथ अश्क के एकांकी नाटक—तूफान से पहले, देवताओं की छाया तथा चरवाहे शीर्षक संकलनों में संग्रहीत हैं। सेठ गोविन्ददास के एकांकी नाटकों में से नानक की नमाज, बुद्ध की एक शिष्या, तेगबहादुर की भविष्यवाणी, हंगर-स्ट्राइक आदि एकांकी विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री उदयशंकर भट्ट के आदिमयुग, धूमशिखा, स्त्री का हृदय, पर्दे के पीछे आदि एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र के एकांकी नाटकों में से विशेष प्रसिद्ध हैं—श्यामा, कारवाँ, पतिता, मृत्यु और रोमांच। इसी प्रकार जगदीशचन्द्र माथुर के 'भोर का तारा' कलिंग विजय, रीढ की हड्डी, खण्डहर, मकड़ी का जाला, खिड़की की राह, बन्दी तथा घोंसले आदि, भगवतीचरण वर्मा के मैं और केवल मैं, सबसे बड़ा आदमी, तथा दो कलाकार आदि, गिरिजाकुमार माथुर के कुमार संभव, पिकनिक'

विषपान, विक्रमादित्य और मध्यस्थ आदि, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के ताँगे वाला, मनुष्य की कीमत, नवप्रभात और भेड़िये आदि, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी के शम्बूक, कैकेयी और सुदामा आदि एकांकी नाटक या एकांकी संग्रह प्रसिद्ध हैं।

भाव-नाट्य या गीति-नाट्य—इस प्रकार के नाटकों का जनक प्रसादजी को माना जा सकता है, जिनका 'करुणालय' इसी कोटि का नाटक है। इस श्रेणी के नाटकों में पात्रों के अंतर्द्वंद्व के चित्रण एवं भावुकता की प्रधानता रहती है, जबकि कथावस्तु, पात्रों का चरित्र-चित्रण आदि नाटकीय तत्वों को गौण स्थान प्रदान किया जाता है। प्रसादोत्तर काल के नाटककारों में श्री उदयशंकर भट्ट का इस दिशा में विशेष योगदान है, जिनके राधा, मत्स्यगंधा और विश्वामित्र उत्कृष्ट कोटि के गीति-नाट्य हैं। इस श्रेणी के अन्य गीति-नाट्यकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—श्री मैथिलीशरण गुप्त, सेठ गोविन्ददास सुमित्रानंदन पंत, रामधारीसिंह दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, धर्मवीर भारती आदि। इनकी कृतियाँ हैं अनघ (मैथिलीशरण गुप्त), स्नेह या स्पर्श (सेठ गोविन्ददास), रजत-शिखर व शिल्पी (सुमित्रानन्दन पन्त), उर्वशी (रामधारीसिंह दिनकर), उन्मुक्त (सियाराम शरण गुप्त), अन्धा युग (धर्मवीर भारती)।

रेडियो-रूपक या रेडियो-नाटक—डा० दशरथ ओझा ने राधाकृष्ण शीर्षक रूपक को हिन्दी का प्रथम रेडियो रूपक बताते हुए अभिमत व्यक्त किया है—"यह राधाकृष्ण रूपक आज से न्यूनाधिक बीस वर्ष पूर्व (सम्प्रति इसका अभिप्राय ३५-३६ वर्ष पूर्व ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि डा० ओझा का यह मत संवत् २०११ वि० का है) रेडियो द्वारा प्रसारित हुआ था। इस अवधि में जालन्धर, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग, पटना आदि रेडियो स्टेशनों से सैकड़ों नाटक प्रसारित हो चुके। हमारी दृष्टि में अब यह संख्या हजारों तक पहुँच चुकी है क्योंकि अकेले दिल्ली के रेडियो-स्टैशन से ही 'हवामहल' कार्यक्रम में प्रतिदिन नाटक प्रसारित किये जाते हैं, जबकि सप्ताह में दो-तीन दिन और भी नाटक प्रसारित होते हैं। रेडियो और रेडियो-नाटक हिन्दी में पश्चिम की देन हैं। पश्चिम में रेडियो नाटक कुछ पहले से ही लिखे जा रहे हैं और प्रगतिशील देशों में इनकी नाट्य-कला निर्धारित होती जा रही है। हमारे देश पर भी वननाटकों का जो प्रभाव पड़ा है उसके अनुसार रेडियो नाटक के मुख्य भेद इस प्रकार किये जा सकते हैं:—

(१) रेडियो रूपक, (२) फीचर, (३) ध्वनि-नाट्य (मनोवैज्ञानिक), (४) स्वोक्ति, (५) (फँटेसी भावनाट्य या ऋतु संबन्धी), (६) ध्वनि, गीति रूपक, (७)

रिपोर्ताज (८) जन नाटक, (९) व्यंग्य। इससे स्पष्ट होता है कि रेडियो रूपक का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। बहुत से उपन्यासों तथा कहानियों को भी आवश्यक काट छांट करके रेडियो-रूपक के रूप में प्रसारित किया जाता है। 'आषाढ़ का एक दिन' भी रेडियो रूपक के रूप में सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुका है। डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीशचन्द्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, अमृतलाल नागर, चिरंजीत, विष्णु प्रभाकर के रेडियो-रूपकों के अतिरिक्त अनेकोनेक लेखक इस दिशा में अपना योगदान कर रहे हैं। यह तथ्य तो आश्वस्त भाव से स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी नाटक अपने विविध रूपों में प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

प्रश्न २—'आषाढ़ का एक दिन' के रचयिता मोहन राकेश के जीवन-वृत्त और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—श्री मोहन राकेश का जन्म ८ जनवरी सन् १९२५ ई० में पंजाब के अमृतसर नामक शहर में हुआ था। उन्होंने अपने बाल्यकाल के विषय में लिखा है कि "हमारे घर के पीछे की ओर कंजरों के घर थे और मैं भी उन्हीं की तरह नाचना चाहता था। किन्तु दादी-माँ मुझे उधर को झांकने तक नहीं देती थीं—कहती हैं—वह घर कंजरों का है। मुझे कजर अच्छे लगते हैं। मैं खुद उनकी तरह नाचना चाहता हूँ। मगर दादी-माँ घूर कर देखती हैं, तो कंजर बनने और नाचने का सारा उत्साह गायब हो जाता है। मैं दादी-माँ के घुटनों में दुबक जाता हूँ।" अपने परिवेश और गृह की दशा का उन्होंने इन शब्दों में वर्णन किया है—"घर में सीलन रहती है। नालियों से बदबू उठती है। सीढ़ियाँ अन्धेरी हैं। + घर में दम घुटता है। अक्सर गली में भाग जाता हूँ। पकड़कर लाया जाता हूँ फिर भाग जाता हूँ। कभी देवी द्वारे के आँगन में पाया जाता हूँ, कभी गली के बाहर गौओं के झुंड के नीचे से पकड़ा जाता हूँ। घर में बन्द रखा जाता हूँ, रो-रो र को बीमार हो जाता हूँ।" मोहन राकेश में बचपन से ही वस्तुओं के सूक्ष्म-पर्यावलोकन की आदत थी, जिससे कहा जाता था—"यह लड़का जिस तरह एक-एक चीज को घूरता है उससे लगता है बड़ा होकर डाकू बनेगा।" मोहन राकेश के पिता जो वकील थे, की घरेलू स्थिति अच्छी होते हुए भी वे कर्ज में डूबे हुए थे, जैसा कि मोहन राकेश के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है—"निहाल सिंह का कर्ज बड़ा है और उससे दुश्मनी भी। घर में कोई अच्छी चीज आए, तो लोगों के सामने खाने-पहनने

की मनाही है--निहाल सिंह की वजह से। निहाल सिंह ने देख लिया तो? निहाल सिंह ने सुन लिया तो? अच्छे कपड़े ट्रंकों में बन्द रहते हैं। हारमोनियम, सितार, वॉयलिन निहाल सिंह की आहट पाते ही चारपाइयों के नीचे छिपा दिए जाते हैं। खुलकर जीने की हर कामना उस दिन की कील पर टंगी रहती रहती है, जिस दिन निहाल सिंह का कर्ज़ा उतरेगा।"

मोहन राकेश की शिक्षा अमृतसर और लाहौर में सम्पन्न हुई और आपने हिन्दी तथा संस्कृत विषयों में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की है। यह इनका दुर्भाग्य ही था कि जब उनकी आयु सोलह वर्ष मात्र थी तभी उनके सिर से पिता की छत्रच्छाया उठ गई। पिता के निधन के उपरान्त उन्होंने अपने पिता के मिलने-जुलने वालों के व्यवहार में जिस नकाबपोशी के दर्शन किए, उससे उनका अन्तर्मन सुलग उठा--"अपने में एक मतिभ्रम-सा लगता। मन में बहुत हलचल रहती। सोचता कि क्यों नहीं लोग ऊपर की झिल्लियाँ उतार कर बात करते? क्यों जान-बूझकर अपना ही निषेध करते हैं? कौन-सी विवशता है कि जो इन्हें झूठ बोलने, दिखावा करने और वास्तविकता को छिपाने के लिए मजबूर करती है? जैसे हैं वैसे बनकर जियें, तो इनके हितों को क्या क्षति पहुँचेगी? क्या कभी किसी भी क्षण ये अपने छल के साक्षी नहीं होते? उसकी प्रताड़ना नहीं सहते? अस्थिरता, अतिवादिता और आक्रोश! उन्नीस साल की उम्र में बहुत विद्रोही हो गया था।" उन्होंने एम० ए० की परीक्षा लाहौर से उत्तीर्ण की जहाँ ये ट्यूशन और स्टाइपेंड पर गुजारा करते थे। मोहन राकेश के हृदय में विद्यार्थी-जीवन से ही सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश उमड़ने लगा था। उनके अपने ही शब्दों में--"देखो, मैं कहता, आर्थिक क्रान्ति के साथ-साथ सारी दुनिया में एक और क्रान्ति का होना अनिवार्य है। यह क्रान्ति होगी मानवीय सम्बन्धों में, हमारी सामाजिक संस्थाओं में। धर्म, नैतिकता और संस्कृति-सम्बन्धी हमारे संस्कार जिस हमारी सभ्यता की देन हैं, वह अब खोखली पड़ चुकी है।"

किशोर मोहन राकेश का मन किसी भी कार्य में नहीं लगता था—उन्हें सदैव एक विचित्र-सी बेचैनी महसूस होती रहती थी। उनके ही शब्दों में—"मन कहीं नहीं लगता था—न क्लास-रूम में, न उसके बाहर, न होस्टल के कमरे में, न बैडमिन्टन कोर्ट में! न कॉफी हाउस में, न लारेन्स बाग की क्यारियों में। न सिनेमा हाउस में, न लाइब्रेरी में। एक लावा-सा मन में उठता

रहता था जो वहीं, किसी भी समय, अपने को भूलने नहीं देता था। ××× प्राध्यापक सहसा कोई सवाल पूछ लेते तो चौंककर वीरान नजर से मैं उनकी ओर देखने लगता।

जवाब न देने पर पूछा जाता—'तुम बीमार तो नहीं हो ?'

'नहीं सर,'

'फिर तुम्हारे चेहरे से क्यों लगता है जैसे तुम···"

'मैं बिल्कुल ठीक हूँ सर।'

'तुम्हारे साथ दिक्कत यह है' एक साहब मिजाजी दोस्त कहा करता—'कि तुम्हें गणित नहीं आता। तुम अपने पर पड़ते प्रभावों में संतुलन नहीं ला पाते। इस छोर और उस छोर के बीच तुम्हारा मन पेंडुलम की तरह घूमता रहता है। इसीलिए तुम कभी रिलैक्स नहीं कर पाते और हर वक्त टेंस बने रहते हो। सिर्फ दो चीजों से तुम्हारा इलाज हो सकता है—एक है, नर्व टॉनिक और दूसरे स्त्री का शरीर।" उन्हें वार्डन की यह डपट सुननी पड़ती थी कि 'तुम्हारा मन गंभीर विषयों से हटता जा रहा है। हँसते-हँसाने और पीने-पिलाने में तुम अपने को खत्म किए दे रहे हो', तो एक मित्र कहा करता था—'मुझसे पूछो तो तुम एक अभिशप्त व्यक्ति हो। तुम्हारे लिए जिन्दगी में कोई भी रास्ता नहीं है।'

श्री कमलेश्वर ने मोहन राकेश के व्यक्तित्व का बड़ा सजीव अंकन करते करते हुए लिखा है—"अगर कहीं एक ऐसा शख्स दिखाई पड़े जो सिल्क की निहायत लम्बे कालरावली कमीज पहने हो, जिसके कफ कोट की बाँहों से छः अंगुल बाहर निकले हों और उनमें एकदम पुरानी चाल के कफ-बटन हों, जिसकी टाई की गाँठ ढीली मुट्ठी की तरह गर्दन में बेतरकीबी से कसी हो, कीमती कपड़े की पैंट जैसे पहनने वाले से पनाह माँग रही हो और जो गोल्ड फ्लेक की सिगरेटें जला-जलाकर खा रहा हो और माचिस की तीलियाँ और राख और टुकड़े निहायत साफ-सुथरी और सजी जगहों में फेंकता जा रहा हो और बात-बात पर आसमान-फाड़ ठहाके लगाता हो और लेखक के बजाय किसी बार का रईस, पर पहली नजर में एकदम गावदी प्रोपराइटर लगता हो, तो समझ लीजिए कि वह राकेश है। अगर वह राकेश न भी हुआ तो वह राकेश नुमा आदमी आपको उसका अता-पता बता देगा—'आप उन साहब को पूछ रहे हैं। जी हाँ, कल ही तो उन्होंने यहाँ टेबल रिजर्व कराई थी, चार-

पाँच दोस्तों के लिए···पसे भी दे गये थे, पर आए नहीं।" हँसी के ठहाके या तो मुंशी प्रेमचन्द के प्रसिद्ध हैं या मोहन राकेश के। कमलेश्वर के शब्दों में—"और घर से बाहर आते ही वह अपने फार्म में आ जाता। वही चुभती हुई बातें, यारों के किस्से और ठहाके। वह हँसता तो तारों पर बैठी हुई चिड़ियाँ पंख फड़फड़ा कर उड़ जातीं और चलते ऐसे चौंककर देखते, जैसे किसी को दौरा पड़ा हो।"

मोहन राकेश के जीवन में एक विचित्र प्रकार की फाका-मस्ती और अस्थिरता रही है—वे दिल्ली, अमृतसर, जालंधर, चंडीगढ़, कलकत्ता, जमशेदपुर और बम्बई में अपने भाग्य की आजमाइश करते फिरते हैं। फिर भी कमलेश्वर के शब्दों में, "यह मुजरिम पैसे का दुश्मन है···और यह दुश्मन पैसे का भी ऐसा लती है कि उसका पीछा नहीं छोड़ता। पैसे को पैसा न समझने के कारण ही एक बार तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि उन्हें चार महीने तक माँग-माँग कर कपड़े पहनने पड़े थे और वे आत्महत्या तक करने की सोचने लगे थे।" कमलेश्वर के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि मोहन राकेश का घरेलू जीवन सुखमय नहीं है—"उसके लिए घर की महत्ता ही मिट चुकी है—वह अब घर में नहीं मकान में रहता है और अपने दोस्तों पर होटलों में रुपया पानी की तरह बहाता है।" इस संदर्भ में श्री कमलेश्वर का यह कथन उल्लेखनीय है जिसके अनुसार मोहन राकेश के अव्यवस्थित जीवन में भी एक आंतरिक व्यवस्था है, अनुशासनहीनता होते हुए भी अनुशासन है—"और यही सबसे बड़ा इल्जाम उस पर है कि वह टिकता नहीं। वह निहायत गैर-जिम्मेदार और अनुशासनहीन व्यक्ति है, वह संवेगों के आवेश में काम करता है, एक सही काम करते-करते तुनक कर गलत काम कर बैठता है और डाक बंगलों में रहने को ही जिन्दगी समझता है···। ऊपर से यह सब सही लगता है। आज वह बम्बई में है, कल वह अफ्रीका में भी हो सकता है। वही बेतरतीब जिन्दगी है मेरे इस दोस्त की, पर सतह से नीचे उतरते ही जबरदस्त अनुशासन दिखाई पड़ता है। वह अनुशासन है दिमाग का और सृजन का। ऊपरी जिन्दगी में यह जितना असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है, उतनी ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रक्रिया। जितने मसल-मसल कर वह सिगरेट के टुकड़े जगह-जगह फेंकता है, उतने ही करीने से वह अपने विचार और अनुभवों को सजाता है। उसके कफ कोट की आस्तीन से चाहे छः अंगुल बाहर निकले रहें, पर कहानी में

कलात्मक असंतुलन की कोर नजर नहीं आ सकती। और सृजन के इसी संतुलन, संवरण, संगठन और अनुशासन के लिए यह आदमी भागता है—कभी काश्मीर, कभी डलहौजी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीरानों में।" श्री मोहन राकेश ने भी अपने व्यक्तित्व के इस विरोधाभास को इन शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की है—"तभी नीचे से कोई आवाज देगा और यह घर से भाग खड़ा होगा। दो घण्टे कॉफी हाउस या किसी रेस्तराँ में बैठा रहेगा। बिना जरूरत कॉफी पियेगा, बिना मतलब बहस करेगा। जिस किसी को 'विट' के काँटे में फँसाकर मजा लेता रहेगा। बार-बार इतने जोर से हँसेगा कि मैनेजर मजबूर होकर बैरे के हाथ चिट भेजेगा—'प्लीज'। कुछ देर बाद, और कहीं ह्विस्की का गिलास हाथ में लिए वह वैदिक ऋचाओं की व्याख्या कर रहा होगा। दोस्तों से अलग होने में इसे अलग होना बहुत महसूस होगा—जैसे कि इसके अस्तित्व के रेशे उनके अस्तित्व में बिने हों और अब इसे रेशे काट कर अलग होना पड़ रहा हो। फिर लारेंस की किसी बेंच पर वह अकेला बैठा रहेगा। किसी भी परिचित अपरिचित से बात करने को इसका मन नहीं होगा। अकेला बैठकर सोचता रहेगा, घुमड़ता रहेगा। पास से गुजरते घनिष्ठ व्यक्ति को भी नहीं पहचान पाएगा। समझा जायगा कि यह बहुत बददिमाग है, या सख्त इन-फीरियॉरिटी कांप्लेक्स का शिकार है।"

कृतित्व—श्री मोहन राकेश ने अपने साहित्यिक जीवन का समारम्भ अपने विद्यार्थी काल में कविताओं की रचना से आरम्भ किया, किन्तु वे शीघ्र ही कहानी, उपन्यास, निबन्ध और नाटक लिखने की ओर प्रवृत्त हो गए। उन्होंने जालन्धर, बम्बई और दिल्ली आदि स्थानों में अध्यापन भी किया है, जिसका आलोचना से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। इनके इस समीक्षक के रूप की झाँकी इनकी कृतियों की भूमिकाओं में स्पष्ट परिलक्षित होती है। उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है—

नाटक :

१. आषाढ़ का एक दिन (१९५८ ई०)

२. लहरों के राजहंस (१९६३ ई०)

३. आधे अधूरे (१९६९ ई०)

श्री मोहन राकेश ने एकांकी नाटक भी लिखे हैं। 'सत्य और कल्पना' इनका प्रथम एकांकी संग्रह और 'कर्फ्यू' इनका प्रसिद्ध ध्वनि एकांकी है।

एक आलोचक के शब्दों में "वास्तव में श्री मोहन राकेश को नाटक लिखने का शौक अपने विद्यार्थी काल से ही है। उनके नाटक रंगमंचीय और आकाशवाणी से प्रसारित करने योग्य हैं। इनके कुछ नाटकों में प्रवक्ता की आवाज और ध्वनि संयोजन के संकेत पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। उनके ध्वनि एकांकियों में रंगमंच का विशेष ध्यान रखने के कारण रंगमंचीय संकेत भी सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं। इसके अतिरिक्त इनके नाटकों में रगमंचीय शिल्प और रेडियो शिल्प का अत्यन्त सुन्दर और मनोमुग्धकारी संयोजन है। एमेच्योर रंगमंच से सम्बद्ध रहने के कारण एवं कुछेक नाटकों का सफल निर्देशन करने के कारण इनके नाटकों में रंगमंच पर विशेष बल दृष्टिगत होता है। विद्यार्थी जीवन में संस्कृत परिषद के तत्त्वावधान में संस्कृत नाटकों के रंगमंचीय निर्देशन के कारण इनके नाटकों में संस्कृत नाट्यविधान का भी प्रभाव है।"

कहानी संग्रह :

१. इन्सान के खंडहर (१९५० ई०) २. नये बादल (१९५७ ई०)
३. जानवर और जानवर (१९५८ ई०) ४. एक और जिंदगी (१९६१ ई०)
५. फौलाद का आकाश (१९६६ ई०) ६. आज के साये (१९६७ ई०)
७. रोयें रेशे। ८. एक-एक दुनिया।
९. मिले-जुले चेहरे।

उपन्यास :

१. अन्धेरे बन्द कमरे। २. काँपता हुआ दरिया।
३. नीली रोशनी की बाँहें। ४. न आने वाला कल।

यात्रा-विवरण :

(क) आखिरी चट्टान तक।

निबन्ध :

(क) परिवेश।

श्री मोहन राकेश की सशक्त लेखनी अभी अनवरत रूप में साधन-रत है और हिन्दी-साहित्य को उनसे अभी महती अपेक्षाएँ हैं।

प्रश्न ३—'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की अंकानुसार कथावस्तु लिखिए।

उत्तर— प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु को सम्यक्-रूपेण समझने के लिए इसके पात्रों का संक्षिप्त परिचय उपयोगी रहेगा, अतः आरम्भ में पात्रों क

संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

कालिदास—प्रस्तुत कृति का नायक, मल्लिका का प्रेमी, मातृगुप्त के नाम से काश्मीर का शासक।

मल्लिका—आलोच्य नाटक की नायिका, अम्बिका की पुत्री, कालिदास की प्रेयसी, कालिदास द्वारा उपेक्षित।

अम्बिका—मल्लिका की विधवा माता, पुत्री के विवाह के लिए व्यग्र, परम्परा-प्रिय वृद्धा।

मातुल—कालिदास का संरक्षक, सम्बन्ध की दृष्टि से कालिदास का मामा।

निक्षेप—मातुल का प्रतिवेशी, मल्लिका और कालिदास का शुभचिन्तक।

विलोम—कालिदास का प्रतिद्वंद्वी, मल्लिका से विवाह को आतुर किन्तु मल्लिका उससे घृणा करती है, कृति का खलनायक।

दन्तुल—कालिदास को उज्जयिनी लेने आने वाला राजपुरुष।

रंगिणी एवं संगिनी—नगर-बालाएं जो शोध-छात्राओं के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं।

अनुस्वार और अनुनासिक—राजकीय सेवक जो काम करने के स्थान पर बातों की खाते चित्रित किए गए हैं।

प्रियंगुमंजरी—उज्जयिनी-नरेश की पुत्री, कालिदास की पत्नी, मल्लिका के प्रति सहृदया।

'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रथम अंक

प्रथम अंक के आरम्भ में नाटककार ने रंगमंच की सज्जा विषयक जो निर्देश किए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि इस दृश्य के आरम्भ होने से कुछ ही समय पूर्व वर्षा हुई है तथा हल्का-हल्का मेघ-गर्जन सुनाई दे रहा है। एक साधारण से ऐसे मकान में जिसकी दीवारें लकड़ी की हैं तथा जिसके निचले भाग को मिट्टी से पोता गया है, अम्बिका छाज में धान फटकती दृष्टिगोचर होती है। वह झरोखों में से बाहर की ओर झाँककर लम्बी सांस लेती है। तभी सामने का द्वार खुलता है और मल्लिका गीले वस्त्रों में कांपती-सिमटती-सी अन्दर आती है। अम्बिका उससे रुष्ट है क्योंकि ग्राम में उसके और कालिदास के प्रेम का अपवाद फैला हुआ है, इसलिए वह मल्लिका की उपेक्षा करती हुई, उसकी ओर देखकर भी नहीं देखती। माँ को खिन्न देखकर मल्लिका क्षण भर

के लिये ठिठक तो जाती है किन्तु अंततः स्वमाता के निकट आकर कहती है—"आषाढ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ !··· ऐसी धारासार वर्षा ! दूर दूर की उपत्यकाएं भीग गयीं !···और मैं भी तो ! देखो न माँ, कैसे भीग गयी हूँ।" अम्बिका की खिन्नता दूर नहीं होती, वह मल्लिका को सिर से पैर तक देखकर जब पुनः उपेक्षा भाव से अपने कार्य में व्यस्त हो जाती है, तो मल्लिका उसके कंधे पर सिर रख देती है और उसके केशों को चूमती हुई यह कहकर उठ खड़ी होती है–"गयी थी कि दक्षिण से उड़कर आती हुई बकुल पंक्तियों को देखूंगी और देखो सब वस्त्र भिगो आयी हूँ।" वह स्वमाता से सूखे वस्त्रों के बारे में पूछती है। अम्बिका उसकी ओर रोषपूर्ण नेत्रों से देखती हुई कह देती है कि वे अन्दर तख्त पर हैं। मल्लिका प्रमुदित होती हुई कहती है कि माँ तुम्हें यह ज्ञात था कि मैं भीग जाऊंगी इसलिये तुमने पहले से ही वस्त्र निकाल कर रख दिये हैं। मल्लिका स्व-प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा में विहार करके लौटी है अतः उसका हृदय अत्यधिक उन्मादित-प्रफुल्लित हो रहा है। अपनी इस भाव-विभोरता के कारण ही वह माँ के क्रोध की चिन्ता नहीं करती और अपने हार्दिक उल्लास को व्यक्त करती जाती है। उसके मुख से अनायास ही ऐसे शब्द निकल पड़ते हैं. जो इस तथ्य का उद्घाटन कर देते हैं कि वह अवश्य ही किसी मनभावन अनुभूति में रसमग्न होकर लौटी है— "मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती।" माँ से आँखें मिलने पर वह घबड़ाकर यह कहती हुई भीतर चली जाती है—"वस्त्र बदल लूं, फिर आकर तुम्हें बताती हूँ। वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत।" बाहर आकर वह माँ को बताती है कि आज के जैसे अदभुत सौंदर्य का मैंने इससे पहले कभी भी साक्षात्कार नहीं किया। आज मुझे इस तथ्य का ज्ञान हो गया है कि वह क्या है, जो भावना को कविता का रूप देता है, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है।" किन्तु जब अम्बिका उसकी बातों को सुनकर उपेक्षापूर्वक मूक ही बनी रहती है, तो मल्लिका उसके हाथों से यह कहती हुई छाज छीन लेती है—"मैं तुम्हें काम नहीं करने दूंगी······मुझसे बात करो।" जब अम्बिका उपेक्षापूर्वक यह कहती है कि क्या बात करूं, तो मल्लिका कहती है कि चाहे तुम मुझे भीग आने के लिये डांटो, किन्तु चुप मत रहो। अम्बिका फिर भी बातें नहीं करती और उसे दूध पीकर आराम करने का आदेश देती है। इस बार मल्लिका भी

रुष्ट होती हुई कहती है—'नहीं माँ, मुझे विश्राम नहीं करना है। थकी कहाँ हूँ जो विश्राम करूँ ? मुझे तो अब भी अपने में बरसाती बूँदों का पुलक अनुभव होता है। रोम अभी तक सीज रहे हैं।...तुम बताती क्यों नहीं हूं ? ऐसे करोगी तो मैं भी तुमसे बात नहीं करूँगी।" अम्बिका की आंखों से आँसू छलक उठते हैं। जब मल्लिका उसको अपनी शपथ खिलाकर रोने का कारण पूछती है तो अम्बिका स्पष्ट कर देती है कि उसने उसका विवाह-सम्बन्ध निश्चित करने के लिए अग्निमित्र को जहाँ भेजा था, उन्होंने तेरे साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया है और यह भी कहा है...। मल्लिका समझ जाती है कि मेरे और कालिदास के प्रेम-सम्बन्ध के विषय में कुछ बात कही गयी है, अतः वह तड़प कर कह उठती है—"क्या कहते हैं वे ? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का ? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है ?" अम्बिका उसके कथन का कुछ अंश दोहराते हुए कह उठती है, "हाँ, मेरा भी तुम पर कोई अधिकार नहीं है। मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है। किन्तु...इतना बड़ा अपवाद मुझसे नहीं सहा जाता।" माँ को दुःखी और खिन्न देखकर भी मल्लिका हतोत्साहित नहीं होती अपितु धैर्यपूर्वक कहती है—"मैं जानती हूँ माँ, कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।" अम्बिका उसके कथन का उपहास करती हुई कह उठती है—"मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर ! हाँ, तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म-प्रवंचन है। × × × उससे जीवन की आवश्यकताएं किस तरह पूरी होती हैं ?" अम्बिका और मल्लिका के इस वार्तालाप के मध्य घोड़ों की टापों का स्वर सुनाई देता है। मल्लिका द्वारा पूछे जाने पर अम्बिका स्पष्ट करती है कि "सम्भवतः ये राज्य-कर्मचारी हैं। × × × कभी वर्षों में ये आकृतियाँ यहाँ दिखाई देती हैं। और जब भी दिखाई देती हैं कोई अनिष्ट होता है, कभी युद्ध की सूचना आती है, कभी महामारी की।"

मल्लिका माँ से शिकायत के स्वर में जब कालिदास के विषय में यह

कहती है कि ग्राम के अन्य व्यक्तियों की तरह तुम भी उसे सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती हो, तो अम्बिका उत्तर देती है—"ग्राम के अन्य लोग उसे उतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूँ। मैं उससे घृणा करती हूँ। उसके प्रभाव से मेरा घर नष्ट हो रहा है।" तभी ड्योढ़ी से कालिदास के शब्द सुनाई देने लगते हैं। अम्बिका वहाँ से जाने लगती है। मल्लिका उसे रोकना चाहती है तो वह उपेक्षापूर्वक यह कहकर चली जाती है—"माँ का जीवन भावना नहीं, कर्म है। उसे घर में बहुत कुछ करना है।"

तभी एक आहत हरिण-शावक को बाँहों में उठाए तथा पुचकारते हुए कालिदास प्रवेश करता है और कहता है—"हम जियेंगे हरिण-शावक ! जियेंगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है।" मल्लिका उस आहत हरिणशावक को देखकर उत्तेजित स्वर में कह उठती है—"यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया है ? क्या यहाँ भी दक्षिण के जैसे क्रूर व्यक्ति उत्पन्न होने लगे हैं ?" कालिदास स्पष्ट करता है कि आज ग्राम-प्रदेश में कुछ नयी आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं और उन्हीं में से एक ने इसे आहत कर दिया है। वह मल्लिका से हरिण-शावक के लिए दूध लाने को कहता है। मल्लिका दूध लाते हुए कहती है कि माँ दो-तीन राजकर्मचारियों को देखकर कह रही थीं कि कोई अनिष्ट होने वाला है। वह यह भी स्पष्ट कर देती है कि वे आज मुझसे बहुत ही रुष्ट हैं, क्योंकि शायद उन्हें यह अनुमान हो गया है कि वर्षागत के समय मैं तुम्हारे साथ थी, अन्यथा इस प्रकार भीग कर नहीं आती। उन्हें अपवाद की बहुत चिन्ता रहती है। कालिदास उसके कथन की ओर विशेष ध्यान न देकर हरिण शावक को मल्लिका की गोद में देकर उसे दूध पिलाने की असफल चेष्टा करने लगता है। तभी वहाँ दन्तुल नामक राजपुरुष प्रवेश करता है, जिसे देखकर मल्लिका और कालिदास चौंक उठते हैं। कालिदास उसे डपटते हुए कहता है कि तुम एक अपरिचित के घर में इस प्रकार क्यों घुस आए हो ? दन्तुल घबड़ाता नहीं अपितु प्रति प्रश्न करता है—"हमारा कभी का परिचय नहीं, फिर भी मेरे बाण से आहत हरिण को उठा ले जाने में तुम्हें संकोच नहीं हुआ ?' कालिदास और दन्तुल में कुछ क्षण तक नोंक-झोंक चलती है। कालिदास जब यह कहता है कि तुम इस प्रदेश के निवासी नहीं प्रतीत होते, तो दन्तुल कहता

है कि यह तो मेरी वेश-भूषा से ही स्पष्ट है। जब कालिदास यह कहता है कि मैं तुम्हारी वेश-भूषा को देखकर ऐसा नहीं कह रहा, तो दन्तुल व्यंग्य करता है—"जान पड़ता है कि चोर कर्म के अतिरिक्त सामुद्रिक का भी अभ्यास करते हो।" मल्लिका दन्तुल को रोकती हुई कहती है कि ऐसा लाँछन लगाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दन्तुल क्षमा-याचना करते हुए स्पष्ट करता है कि यह हरिण-शावक मेरी सम्पत्ति है, इसे मुझे लौटा दीजिए। कालिदास जब यह कहता है कि तुम बाहर से आए हो, इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि हम तुम्हें अपराधी न मानें, तो दन्तुल व्यंग्यात्मक हंसी हंसते हुए प्रश्न करता है कि "क्या राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे ? अरे ग्रामीण युवक, क्या तुम अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो ? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं ?"

कालिदास दन्तुल के कथन की उपेक्षा करते हुए मल्लिका से कहता है कि इसे अन्दर ले जाकर किसी तल्प या आस्तरण पर लिटा दो, कि तभी भीतर से आती हुई अम्बिका कहती है, "इस घर के तल्प और आस्तरण हरिण-शावकों के लिए नहीं हैं।" कालिदास अपमान का अनुभव करते हुए हरिणशावक को मल्लिका से यह कहते हुए ले लेते हैं कि इसके लिए मेरी बाँहों का आस्तरण ही पर्याप्त है और अपने घर की ओर चल देता है। दन्तुल क्रोधपूर्वक अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखकर उसके पीछे जाना चाहता है कि मल्लिका उसका मार्ग रोककर खड़ी हो जाती है और कहती है—"ठहरो राजपुरुष ! हरिण-शावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनके लिए संवेदना का। कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिंता नहीं करेंगे।" मल्लिका के मुख से कालिदास शब्द सुनकर दन्तुल चौंक उठता है और प्रश्न करता है कि क्या ये ही ऋतुसंहार के रचयिता कालिदास हैं ? मल्लिका के पूछने पर वह यह भी स्पष्ट कर देता है—"सम्राट ने स्वयं ऋतुसंहार पढ़ा और उसकी प्रशंसा की है। इसलिए आज उज्जयिनी का राज्य ऋतुसंहार के लेखक का सम्मान करना और उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है। आचार्य वररुचि आज इसी उद्देश्य से उज्जयिनी से यहाँ आए हैं।" मल्लिका के हर्षोल्लास का पारावार नहीं रहता—यह सुखद समाचार सुनकर वह स्तंभित हो उठती है। वह अपनी माता को सम्बोधित करती हुई कह उठती है—"तुमने सुना मां······ राज्य उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है।"

मल्लिका के हर्षोल्लास का अम्बिका पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उसकी दृष्टि में कालिदास आत्मसीमित (Egoist) पुरुष है, वह मल्लिका की भावना से खिलवाड़ करके भी उससे विवाह करना नहीं चाहता। इसीलिए मल्लिका की बातों का अनमने भाव से उत्तर देती हुई वह कह देती है कि मैं यथार्थ से आँखें नहीं बन्द कर सकती, मेरी सोचने-समझने की शक्ति जड़ हो चुकी है। जब मल्लिका उससे यह आग्रह करती है कि मुझे सब बातें साफ-साफ बताओ, तो वह कालिदास के विषय में अपने उपर्युक्त भावों को प्रकट कर देती है। किन्तु मल्लिका विचलित नहीं होती। कालिदास द्वारा उससे विवाह न करने का वह यह कारण प्रस्तुत करती है कि मातुल के घर में वे बड़ा अभावग्रस्त और साधनहीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अम्बिका उसी के शब्दों को दोहराते हुए कहती है कि अब तो कालिदास का जीवन अभावग्रस्त नहीं रहेगा ? अर्थात् अब जबकि वह राजकवि होने जा रहा है, उसे तुमसे विवाह कर लेना चाहिए। वह पुनः कालिदास के आत्मकेन्द्रित जीवन की निन्दा करती हुई कहती है कि वह तुम्हारे माध्यम से स्वयं को ही प्रेम करता है। मुख्य बात तो यह है कि मेरी आँखें बन्द हो जाने पर तुम्हारा क्या होगा ? क्या तुम्हारी भावना ही तुम्हारी उदरपूर्ति कर देगी ? मल्लिका साहसपूर्वक उत्तर देती है कि आज उनका जीवन नई दिशा ग्रहण कर रहा है और ऐसे अवसर पर मैं उनके समक्ष विवाह का प्रश्न रखकर अपने स्वार्थ की उद्घोषणा करना नहीं चाहती।

तभी मातुल के आ जाने से माता और पुत्री की बातचीत में व्यवधान पड़ जाता है। मातुल अम्बिका से कहता है कि मैं कालिदास से अपने सभी सम्बन्ध तोड़ने जा रहा हूँ, क्योंकि वह मेरी इच्छा की अवहेलना करता हुआ राजकीय सम्मान स्वीकार नहीं करना चाहता और कहता है कि मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है। अम्बिका उसे शान्त करती हुई कहती है कि मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि तुम्हारा भागिनेय (भानजा) उज्जयिनी अवश्य जायेगा। इस समय तो वह इस लोकनीति का सहारा ले रहा है कि सम्मान के प्रति उदासीनता दिखाकर अपना महत्व बढ़ाना चाहता है। तभी वहाँ पर मातुल का सेवक निक्षेप आकर यह सूचना देता है कि आचार्य वररुचि आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्योंकि वे आपके साथ ग्राम-प्रदेश घूमना चाहते हैं। मातुल को कालिदास

के अभद्र आचरण की स्मृति कचोटने लगती है। वह अम्बिका से कहता है— "इस व्यक्ति को सामान्य लोक-व्यवहार का तो ज्ञान नहीं और तुम लोकनीति की बात कहती हो।·· आप एक हरिणशावक को गोदी में लिए घर की ओर आ रहे थे। सौभाग्यवश मैंने बाहर ही देख लिया। ××× मैंने कहा कविवर्य, आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने लिए आए हैं। राज्य की ओर से आपका सम्मान होगा। सुनकर रुके। रुक कर जलते अंगारे की-सी दृष्टि से मुझे देखा—'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ'—ऐसे कहा जसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जाती हों, और चल दिए।" निक्षेप द्वारा यह याद दिलाने पर कि तुम्हें आचार्य बुला रहे हैं, मातुल चला जाता है। निक्षेप अम्बिका और मल्लिका को यह सूचना देता है कि कालिदास इस समय जगदम्बा के मन्दिर में हैं और यह हठ कर रहे हैं कि जब तक उज्जयिनी से आये अतिथि नहीं लौट जाते मैं यहीं रहूँगा। अम्बिका कालिदास के इस आचरण को माखौल या नाटक बताती हुई उसकी भर्त्सना करने लगती है, किन्तु निक्षेप यह मत व्यक्त करता है—"कालिदास नाटक नहीं खेल रहे अम्बिका! मुझे विश्वास है कि उन्हें राजकीय सम्मान का मोह नहीं है। वे सचमुच इस पर्वत-भूमि को छोड़ कर नहीं जाना चाहते।" वह यह भी स्पष्ट कर देता है— "कालिदास अपनी भावुकता में यह भूल रहे हैं कि इस अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेंगे। योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष-पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। कालिदास को राजधानी अवश्य जाना चाहिए।" मल्लिका से यह ज्ञात होने पर कि कुछ ही क्षण पूर्व उनका एक अभद्र राजपुरुष से साक्षात्कार हुआ था, जिससे उनका हृदय कटुता से भर गया होगा, निक्षेप मल्लिका को सम्बोन्धित करते हुए कहता है—"उस कटुता को केवल तुम्हीं दूर कर सकती हो मल्लिका! अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज हैं जीवनभर वही रहेंगे—केवल एक स्थानीय कवि।" मल्लिका कालिदास को समझाने के लिए निक्षेप के साथ जगदम्बा के मन्दिर में चली जाती है और अपनी माँ के विरोध की चिन्ता नहीं करती।

रात्रि के समय उल्मुक हाथ में लिए विलोम अम्बिका के यहाँ आता है और उसकी उदासी का कारण पूछता है। वह उससे कहता है कि सुना है कि

कालिदास उज्जयिनी जा रहा है, अतः उसके उज्जयिनी को जाने से पूर्व ही उसका और मल्लिका का विवाह हो जाना चाहिए। अम्बिका उससे चले जाने को कहती है किन्तु वह कहता है—"कालिदास उज्जयिनी चला जायगा! और मल्लिका जिसका नाम उसके कारण सारे प्रान्तर में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ पड़ी रहेगी? क्यों अम्बिका?"

तभी कालिदास और मल्लिका प्रवेश करते हैं। विलोम कालिदास से पूछता है कि "उज्जयिनी से निमंत्रण पाकर क्या तुम कल ब्राह्म मुहूर्त में यहाँ से चले जाओगे? वहाँ जाकर इस ग्राम-प्रान्तर को भूल तो नहीं जाओगे क्योंकि वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं—रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य विलास-भूमियाँ।" मल्लिका उसको टोकते हुए कहती है कि यह स्थान और समय ऐसी बातों के लिए नहीं है। विलोम कालिदास की ओर देखते हुए दुःखपूर्वक कहता है—"विलोम क्या है? एक असफल कालिदास।···और कालिदास? एक सफल विलोम, हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।" वह कालिदास से प्रश्न करता है कि वह उज्जयिनी अकेला ही जाएगा, या मल्लिका से विवाह करके उसे भी अपने साथ ले जाएगा? कालिदास उसके इस प्रश्न को दूसरों के जीवन में अनधिकार प्रवेश की संज्ञा देता है, और कहता है कि मुझे उज्जयिनी जाने का तनिक भी मोह नहीं है। मल्लिका जब विलोम को अनचाहा अतिथि बताते हुए चले जाने के लिए कहती है, तो विलोम ढीठतापूर्वक उत्तर देता है—"तुम मुझसे घृणा करती हो मैं जानता हूँ। परन्तु मैं तुमसे घृणा नहीं करता। मेरे यहाँ होने के लिए इतना ही कारण पर्याप्त है"—किन्तु अंततः वह यह कहता हुआ चला जाता है कि कालिदास! तुम्हारी यात्रा शुभ हो।

कालिदास को उदास देखकर मल्लिका उसे याद दिलाती है कि तुम मुझे उज्जयिनी जाने का वचन दे चुके हो। कालिदास गंभीरतापूर्वक उत्तर देता है—"तुम फिर एक बार सोचो मल्लिका! प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का नहीं है। उससे कहीं बड़ा प्रश्न मेरे सामने है।" मल्लिका उनके अभिप्राय को समझती हुई कहती है कि मुझे तुम्हारे यहाँ रह जाने से सुख नहीं होगा, मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए। भाव-विभोर होकर वह आगे कहती है—"तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर हो सकते हो? यहाँ ग्राम-प्रान्तर में रहते हुए तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवकाश कहाँ मिलेगा? ××× विश्वास करते हो न कि मैं तुम्हें जानती हूँ? जानती हूँ

कि कोई भी रेखा तुम्हें घेर ले तो तुम फिर जाओगे। मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती, इसीलिए कहती हूँ कि तुम जाओ। ××× और मैं भी तुमसे दूर नहीं रहूँगी। जब भी मैं तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत-शिखर पर चली जाऊँगी और उड़कर आते हुए मेघों में घिर जाया करूँगी।" वह कालिदास से यह कहकर घर लौटने का आग्रह करती है कि आचार्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। जब कालिदास यह पूछता है कि क्या इसका यह अर्थ है कि तुमसे विदा लूँ ? तो वह उसके हाथों को पकड़कर कहती है—"नहीं ! विदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।" अन्ततः कालिदास झटके से चला जाता है। पुनः मेघ-गर्जन सुनाई देने लगता है। मल्लिका आँसू रोकने का प्रयत्न करती हुई भी सिसक उठती है। अम्बिका उसे धैर्य बँधाते हुए कहती है कि तुम स्वस्थ नहीं हो, अतः अन्दर चलकर विश्राम कर लो। वह मेघों की ओर संकेत करते हुए कहती है कि माँ कल ये मेघ उज्जयिनी की ओर उड़ जाएँगे और हाथों में मुँह छिपाकर सिसकने लगती है। जब अम्बिका भी अधीर होकर उसे शान्त रहने के लिए कहती है, तो मल्लिका कह उठती है—"मैं रो नहीं रही हूँ माँ ! मेरी आँखों से जो बरस रहा है, यह दुःख नहीं है। यह सुख है माँ, सुख···।" मल्लिका द्वारा यह कहकर स्वमाता के वक्ष में मुँह छिपा लेने के दृश्य के साथ परदा गिर जाता है और प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक

द्वितीय अंक की कथावस्तु का आरम्भ कुछ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर होता है, जिसकी सूचना रंगमंच सज्जा में आये इस परिवर्तन से मिल जाती है कि अम्बिका के घर की लिपाई कई स्थानों से उखड़ चुकी है। उसकी दीवारों पर गेरु से बने हुए स्वस्तिक, शंख और कमल फीके पड़ चुके हैं। घड़ों पर काई जम गयी है, रस्सी पर लटके अधिकांश वस्त्र फटे हुए हैं। अम्बिका बीमार है और मल्लिका उसके लिए दवा पीसती हुई दृष्टिगत होती है। तभी निक्षेप प्रवेश करता है और अम्बिका के स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ करता है। निक्षेप और मल्लिका के कथोपकथनों से ज्ञात होता है कि अम्बिका दो वर्ष से ज्वर-पीड़ित है, तथा कालिदास ने उज्जयिनी से अभी तक कोई समाचार नहीं प्रेषित किया है, निक्षेप इस हेतु स्वयं को दोषी बताता है कि उसने ही मल्लिका को इस बात के लिए प्रेरणा दी थी कि वह जैसे बने कालिदास को

उज्जयिनी जाने के लिए विवश करे। किन्तु मल्लिका अन्तर्मन से व्यथित होते हुए भी यही कहती है कि मैं यह सोचकर प्रसन्न ही हूं कि वे इतने अधिक व्यस्त हैं। उन्होंने यहां तो ऋतुसंहार की ही रचना की थी किन्तु वहां पर कुमारसंभव और मेघदूत की रचना करने के अतिरिक्त जिनकी प्रतियाँ व्यवसायियों ने मुझे लाकर दे दी हैं—किसी अन्य वृहत काव्य की भी रचना की बताते हैं।

निक्षेप जब दुःख व्यक्त करते हुए यह कहता है कि व्यवसायियों के मुख से मैंने और भी बातें सुनी हैं तो मल्लिका उसके कथन को यह कहकर उड़ा देती है कि उन्नति करने वाले व्यक्ति के नाम के साथ अपवाद जुड़ ही जाया करते हैं। वह इस तथ्य को भी बुरा नहीं बताती कि कालिदास ने राजदुहिता के साथ विवाह कर लिया है। जब निक्षेप यह कहता है कि उन्होंने यहाँ रहते हुए तो यह निश्चय व्यक्त किया था कि मैं जीवन-भर विवाह नहीं करूँगा और उनके इस आग्रह की रक्षा के लिए ही तुमने अपना विवाह नहीं किया है तो मल्लिका कह उठती है—"उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण प्राणियों में से हूं। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए···। सुना था राजदुहिता बहुत विदुषी हैं।" निक्षेप के इस समवेदनात्मक कथन को सुनकर कि "यदि तुम मेरी प्रेरणा से कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए विवश न करतीं, तो तुम्हारा जीवन ऐसा न होता—" मल्लिका उत्तर देती है कि मेरे जीवन में इसके अतिरिक्त और परिवर्तन ही क्या आया है कि पहले माँ काम करती थी, अब मैं काम करती हूँ क्योंकि वे रुग्ण हैं।

मल्लिका स्वमाता को औषध पिलाने लगती है। निक्षेप को घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई देती है। वह बाहर झाँकता है और उसके मुख से साश्चर्य निकल पड़ता है—"हैं-हैं ? ·· नहीं···परन्तु नहीं कैसे ?" मल्लिका द्वारा इस उत्तेजना का कारण पूछने पर वह बताता है कि मैंने घोड़े पर सवार कालिदास को पर्वत-शिखर की ओर जाते देखा है। मल्लिका यह सोचकर मर्माहत हो उठती है कि कालिदास यहाँ आने पर भी मेरे यहां न आकर पर्वत-शिखर की ओर चले गये हैं।

निक्षेप तो यह देखने बाहर चला जाता है कि पर्वत-शिखर की ओर जाने

वाला अश्वरोही कालिदास था या नहीं, और मल्लिका के घर रंगिणी और संगिनी नामक नवयौवनाएँ आती हैं। वे स्पष्ट करती हैं कि हम राज्य की ओर से कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का विशेष अध्ययन करने के लिए यहाँ आयी हैं। उन्हें यह सुनकर आश्चर्य होता है कि प्रकोष्ठ और कुम्भ को ग्रामों में भी नगर की ही भाँति प्रकोष्ठ और कुम्भ कहा जाता है। उनका तर्क है—"इस प्रदेश ने कालिदास जैसी असाधारण प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु असाधारण होनी चाहिए, किन्तु हमारा दुर्भाग्य कि हमें यहाँ कोई विशेषता ही दृष्टिगत नहीं हो रही है।" वे जब निराश होकर लौट जाती हैं तो मल्लिका के अन्तर्मन की व्यथा मुखरित हो उठती है—"आज वर्षों के अनन्तर तुम लौट कर आये हो ! सोचती थी कि तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अँधेरा-सा दिन होगा, वैसे ही मैं वर्षा में भीगूँगी और फिर तुमसे कहूँगी कि देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएं पढ़ी हैं। ××× सोचती थी मैं तुम्हें मेघदूत की पंक्तियाँ गा-गा कर सुनाऊँगी। ××× ये कोरे पृष्ठ मैंने अपने हाथों से बनाकर सिये हैं। इन पर जब भी तुम लिखोगे, उसमें मुझे अनुभव होगा कि मैं भी कहीं हूँ, मेरा भी कुछ है। परन्तु आज तुम आये हो तो सारा वातावरण और है। और···और नहीं सोच पाती कि तुम भी वही हो या···।"

ड्योढ़ी के किवाड़ों को खटखटाए जाने पर मल्लिका दरवाजा खोल देती है। अनुस्वार और अनुनासिक नामक राजसेवक स्वयं को देव मातृगुप्त के सेवक बताते हुए मल्लिका को अभिवादन करते हैं। मल्लिका द्वारा मातृगुप्त के विषय में जिज्ञासा व्यक्त करने पर वे बताते हैं कि वे ऋतुसंहार, कुमारसंभव, मेघदूत और कुमारसंभव के रचयिता तथा कश्मीर के भावी नरेश हैं। उनकी महिषी (रानी) राजपुत्री प्रियंगुमंजरी आपसे साक्षात्कार करने के लिए बड़ी उत्सुक हैं और यहाँ पहुँचने ही वाली हैं। उनके आगमन से पूर्व हम आपके उपवेशगृह के वस्तु-विन्यास में अपेक्षित परिवर्तन करना चाहते हैं। यह कहकर वे मल्लिका की गृहसज्जा में आवश्यक परिवर्तन करने की दृष्टि से उपहासास्पद वार्तालाप करते हैं जिसका परिणाम यह निकलता है कि सभी वस्तुएँ यथावत रखी रहती हैं। मातुल प्रियंगुमंजरी से मल्लिका की यह प्रशंसा करता हुआ कि वह

सारे प्रदेश में सबसे सुशील, सबसे विनीत और सबसे भोली लड़की है, उसे मल्लिका के घर ले आता है। मातुल प्रियंगुमंजरी से चाटुकारितापूर्ण बातें करने की चेष्टा करता है किन्तु वह उसकी बातों की ओर ध्यान न देकर मल्लिका के हाथ पकड़ लेती है और कहती है—"तुम सचमुच वैसी ही हो जैसी मैंने कल्पना की थी।" जब मल्लिका उससे बैठ जाने का अनुरोध करती है, तो वह कह उठती है—'नहीं' मैं बैठना नहीं चाहती। मैं तुम्हें और तुम्हारे घर को देखना चाहती हूं। उन्होंने बहुत बार तुम्हारी और इस घर की चर्चा की है। जिन दिनों मेघदूत लिख रहे थे, उन दिनों प्रायः यहां का स्मरण किया करते थे।" वह यह खेद व्यक्त करती है कि यहां रहकर यहां की प्राकृतिक-सुषमा का अनुपान नहीं किया जा सकता, क्योंकि हमें शीघ्र ही काश्मीर पहुँच-कर वहां के शासन के उत्तरदायित्व को सँभालना है। वहां की राजनीतिक स्थिति संकटपूर्ण होने के कारण हम वहां शीघ्रातिशिघ्र पहुंचने को विवश हैं।

प्रियंगुमंजरी मल्लिका के आसन पर रखे हुए भोजपत्रों को देखकर पूछती है कि ये किसकी रचनाएँ हैं। जब मल्लिका यह बताती है कि ये कालिदास की रचनाएँ हैं, तो उसकी भृकुटियां संकुचित हो उठती हैं और वह मल्लिका से कह उठती है कि वे अब मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं। जब उसे यह ज्ञात होता है कि मल्लिका ने वे रचनाएं व्यवसायियों से मंगवाई हैं, तो प्रियंगुमंजरी कह उठती है—"मैं समझ सकती हूं। मैं उनसे जान चुकी हूं कि शैशव से उनकी संगिनी रही हो। उनकी रचनाओं से तुम्हारा मोह स्वाभाविक है।" वह यह भी कहती है—"वे भी जब-तब यहां के जीवन की चर्चा करते हुए आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। इसलिए राजनीतिक कार्यों से कई बार उनका मन उखड़ने लगता है। ऐसे अवसरों पर उनके मन को संतुलित रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक-एक क्षण का महत्त्व है। कभी एक क्षण भी स्खलित हो जाय तो बड़ा अनिष्ट हो सकता है।" वह स्पष्ट करती है कि मैं तुम्हारे ग्राम-प्रान्तर का कुछ वातावरण अपने साथ काश्मीर ले ज़ाने की चेष्टा कर रही हूं जिससे उनका (कालिदास) मन उदास न हुआ करे। इस दृष्टि से मातुल और उनके परिवार को साथ ले जाने के साथ-साथ हम यहां से कुछ हरिणशावक और वनस्पतियाँ भी काश्मीर ले जाएँगें।

तदनन्तर मल्लिका के घर की जीर्ण-शीर्ण दशा को देखकर वह उसके परिसंस्कार की आवश्यकता बताते हुए यह इच्छा व्यक्त करती है कि मैं तदर्थ दो कुशल स्थपतियों को आज्ञा दे जाऊँगी, किन्तु मल्लिका उसके इस अनुरोध को सविनय अस्वीकार कर देती है। मल्लिका उसके इस अनुरोध को भी स्वीकार नहीं करती कि तुम और तुम्हारी माँ भी हमारे साथ काश्मीर चले। वह यह रहस्योद्घाटन भी करती है कि मैंने यहाँ आने से पूर्व जो दो राज्य अधिकारी प्रेषित किए थे, उसका एक विशेष अभिप्राय था। वह उद्देश्य यह था कि तुम उनमें से जिस किसी को अपने योग्य समझो, उसी के साथ तुम्हारे परिणयन का प्रबन्ध किया जा सकता है। इस मर्मान्तक प्रस्ताव को सुनकर मल्लिका की आँखें छलछला आती हैं और वह अपना ओठ काटते हुए निवेदन करती है कि देवि ! इस विषय की चर्चा छोड़ दीजिए। जब प्रियंगुमंजरी यह प्रश्न करती हैं कि क्या तुम्हारे मन में यह कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर-परिवार हो ? तो सहसा ही अम्बिका आकर यह उत्तर देती है—"नहीं, इसके मन में यह कल्पना नहीं है। यह भावना के स्तर पर जीती है। अतः इसके मन में अपने घर-बार बसाने की कल्पना नहीं है।" प्रियंगुमंजरी जब यह इच्छा व्यक्त करती है कि आपके इस जीर्ण-शीर्ण घर को गिरवा कर इसके स्थान पर दूसरा घर बनवा दिया जाय, तो मल्लिका उससे अनुरोध करती है कि नहीं, ऐसा आदेश मत देना। वह यह कह कर चली जाती है कि मुझे आगे की यात्रा के लिए कई कार्य सम्पन्न करने हैं। अवकाश तो अब भी न था किन्तु वे पर्वत-शिखर की ओर घूमने चले गए थे, मैं उस बीच इधर चली आयी।

प्रियंगुमंजरी के चले जाने पर अम्बिका मल्लिका की ओर मुड़ती है और उस पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करते हुए कहती है, "लो मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थी कि उनके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है···? आज उस कोमलता का और भी साकार रूप देख लिया ? मल्लिका स्वमाता की ओर ठगी-सी देखती रहती है और अम्बिका कहती जाती है—"आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है। क्यों नहीं स्वीकार कर लेती ? घर की भित्तियों का परिसंस्कार हो जायगा और तुम उनके यहाँ परिचारिका बन सकोगी। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य चाहिए ?" मल्लिका स्वमाता के क्षोभ को शान्त करने का प्रयास कर रही होती है कि तभी वहाँ विलोम आ जाता है तथा अम्बिका और मल्लिका पर यह कहकर व्यंग्यात्मक प्रहार करता है—"इस प्रकार क्षुब्ध क्यों हो मल्लिका ? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे

सौभाग्य पर तुमसे स्पर्धा कर रहा है।" अम्बिका आक्रोशपूर्वक कह उठती है कि "मैं स्वयं चलकर सारे ग्राम में अपने इस सौभाग्य की घोषणा करना चाहती हूँ कि हमारे वर्षों के अभाव और दुःख इतना बड़ा फल लाये हैं कि राज्य के स्थपित हमारे घर की भित्तियों का परिसंस्कार कर देंगे।"

विलोम अम्बिका को बताता है कि आज तो समस्त ग्रामवासी स्व-कार्यों को भूलकर अतिथियों की सेवा में निमग्न हैं। उधर राजकीय कलाकार यहाँ की प्रत्येक वस्तु की अनुकृतियाँ बनाते फिर रहे हैं। एक कलाकार को तो मैंने यहाँ की धूप में अपनी ही छाया की अनुकृति बनाते देखा है। अम्बिका यह इच्छा व्यक्त करती है कि मैं छाया-ग्राहिणी राक्षसी (सुरसा) होती, जिससे मैं··· । अम्बिका खाँसी उखड़ आने के कारण अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाती किन्तु उसके कथन का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि उस राक्षसी के रूप में मैं उस कालिदास को यहाँ पकड़ लाती जो हमारे जीवन को बर्बाद करके भी इधर नहीं फटका है। विलोम भी यह आश्चर्य व्यक्त करता है कि कालिदास इधर नहीं आया। मल्लिका विलोम से वहाँ से चले जाने का आग्रह करती है, किन्तु वह ढीठतापूर्वक इसी उद्देश्य से वहीं रुका रहता है कि यदि कालिदास आए तो मैं भी उससे दो बातें कर लूं। जब मल्लिका उससे यह कहकर चले जाने का अनुरोध करती है कि उनसे मिलने का यही एक स्थान नहीं है तो विलोम कह देता है कि यही स्थान क्या बुरा है ? घोड़े की टापों के शब्द को सुनकर वह समझती है कि कदाचित् प्रियतम कालिदास यहाँ आ रहे हैं अतः वह विलोम की बाँह पकड़ कर भी वहाँ से निकालना चाहती है, किन्तु वह टस से मस नहीं होता। किन्तु जब घोड़े की टापों का शब्द बहुत निकट आकर दूर चला जाता है तो मल्लिका की निराशा और व्यथा का पारावार नहीं रहता। अम्बिका कह उठती है—"मैं जानती थी। आज नहीं, तब से ही जानती थी। वह आता तो मुझे आश्चर्य होता। अब मुझे कोई आश्चर्य नहीं है।" विलोम के चले जाने पर अम्बिका की आंखें छलछला उठती हैं और वह मल्लिका को अपनी भुजाओं में भर लेती है। मल्लिका उसके वक्ष में मुंह छिपाकर सिसकने लगती है। उसको दुलारती हुई अम्बिका समझाती है—"अब भी रोती हो ? उसके लिए ? उस व्यक्ति के लिए जिसने······?" मल्लिका के इस उत्तर के साथ द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है —"उनके सम्बन्ध में कुछ मत कहो माँ, कुछ मत कहो······ ।"

तृतीय अंक

तृतीय अंक के आरम्भ का दृश्य भी अम्बिका-मल्लिका के घर के दृश्य से होता है जो अब बड़ी जीर्ण-शीर्ण दशा में है। दृश्य आरम्भ होने के समय प्रथम अंक के समान वर्षा और मेघ-गर्जन का शोर सुनाई पड़ता है। मातुल, जो लंगड़ा हो जाने के कारण अब बैसाखी के सहारे चलता है, आता है और चारों ओर दृष्टि डालकर नकारात्मक भाव से सिर हिलाता है। मातुल के पुकारने पर जीर्ण-वस्त्रा भाव-शून्य-नेत्रा तथा मलिन-कान्ति, मल्लिका प्रवेश करती है। तल्प के स्थान पर एक पालना रखा दिखाई देता है जो इस तथ्य का सूचक है कि मल्लिका जननी बन चुकी है। मातुल के कथन से स्पष्ट है कि वह अपने काश्मीर-प्रवास के समय कालिदास के राजप्रासाद में फिसलकर अपना पांव तोड़ बैठा है तथा यहां लौटकर भी संतुष्ट नहीं है क्योंकि उसके ही शब्दों में—"अब पीछे से उन लोगों ने मेरा पैर भी ऐसा कर दिया है कि कहीं मेरा पैर जमता ही नहीं। इन चिकने शिला-खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैर को तो पकड़ती थी। मैं तो इस घर के रहते भी गृहहीन हो रहा हूं।" वह राज-प्रासाद में रहने की यह कह कर भी निन्दा करता है कि वहां आपको प्रत्येक समय प्रतिहारी घेरे रहते हैं।

मातुल के कथन से ज्ञात होता है कि अम्बिका दिवंगत हो चुकी है तथा स्वाभिमानिनी मल्लिका ने प्रियंगुमंजरी द्वारा भेजे वस्त्रों और स्वर्ण-मुद्राओं को वापस कर दिया था जिससे उसके घर की आर्थिक स्थिति सम्प्रति बड़ी ही दय-नीय है। वह अपने घर का परिसंस्कार भी नहीं कराती। तदनन्तर वह मल्लिका को काश्मीर-विषयक यह सूचना देता है कि सम्राट का निधन हो गया है। काश्मीर में विद्रोही शक्तियां सिर उठा रही हैं और ऐसा सुना जाता है कि कालिदास ने काश्मीर छोड़कर संन्यास ग्रहण करते हुए काशी चला गया है। मल्लिका उसके साथ असहमति व्यक्त करते हुए कहती है कि यह सत्य नहीं हो सकता कि वे संन्यास ले लें। मेरा हृदय इस समाचार पर विश्वास नहीं करता। मातुल के चले जाने पर विश्वासमयी मल्लिका इस स्वगत-कथन में मग्न दृष्टिगत होती है—"नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया।

मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार संभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं, यद्यपि प्रत्यक्षतः तुमने वे शुभ-कामनाएँ ग्रहण नहीं कीं।" वह कालिदास के ग्रंथ को हाथ में उठाकर इस प्रकार बड़बड़ाने लगती है मानो वह कालिदास ही हो और वह कालिदास पर आक्षेप कर रही हो—"मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा वर्तमान रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।"

कालिदास के ग्रन्थ से बातें करती हुई मल्लिका भाव-विभोर और उन्माद-ग्रस्त हो उठती है। वह तीव्र गति से अन्दर के द्वार के पास जाकर किवाड़ खोल देती है और पालने में लेटी कन्या की ओर संकेत करते हुए कहने लगती है—"इस जीव को देखते हो ? पहचान सकते हो ? यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर मैं अब इसकी सेवा-सुश्रुषा करती हूँ।··· यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह कोई नहीं हो सका और अभाव के कोष्ठ में न जाने कौन-कौन आकृतियाँ हैं ? जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं नाम नहीं केवल विशेषण हूँ—अभिप्राय यह कि अब मैं कुलललना मल्लिका के स्थान पर वारांगना कहलाती हूँ।

अपने अधोपतन का मूल कारण दारिद्र्य को बताती हुई मल्लिका आगे कहती है कि उसने मेरे सैकड़ों गुणों को आच्छादित करके मुझे वारांगना जैसा अधम जीवन व्यतीत करने को विवश कर दिया है। मैंने सुना था कि उज्जयिनी में तुम्हारा समय वारंगनाओं के संसर्ग में कटता था, परन्तु तुमने वारांगना का यह रूप भी देखा है ? आज तुम मुझे पहचान सकते हो ? किन्तु मैं टूटकर भी यह सब विपत्तियाँ यह सोचकर सहन करती रही थी कि तुम बन रहे हो। किन्तु आज मैं यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर संन्यास ले रहे हो ? तटस्थ हो रहे हो ? उदासीन ? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस प्रकार वंचित कर दोगे ? तभी बिजली कौंध उठती है और मेघ-गर्जन सुनाई देती है जिससे प्रस्तुत नाटक के प्रथम दृश्य की स्मृति में डूब कर वह कह उठती है—

वही आषाढ़ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गर्जन हो रहा है। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। परन्तु फिर भी···।"

मल्लिका इन विचारों के भँवर में फँसी हुई कालिदास को याद कर रही है कि तभी कालिदास राजकीय वस्त्रों में किन्तु क्षत-विक्षत-सा मल्लिका की ड्योढ़ी में आ खड़ा होता है। मल्लिका उसे अकस्मात् ही आया देखकर स्तंभित रह जाती है। कालिदास आगे बढ़ता हुआ कहता है—"संभवतः पहचानती नहीं हो, और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं भी नहीं पहचानता"—मल्लिका भाव-विभोर होकर कह उठती है कि मुझे यह विश्वास नहीं हो पा रहा कि तुम, तुम हो, और मैं जो कुछ देख रही हूँ वह वास्तव में सत्य है। मैं तो इसे एक मनोरम स्वप्न मात्र समझ रही हूँ। कालिदास कह उठता है—"नहीं, स्वप्न नहीं है। यह यथार्थ है कि मैं यहाँ हूँ, दिनों की यात्रा करके थका टूटा, हारा हुआ यहाँ आया हूँ कि एक बार यहाँ के यथार्थ को देख लूं।"

आत्मकेन्द्रित कालिदास ने यह मनोरम कल्पना कर रखी थी कि मैं जब कभी भी लौटूंगा मल्लिका मुझे पहली-जैसी ही अल्हड़ नव-यौवना मिलेगी, किन्तु उसकी वास्तविक दशा देखकर उसे बड़ी निराशा होती है। वह कह उठता है—"और तुम्हीं कहाँ पहचानी जाती हो। यह घर भी कितना बदल गया है ? और मैं आशा कर रहा था कि सबका सब ज्यों का त्यों होगा, ज्यों का त्यों, स्थान···। कुछ भी तो यथास्थान नहीं।" वह आगे यह कहता हुआ कि संभव है मेरी दृष्टि बदल गयी हो, इस तथ्य का स्पष्टीकरण करता है कि जिस कारण से मैं काश्मीर जाते हुए यहाँ नहीं आया था, आज उसी कारण से आया हूँ। मल्लिका द्वारा मातुल की दी हुई सूचना के विषय में प्रश्न करने पर वह कहता है—कि "हाँ, मैंने काश्मीर छोड़ दिया है क्योंकि अब मैं सत्ता और प्रभुता के उस मोह से छुटकारा पा चुका हूँ जो वर्षों से मेरे अन्तर्मन को कसता रहा है। लोग समझते हैं कि मैंने संन्यास ले लिया है किन्तु मैंने संन्यास नहीं लिया, मैं तो केवल मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त हुआ हूँ जिससे पुनः कालिदास के कलेवर में जी सकूं। मैं यहाँ की किसी भी वस्तु की स्मृति को भूला नहीं हूँ। जाने के दिन तुम्हारी आँखों का जो रूप मैंने देखा था वह आज भी मेरी स्मृति में अंकित है।"

कालिदास और मल्लिका आपस में वार्तालाप कर रहे होते हैं कि कोई दरवाजा खटखटाता है। कालिदास द्वार खोलना चाहता है किन्तु मल्लिका उसे

वैसा करने से रोक देती है। बाहर से आगन्तुक मदिरोन्मत्त स्वर में यह कहते हुए झल्लाता लौट जाता है कि हर समय द्वार बन्द है ? हर समय बन्द। कालिदास वार्तालाप को आगे वढ़ाता हुआ कहता है कि मैं इस भय के कारण ही यहाँ से नहीं जाना चाहता था कि राजसी वातावरण मुझ पर छा जाएगा, और वैसा ही होकर रहा। काश्मीर का शासन सम्भालना मेरे लिए आश्चर्य की बात नहीं थी। वह तो मेरे अभावपूर्ण जीवन की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। संभवत: उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था। किन्तु फिर भी मैं कभी सुखी नहीं रह सका। राज्याधिकारी का कार्य क्षेत्र मेरे कार्य क्षेत्र से बाहर था। मुझे आशा थी कि मैं परिस्थितियों को वश में कर लूंगा किन्तु वैसा कभी संभव नहीं हुआ—वह मेरे लिए मृग-मरीचिका ही बना रहा। काश्मीर जाते हुए मैं तुमसे इसलिए मिलने के लिए नहीं आया था क्योंकि भय था कि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं उनसे वचना चाहता था। उसका परिणाम कुछ भी हो सकता या। मैं यह तो समझता था कि तुम पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी किन्तु इस विषय में निश्चिन्त था कि तुम्हारे मन में विपरीत भाव जाग्रत नहीं होगा।

कुछ क्षणों के लिए मल्लिका अपने जीवन को धन्य समझने लगती है जब कालिदास अपने समस्त कृतित्व का श्रेय मल्लिका को देते हुए कहता है—"लोग सोचते हैं मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर वहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था। कुमारसंभव की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो। यद्यपि मैंने स्वयं यहां होने और तुमको उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। रघुवंश में अाज का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी।" जब कालिदास यह आकांक्षा व्यक्त करता है कि काश! तुम मेरी इन रचनाओं को पढ़ पातीं तो मल्लिका उसके समक्ष मेघदूत, शकुन्तला आदि कृतियों की प्रतियां प्रस्तुत कर देती है जिससे कालिदास के आह्लाद का पारावार नहीं रहता।

तभी कालिदास की दृष्टि कोरे पृष्ठों पर पड़ती है जिन्हें देखकर वह प्रश्न करता है कि यह कौन-सी रचना है? मल्लिका रहस्योद्घाटन करती है—"ये पत्र मैंने अपने हाथों से बनाकर सिये थे। सोचा था तुम राजधानी से आओगे तो तुम्हें यह भेंट दूंगी। कहूँगी कि इन पृष्ठों पर अपने सबसे बड़े महाकाव्य की रचना करना।" उन पृष्ठों को उलट-पुलट कर देखता हुआ कालिदास भाव-विभोर हो उठता हैं। उसके अवरुद्ध कंठ से ये शब्द फूट उठते हैं—"स्थान-स्थान पर पानी की बूंदें पड़ी हैं जो निःसन्देह वर्षा की बूंदें नहीं हैं। लगता है तुमने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और आँखों से ही नहीं, स्थान-स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद कणों से मैले हुए हैं। स्थान-स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के गहरे रंग हेमंत की पत्र धूलि और इस घर की सीलन···ये पृष्ठ अब कोरे कहाँ हैं मल्लिका? इन पर महा-काव्य की रचना हो चुकी है···अनन्त सर्गों के महाकाव्य की।" वह यह कहते हुए जीवन को पुनः अथ से आरम्भ करने की इच्छा व्यक्त करता है—परन्तु इससे आगे भी तो जीवन शेष है। हम फिर अब से आरम्भ कर सकते हैं।

किन्तु अभागिनी मल्लिका के भाग्य में प्रियतम का साहचर्य और सुखमय दिवस लिखे ही नहीं हैं, अतः मल्लिका के घर के अन्दर से उसकी पुत्री के रोने का शब्द सुनाई देने लगता है। कालिदास जब हत्प्रभ-सा उसकी ओर देखते हुए यह प्रश्न करता है कि यह किसके रोने का शब्द है? तो मल्लिका यह कहती हुई अन्दर चली जाती है—"यह मेरा वर्तमान है।" तभी दरवाजे को तीव्राघात से ठेलता हुआ तथा कीचड़ से लथपथ और मदिरोन्मत्त विलोम लड़खड़ाता हुआ घर के अन्दर प्रवेश करता है। वह कालिदास की ओर घूरते हुए बड़बड़ाता लगता है कि यह इतनी परिचित आकृति है और इसे मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ। आकृति जानी हुई है और व्यक्ति नया-सा लगता है। वह कालिदास को पहचानकर अट्टहास कर उठता है—"तो तुम हो तुम? गिरने और चोट खाने का सारा कष्ट दूर हो गया।···कितने दिनों से तुम्हें देखने की लालसा थी। आओ।" मल्लिका विलोम को आया देखकर जड़वत् खड़ी रह जाती है। विलोम कालिदास से गले मिलना चाहता है, किन्तु वह पीछे हट जाता है। वह कालिदास और मल्लिका को सुनाता हुआ कहता

है—"विलोम इस घर में अब तो अयाचित अतिथि नहीं है। अब तो वह अधिकार से आता है। नहीं ? अब तो वह इस घर में कालिदास का स्वागत कर सकता है। नहीं ?" वह मल्लिका से कहता है—"तुमने अभी तक कालिदास के आतिथ्य का आयोजन नहीं किया ? वर्षों के अनन्तर एक अतिथि घर में आए और उसका आतिथ्य न हो ? तुम जानती हो कालिदास को इस प्रदेश के हरिणशावकों से कितना मोह है ?" फिर वह कालिदास को इस तथ्य का परिचय देकर अपमानित करने की दृष्टि से कि तुम्हारी प्रेयसी मेरी पुत्री की माता बन चुकी है, उससे कहता है—"एक हरिणशावक इस घर में भी है।...तुमने मल्लिका की बच्ची को अभी नहीं देखा ? उसकी आँखें किसी हरिणशावक से कम सुन्दर नहीं हैं।" मल्लिका द्वारा टोकने की चेष्टा करने पर भी वह कह देता है कि बच्ची की मुखाकृति मुझसे मिलती-जुलती है।

कालिदास विलोम से वहाँ से चले जाने के लिए कहता है। विलोम उसका उपहास करते हुए कहता है—"इस घर से या ग्राम-प्रान्तर से ही ? सुना था शासन बहुत बली होता है ? प्रभुता में बहुत सामर्थ्य होती है।" जब कालिदास यह अनुरोध करता है कि तुम इस समय यहाँ से चले जाओ, तो विलोम व्यंग्य मिश्रित स्वर में कह उठता है—"क्योंकि तुम यहाँ लौट आए हो ?...क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है ?...क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं ? जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं है ? तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है।" किन्तु अंततः वह यह कहता हुआ चला जाता है कि तुम अतिथि हो और मुझे अतिथि की इच्छा का सम्मान करना ही चाहिए। वह मल्लिका से कह जाता है—"देखना मल्लिका, आतिथ्य में कोई न्यूनता न रहे। जो अतिथि वर्षों में आया है, वह आगे जाने कभी आएगा या नहीं ?"

मल्लिका के जीवन की वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर कालिदास के भावों में परिवर्तन आ जाता है और वह कह उठता है—"मैंने कहा था मैं अथ से आरम्भ करना चाहता हूँ। यह सम्भवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था। परन्तु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है क्योंकि वह प्रतीक्षा नहीं करता।" बच्ची के पुनः रोने की आवाज सुनकर मल्लिका अन्दर चली जाती है। कालिदास ग्रन्थ को आसन पर रखकर ड्योढी की ओर जाने लगता है। वह

क्षण भर रुककर सोचता है फिर बाहर से किवाड़ बन्द करके चल देता है। बच्ची को वक्ष से सटाए हुए मल्लिका बाहर आती है और कालिदास को वहाँ न पाकर उसको पुकारती हुई ड्योढ़ी के किवाड़ खोल देती है। उसके पैर बाहर की ओर बढ़ने लगते हैं, किन्तु बच्ची को देखकर उसके पैर ठिठक जाते हैं। वह टूटी-सी आकर आसन पर बैठ जाती है और बच्ची को अपने वक्षस्थल से और भी सटाकर बार-बार आवेश के साथ चूमने लगती है। इसी दृश्य पर नाटक परिसमाप्त हो जाता है।

प्रश्न ४. 'आषाढ का एक दिन' की कथावस्तु के गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—कथावस्तु नाटक के मूल तत्त्वों में प्रमुख स्थान रखती है, क्योंकि कथावस्तु ही वह धुरी होती है जिसमे चरित्रोद्घाटन होता है तथा विविध घटनाओं का विकास होता है। कथावस्तु के निम्नांकित मुख्य गुण स्वीकार किए जाते हैं—

(क) वह मौलिक, संक्षिप्त और रोचक हो।

(ख) प्रमुख तथा अवांतर घटनाएँ परस्पर सुसम्बद्ध हों।

(ग) उसका आदि, मध्य और अन्त सुस्पष्ट हो।

(घ) सुष्ठु रस-योजना।

(ङ) उसमें आन्तरिक अथवा बाह्य संघर्ष की योजना की गई हो।

(च) उसमें कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों और नाट्य-सन्धियों की योजना की गई हो।

(क) मौलिकता, संक्षिप्ति और रोचकता—उपर्युक्त निष्कर्षों पर जब हम 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु को कसते हैं तो वह सफल ही सिद्ध होती है। वह इस दृष्टि से मौलिक ही है। कालिदास और मल्लिका को नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए अन्य किसी नाटक की रचना नहीं की गई है। वैसे नाटक की कथावस्तु के तीन भेद माने जाते हैं—

१—प्रख्यात।

२—उत्पाद्य, और

३—मिश्रित।

प्रख्यात कथावस्तु किसी इतिहास-प्रसिद्ध या परम्परागत घटना पर आधारित होती है जबकि उत्पाद्य कथावस्तु का मूलाधार रचयिता की उर्वर कल्पना-शक्ति होती है—अर्थात् वह काल्पनिक पात्रों को आधार बनाकर लिखी जाती है। मिश्रित कथावस्तु में इतिहास और कल्पना दोनों का सम्मिश्रण रहता है। इस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु मिश्रित कोटि की कथा-वस्तु है, क्योंकि इसमें इतिहास-प्रसिद्ध एवं परम्परा-विश्रुत पात्रों को कथानक का मूलाधार बनाते हुए भी उनके चरित्रांकन में कल्पना का भी पर्याप्त पुट मिलता है। वास्तव में इस नाटक में अधिकांश पात्र काल्पनिक ही हैं।

नाटक की कथावस्तु की संक्षिप्ति इस दृष्टि से आवश्यक होती है कि उसको रंगमंच पर आसानी से प्रस्तुत किया जा सके। यदि नाटक की कथावस्तु लम्बी होती है तथा उसमें कई अंक और अनेक दृश्य होते हैं, तो उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करना भी कठिन रहता है, तथा उसके अभिनयीकरण के लिए अधिक समय भी अपेक्षित रहता है। लम्बे नाटकों को देखते हुए प्रेक्षक ऊब उठते हैं। अतः नाटक की कथावस्तु का यह आवश्यक गुण माना जाता है कि वह इतनी ही लम्बी हो कि उसको रंगमंच पर दो-ढाई घंटे की अवधि में प्रस्तुत किया जा सके। इस दृष्टि से नाटकों में अभिनय का अनुभव रखने वाले मोहन राकेश के प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पूर्णतया सफल है। उसमें मात्र तीन अंक हैं और इन अंकों में भी अनेक दृश्य न होकर एक ही दृश्य है, जिससे रंगमंच-सज्जा में बड़ी सुविधा रहेगी। इसका आकार संक्षिप्त भी है अतः इसे सुगमता से अभिनीत किया जा सकता है, और किया भी जा चुका है।

कथावस्तु की संक्षिप्ति के साथ ही उसका एक अन्य गुण यह स्वीकार किया जाता है कि उसमें पात्रों की संख्या अधिक न हो। यदि नाटक में अनेक पात्र होते हैं और वे बार-बार रंगमंच पर आते-जाते रहते हैं तो प्रेक्षक उनके नामों को भली प्रकार याद न रख पाने के कारण भ्रम में पड़ जाते हैं। जब प्रेक्षकों को यह ही ज्ञात न हो कि सम्प्रति अमुक पात्र बोल रहा है तो फिर वे नाटक का आस्वादन ही कैसे कर सकते हैं? इस दृष्टि से भी आलोच्य नाटक की कथावस्तु बड़ी सफल है। उसमें कालिदास और मल्लिका प्रमुख पात्र हैं। तथा विलोम, अम्बिका, निक्षेप, मातुल और प्रियंगुमंजरी ऐसे पात्र हैं जो नाटक की विविध घटनाओं में यत्र तत्र योगदान करते हैं। रंगिणी, संगिनी, अनुनासिक, अनुस्वार और दन्तुल ऐसे पात्र हैं जो हमें रंगमंच पर मात्र एक

बार ही दिखाई देते हैं। जहाँ तक रोचकता का प्रश्न है, इस दृष्टि से भी 'आषाढ का एक दिन' की कथावस्तु असफल नहीं कही जा सकती। उसमें घटनाओं का विशेष उतार-चढ़ाव तथा कौतूहल तो नहीं है, फिर भी उसे पढ़ते या देखते समय पाठक-प्रेक्षक बोरियत महसूस नहीं करेंगे।

(ख) सुसम्बद्धता—प्रमुख और गौण कथाओं की दृष्टि से कथावस्तु के निम्नांकित तीन प्रभेद होते हैं, जिनका सुसम्बद्ध होना आवश्यक है—

१—मूल कथानक।
२—पताका।
३—प्रकरी।

मूल कथानक से अभिप्राय है नाटक के नायक और नायिका स सम्बन्धित कथा जो कृति के आदि से अन्त तक चला करती है। उदाहरणार्थ यदि रामायण की कथावस्तु के आधार पर नाटक की रचना की जाए तो उसमें राम, लक्ष्मण और सीता से सम्बन्धिन कथा मूल कथानक कहलायेगी। पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक के मध्य से आरम्भ होकर उसके अन्त तक चलती रहे—जैसे रामायण में सुग्रीव सम्बन्धी कथा। प्रकरी उस लघु-कथा को कहते हैं जो कृति के किसी भाग में थोड़ी देर तक चलती है और मूल कथानक के विकास में योग देकर समाप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ रामायण में ताड़का-वध, जटायु-वध, चित्रकूट-प्रसंग सम्बन्धी लघु-कथाएँ प्रकरी हैं। इस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि इसमें कालिदास और मल्लिका से सम्बन्धित मूलकथा ही आदि से अन्त तक अविरल गति से प्रवहमान है! इसमें पताका की योजना की तो नहीं गई है हाँ मातुल सम्बन्धी प्रसंग को खींच-तान करके पताका कहा जा सकता है। प्रकरी के उदाहरण के रूप में दन्तुल, अनुस्वार और अनुनासिक तथा प्रियंगुमंजरी सम्बन्धी प्रसंग प्रस्तुत किए जा सकते हैं। जहाँ तक इनकी सुसम्बद्धता का प्रश्न है, वे मूल कथानक से ऐसे सुसंयोजित हैं कि मूल-कथानक के ही अंग बन गए हैं। अभिप्राय यह है कि प्रमुख और अवान्तर कथाओं की सुशृंखला की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु पूर्णतया सफल है।

(ग) आदि, मध्य और अन्त की सुस्पष्टता—पाश्चात्य काव्यशास्त्र के आचार्य अरस्तू ने त्रासदी (Tragedy) के संदर्भ में इस तथ्य पर पर्याप्त बल दिया है

कि त्रासदी अर्थात् दुःखान्त नाटकों की कथावस्तु के आदि, मध्य और अन्त ये तीनों भाग पूर्णतया स्पष्ट हों। आदि से अभिप्राय है ऐसी घटना जो किसी अन्य घटना का प्रतिफलन न हो अर्थात् जिससे कथावस्तु का आरम्भ होता हो। मध्य से अभिप्राय है ऐसी घटना जो किसी अन्य पूर्ववर्ती घटना का परिणाम हो तथा जिसके पश्चात् भी किसी अन्य घटना के घटित होने की सम्भावना हो। अन्त से अभिप्राय है कि वह घटना जिसके घटित होने पर हमारी विवेक-बुद्धि संतुष्ट हो जाए—अर्थात् उस कथावस्तु के विषय में हमारी यह जिज्ञासा न बनी रह जाए कि तत्पश्चात् क्या हुआ होगा। अन्त के सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि हमारी यह जिज्ञासा कि 'तत्पश्चात् क्या हुआ होगा?' पूर्णतया तो तभी शान्त हो सकती है जबकि नाटककार नायक और नायिका की मृत्यु दिखा दे, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है। अरस्तू का मूल अभिप्रेत इस तथ्य पर बल देता रहा है कि त्रासदी में पीछे से जो मूल घटना चली आ रही है, उसके विषय में प्रेक्षकों को उलझन में न रखा जाए—उन्हें यह आत्म-तोष हो जाए कि नाटक के मूल संवेद्य के विषय में उन्हें पूर्ण जानकारी प्रदान कर दी गई है। इस दृष्टि से जब हम 'आषाढ़ का एक दिन' की कथा-वस्तु पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि नाटककार ने इस दिशा में भी विशेष कौशल से कार्य किया है। नाटक का प्रथम अंक उसकी कथावस्तु का आदि कहा जा सकता है जिसमें कालिदास और मल्लिका की परस्परानुरक्ति का चित्रण करते हुए, मल्लिका द्वारा कालिदास को साग्रह उज्जयिनी भेजते चित्रित किया गया है। हमारे लिए इतना जान लेना ही पर्याप्त था कि कालिदास और मल्लिका एक-दूसरे को प्रेम करते हुए जीवन-सहचर बनने के अभिलाषी हैं—और नाटककार ने इस तथ्य का उद्घाटन प्रथम अंक में कर दिया है। मध्य भाग की घटना आदि भाग से सम्बन्धित होती है और द्वितीय अंक को इस दृष्टि से मध्य भाग कहा जा सकता है। कालिदास को उज्जयिनी जाकर या तो मल्लिका को भी वहाँ बुलाकर उससे विवाह कर लेना चाहिए था, या स्वयं ही आकर विवाह कर ले जाना था किन्तु वह ऐसा न करके नरेश-पुत्री से विवाह कर लेता है। मल्लिका से विवाह करने का तो कहना ही क्या वह उसको एक पत्र तक नहीं भिजवाता और न उस ग्राम में ही आने पर भी मल्लिका से मिलने का कष्ट उठाता है—अतः हम मल्लिका के प्रति दयार्द्रता और कालिदास के प्रति उपेक्षा का भाव रखने लगते हैं। इस दृष्टि से द्वितीय अंक की कथावस्तु, समग्र कथावस्तु का सफल मध्य भाग प्रतीत होती है। कथावस्तु के 'अन्त' के

पश्चात् किसी अन्य घटना के घटने की सम्भावना नहीं रहती, तथा वह मध्य भाग से सम्बंधित होता है। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक का तृतीय अंक उसकी कथावस्तु का अन्तिम भाग कहा जा सकता है। राज्य-वंचित होकर कालिदास अपनी विस्मृत-प्रेयसी मल्लिका के ही सानिध्य में आ पहुँचता है और जीवन को पुनः अथ से आरम्भ करने का विचार व्यक्त करता है, किन्तु यह ज्ञात होने पर कि मल्लिका विलोम की पुत्री की माँ बन चुकी है, उसके हृदय को बड़ी ठेस लगती है और वह मल्लिका को उसके भाग्य पर छोड़कर चला जाता है। मल्लिका भी उसे पुकारती तो अवश्य है किन्तु नाटक के अन्त में जिस रूप में स्वपुत्री को देखकर उसके बढ़ते कदम ठिठक जाते हैं और वह उसे आवेशपूर्वक चूमने लगती है—उससे हमारे समक्ष यह तथ्य स्पष्ट हो उठता है कि मल्लिका भी अब कालिदास को प्रति-रूप में पाने का प्रयास नहीं करेगी—वह अपने वर्तमान को ही अपनी नियति समझने को विवश हो गई है। संक्षेप में, अरस्तू ने कथानक के आदि, मध्य और अन्त के सुस्पष्ट होने का जो लक्षण निर्धारित किया है. उस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' का कथानक सफल सिद्ध होता है।

रस-योजना—भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक के मूल तत्त्व तीन स्वीकार किए गये हैं—

१—वस्तु अर्थात् कथावस्तु।
२—नेता अर्थात् नायक।
तथा ३—रस अर्थात् रस-योजना।

भरत आदि आचार्यों ने इस तथ्य पर बल दिया है कि नाटक के वस्तु पात्र और अभिनय आदि तत्त्व रसानुकूल होने चाहिए—अर्थात् नाटक का मूल ध्येय प्रेक्षकों में रस का संचार करना है। इस दृष्टि से भी आलोच्य नाटक की कथावस्तु सफल है। उसमें उदात्त शृंगार-रस के भव्य स्वरूप की अभिव्यंजना हुई है। मल्लिका का कालिदास विषयक प्रेम सात्विक भावों की जिस उच्च भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित है, वह वस्तुतया श्लाघ्य है। मल्लिका की निश्छल, निःस्वार्थ, भोग-शून्य, उदात्त प्रेम की भावना पाठक-प्रेक्षकों का मन मोह लेती है। इसके साथ ही इसमें करुण, वात्सल्य और हास्य-रस का भी यथास्थान पुट मिलता है, जिससे नाटक की आस्वादनीयता में अभिवृद्धि हुई है।

(ङ) आन्तरिक या बाह्य संघर्ष की योजना—पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में नाटक

में आन्तरिक या वाह्य संघर्ष की योजना होने पर बड़ा बल दिया गया है। वाह्य संघर्ष में नायक अपने शत्रुओं, समाज, परिस्थितियों से जूझते चित्रित किया जाता है, जबकि आन्तरिक संघर्ष में उसे अपने मन में ही तरह-तरह के उठने वाले भावों-विचारों में से किसी निश्चित मार्ग को अपनाना पड़ता है— वह इस उलझन में ग्रस्त रहता है कि मैं ऐसा करूँ अथवा वैसा करूँ ? और नाटककार उसकी मानसिक ग्रंथियों का उद्‌घाटन करते हुए अंततः उसे किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचता चित्रित करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर आलोच्य नाटक की कथावस्तु विशेष सफल नहीं प्रतीत होती। उसमें वाह्य संघर्ष का तो सर्वथा अभाव है। जहाँ तक आन्तरिक संघर्ष का प्रश्न है उसका पुट नाटक की नायिका मल्लिका के ही चरित्र में अधिक मिलता है। कृति के आरम्भ से ही हमें वह अपनी माँ के इस आपेक्ष से संघर्ष करती मिलती है कि भावना में भावना के वरण का क्या उद्देश्य है ? क्या उससे जीवन की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है ? क्या ऐसे प्रेमी से विवाह करने या सुखमय जीवन व्यतीत करने की आशा की जा सकती है जो अत्यधिक आत्म-केन्द्रित है ? जो प्रेयसी के माध्यम से भी स्वात्म को ही प्रेम करता है ? मल्लिका इन आरोपों से विचलित नहीं होती। तदनन्तर उसके जीवन में मानसिक द्वन्द्व की यह विकट घड़ी समुपस्थित हो जाती है कि वह अपने स्वार्थ के लिए कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए अनुप्रेरित न करे, अथवा अपने भविष्य की चिन्ता न करते हुए अपने प्रेमी को राजधानी भेज दे जिससे वह उत्कर्ष-शिखर पर पहुँच सके ! उसकी परवर्ती भावना विजयिनी रहती है और वह विलोम द्वारा चेतावनी दिए जाने तथा कालिदास द्वारा भी समझाए जाने पर भी स्व-प्रेमी के मार्ग में व्यवधान न बनकर उसे उज्जयिनी जाने के लिए विवश कर देती है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि मेरा प्रेमी ग्राम में आकर भी मुझसे न मिलकर पर्वत-शिखर की ओर घूमने चला गया है, तथा उसका विलोम और अम्बिका द्वारा उपहास भी किया जाता है तो वह इस उलझन में फँस जाती है कि वह इतना कैसे बदल गया है ? यह समाचार पाकर कि कालिदास ने संन्यास ले लिया है उसका अंतर्मन उसे पुनः कचोटने लगता है— क्या मैंने अपना जीवन यही सोचकर व्यर्थ नष्ट किया है कि तुम संन्यास ले लो ?—तुम काव्य-साधना न करके शासन-भार सँभालो या फिर संन्यास ले लो ? नियति की मार दृढ़-से-दृढ़ संकल्पशील प्राणियों के भी संकल्पों को भूसात

कर देती है और बेचारी मल्लिका भी परिस्थितियों की मार के समक्ष घुटने टेकने को विवश हो जाती है। उसकी दयनीयता, उसकी भाग्य विडंवना तो देखिए कि वह जिस विलोम की छाया तक से घृणा करती थी, उसे उसी की अंकशायिनी वनने को विवश होना पड़ता है। कालिदास के प्रत्यागमन पर उसकी प्रेम-लता पुन: लहलहाना चाहती है, किन्तु कालिदास के चले जाने पर वह शीघ्र ही मुरझा जाती है—उसे अपनी स्थिति—अपनी नियति का परिज्ञान हो जाता है और उसके समस्त मानसिक द्वन्द्व इस तथ्य में केन्द्रीभूत हो जाते हैं कि अपने प्रेमी की लम्बी उदासीनता और विश्वासघात के कारण मैं जिस कुमार्ग पर कदम रख चुकी हूँ अब तो वही मेरा भविष्य है। मल्लिका के अतिरिक्त कालिदास के भी चरित्र में प्रथम और तृतीय अंक में अंतर्द्वन्द्व का समावेश मिलता है। प्रथम अंक में वह राज्याश्रय स्वीकार करना नहीं चाहता, क्योंकि वह इसका यह अभिप्राय ग्रहण करता है कि मुझे राजकीय मुद्राओं द्वारा क्रीत करने की चेष्टा की जा रही है। इसी प्रकार तृतीय अंक में वह अपनी मानसिक द्विधा का उल्लेख करता है जिसके कारण वह ग्राम-प्रांतर में आकर भी मल्लिका से मिलने नहीं आया था। द्वितीय अंक में निक्षेप के अंतर्मन के इस द्वन्द्व का अंकन किया गया है कि मैं ही मल्लिका के दुःखमय जीवन का निमित्त हूँ क्योंकि मैंने ही मल्लिका को यह प्रेरणा दी थी कि वह कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए बाध्य करे। हाँ, मल्लिका के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र में मानसिक संघर्ष का सम्यक् पुट नहीं मिलता। मल्लिका भी तर्क-वितर्क—'to be or not to be' की स्थिति में अधिक नहीं पड़ती अपितु शीघ्र ही निश्चयात्मक कदम उठाते चित्रित की गई है।

(च) कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों और नाट्य-सन्धियों की योजना— भारतीय नाट्य-शास्त्र में कथावस्तु में पाँच कार्य की अवस्थाएँ—(प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, और फलागम) पाँच अर्थ प्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) तथा पाँच नाट्य-सन्धियों—(मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण) की सम्यक् योजना का विधान किया गया है। इन नाट्य-लक्षणों का संस्कृत के भी समस्त नाटकों में पूर्णतया निर्वाह नहीं किया गया है, अत: इन्हें नाटक का अनिवार्य लक्षण नहीं स्वीकार किया जा सकता। आधुनिक युग में तो नाटककार इन लक्षणों की उपेक्षा ही करने लगे हैं, तथापि यदि किसी नाटक में इनका सम्यक् निर्वाह मिले तो उसकी कलात्मकता और

गुणवत्ता में अभिवृद्धि ही होती है। इनमें से कार्यावस्थाएँ और अर्थ-प्रवृतियाँ तो नाटकों के पाश्चात्य लक्षणों से पर्याप्त साम्य रखती हैं। उदाहरणार्थ पाश्चात्य आलोचना-शास्त्र में भी कथा-विकास को पाँच भागों में विभक्त किया जाता है—(१) Incident अर्थात् आरम्भ। (२) Rising action अर्थात् कार्य का विकास या प्रयत्न। (३) Climax अर्थात् चरमसीमा या प्राप्त्याशा। (४) Denoument अर्थात् निगति या नियताप्ति तथा (५) Catastrophe। हाँ, यह साम्य उस दशा में अधिक सार्थक सिद्ध होता है जब नाटक सुखान्त हो, दुःखान्त नाटकों के संदर्भ में कार्यावस्थाएँ ठीक नहीं उतरतीं।

इन कार्यावस्थाओं का जहाँ तक 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु के संदर्भ में नियोजित करने का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि उसमें उनकी नियोजना सफलतापूर्वक नहीं की गयी है। इसका मूल कारण यह है कि आलोच्य नाटक दुःखान्त नाटक है। यह कहा जा सकता है कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के लक्षण सुखान्त नाटकों के ही आधार पर निर्धारित किए गए हैं क्योंकि यहाँ दुःखान्त नाटकों का प्रायः अभाव ही रहा है। अतः फलागम की दृष्टि से जो प्रयत्न किए जाने चाहिए, या प्राप्ति की आशा होनी चाहिए उसकी संगति फलागम के साथ नहीं बैठती। उदाहरणार्थ प्रस्तुत नाटक में नायक-नायिका के मिलन के रूप में फलागम नहीं होता—अपितु उनके मिलन की जो क्षीण आशा थी वह भी विलुप्त हो जाती है—एक प्रकार से खल-नायक विलोम को नायिका की प्राप्ति हो जाने से फलागम की अंतर्हित मूल-धारणा ही छिन्न-भिन्न हो जाती है—अतः प्रस्तुत नाटक में भारतीय नाट्य-शास्त्र की कार्यावस्थाओं की सफल योजना सिद्ध नहीं होती। हाँ, पाश्चात्य आलोचना शास्त्र की दृष्टि से इसमें Five stages of development of the plot अधिक सुस्पष्ट हैं। अम्बिका द्वारा 'मल्लिका और कालिदास के प्रेम का विरोध करना प्रथम अवस्था या Incident है। कालिदास द्वारा उज्जयिनी जाकर नरेश-पुत्री से विवाह कर लेने, उसके वारांगनाओं में आसक्त रहने तक की घटनाएँ द्वितीय अवस्था (Rising action) कही जा सकती हैं। कालिदास का ग्राम में आने पर भी मल्लिका से न मिलना चरमोत्कर्ष या climax है; मल्लिका द्वारा विवश होकर विलोम को आत्मसमर्पण कर देना निगति या Denoument है जबकि मल्लिका और कालिदास का सदैव के लिए बिछुड़ जाना अन्त या catastrophe कहा जा सकता है।

अर्थ प्रकृतियों में से पताका और प्रकरी पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है। बीज, विन्दु और कार्य को बहुत कुछ अंशों में अरस्तू के आदि, मध्य और अंत का पर्याय माना जा सकता है। बीज से अभिप्राय उस प्रारम्भिक प्रसंग से होता है जिसमें फल छिपा रहता है। प्रथम अंक का वह प्रसंग जिसमें अम्बिका मल्लिका को यह बताती है कि मैंने अग्निमित्र के माध्यम से तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव भेजा था, पर उन लोगों ने अस्वीकार कर दिया है, तो मल्लिका प्रश्न करती है कि जब मैं विवाह कराना ही नहीं चाहती तो तुमने प्रस्ताव क्यों भेजा था ? मल्लिका के इस प्रश्न का अम्बिका जो उत्तर देती है, उसमें नाटक का फल भी छिपा हुआ है। वह कहती है—'मैं देख रही हूँ कि तुम्हारी बात ही सार्थक होने जा रही है"—और वास्तव में ही मल्लिका का विवाह नहीं हो पाता। 'विन्दु' नामक अर्थ-प्रकृति में कथा के विस्तार की द्योतक घटनाएँ परिगणित की जाती हैं। इस दृष्टि से कालिदास के काश्मीर से प्रत्यागमन के पूर्व की घटनाएँ 'विन्दु' अर्थ प्रकृति के अंतर्गत आएँगी। कार्य से अभिप्राय है नाटक की अन्तिम घटना या प्रसंग और वह वही है जिसे अरस्तू ने 'अंत' की संज्ञा दी है। कालिदास द्वारा मल्लिका को छोड़ कर चला जाना और उसका अपनी बच्ची को वक्ष से लगा कर आवेशपूर्वक चूमने लगना, 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति के अंतर्गत आएगी।

पंच-सन्धियों में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण की गणना की गयी है, जो नाटक के मूल संबंध या कार्य की सिद्धि में योग देती हैं। इनकी ओर सम्प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया जाता और जब नाटक में पाँचों कार्यावस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों की नियोजना न की गई हो, तो नाट्य संधियों की योजना का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, इनका न मिलना आधुनिककालीन आलोचना के प्रतिमानों की दृष्टि से दोष नहीं है, और आलोच्य नाटक के रचयिता को भी तदर्थ दोष नहीं दिया जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मौलिकता, रोचकता, संक्षिप्ति, कम पात्रों की योजना, घटनाओं में सुसम्बद्धता, रस और संघर्ष की योजना आदि कथावस्तु के जो मूल गुण माने जाते हैं, उनमें से 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु में अधिकाधिक गुणों का समावेश मिलता है।

प्रश्न ५—'आषाढ का एक दिन' के पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—'आषाढ़ का एक दिन' की घटनाओं के विकास में योगदान करने वाले पात्र महत्त्व के क्रमानुसार निम्नांकित हैं,—

(क) मल्लिका (ख) कालिदास
(ग) विलोम (घ) मातुल
(ङ) अम्बिका (च) निक्षेप
(छ) प्रियंगुमंजरी (ज) दन्तुल
(झ) अनुनासिक और अनुस्वार (ञ) रंगिणी और संगिनी

संदर्भगत पात्रों के चरित्र पर इसी अनुक्रम से प्रकाश डाला जा रहा है।

मल्लिका

अनुपम त्यागमयी, निश्छल हृदया तथा प्रेमी की मंगल-कामना से अपने जीवन के स्वप्नों को न्यौछावर कर देने वाली मल्लिका की यश-सुरभि से प्रस्तुत कृति मल्लिका-पुष्प की सुगंध के समान ही गमक रही है। कृति के आरम्भ में हमें इसके नायक कालिदास से पूर्व मल्लिका के दर्शन होते हैं और नाटक की समाप्ति पर भी स्वपुत्री को आवेशावस्था में चूमती मल्लिका ही हमारी दया की पात्री के रूप में रंगमंच पर विद्यमान रहती है। आलोच्य कृति की विविध घटनाएँ उसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व से अंतंसम्बन्धित हैं—वह तो एक ऐसा प्रकाश-केंद्र है जिसके प्रकाश में हमारे समक्ष नाटक के अन्य समस्त पात्रों के भले-बुरे, सुन्दर-कुरूप चरित्र-चित्र सुस्पष्ट हो उठते हैं। नाटक में ऐसा एक भी पात्र नहीं जो मल्लिका के संसर्ग में न आता हो। वह नाटक में आद्यन्त हमारी करुणा एवं प्रीति-पात्री बनी रहती है। अतः इस तथ्य में रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि इस नायिका-प्रधान नाटक की मल्लिका मूल धुरी है और यदि इस कृति का नामकरण नायक या नायिका के नाम के आधार पर किया जाता तो वह निश्चय ही मल्लिका किया जाना चाहिए था। जहाँ तक मल्लिका के चारित्रिक गुणावगुणों का प्रश्न है उसमें हमें गुण-ही-गुण परिलक्षित होते हैं—यदि उसका कोई अवगुण या दोष है तो वह मात्र यह है कि वह कालिदास को प्रेम करती है और वह प्रेम भी ऐसा जिसमें स्वार्थ को स्थान न होकर प्रिय की मंगल-भावना प्रधान है, जिसमें आदान की नहीं अपितु प्रदान की भावना का प्राबल्य है, जिसमें प्रेम की निश्छलता के निर्वाह के लिए दुनिया को अँगूठा दिखाने की शक्ति है। हाँ, यह दूसरी बात है कि इस प्रकार की नादानी करने वाली ललनाओं को स्वार्थी पुरुष वर्ग की ओर से विश्वासघात-उपेक्षा-अवहेलना आदि के जो पुरस्कार प्रदान किए जाते

हैं—मल्लिका की नियति भी उससे भिन्न नहीं हैं। उस अनाथ कलिका को निष्ठुर पुरुष वर्ग द्वारा पैरों तले रौंद दिया जाता है—उसकी भावनाएँ, उसकी आशा-आकांक्षाएँ आकाश-कुसुम मात्र रह जाती हैं। उसके चरित्रांकन को निम्नांकित शीर्षकों में विभक्त करके अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है—

पितृहीन अल्हड़ किशोरी—हतभाग्या मल्लिका का प्रथम दुर्भाग्य तो यह ही है कि उसके सिर से असमय ही पिता की छत्रछाया उठ जाती है तथा उसके कोई भाई भी नहीं है, निदान मल्लिका और उसकी माँ को ही किसी प्रकार उदर-पूर्ति के साधन जुटाने पड़ते हैं। मल्लिका अल्हड़ नवयौवना है, वह जगरीति का सम्यक् ज्ञान नहीं रखती अतः इस तथ्य के गम्भीर परिणामों को नहीं सोच पाती कि उसके कालिदास-सम्बन्धी प्रेम का जो अपवाद फैलता जा रहा है उसका क्या भयंकर परिणाम निकल सकता है। उसकी देखभाल करने वाली है उसकी वृद्धाप्राय माँ, जिसकी अपनी इकलौती पुत्री या कहिए जीवन की एकमात्र आधार पुत्री पर अपेक्षा से अधिक स्नेह-भाव है। वह मल्लिका को जग की ऊँच-नीच समझाने के लिए उससे रूठती तो है, किन्तु अपनी अल्हड़-पुत्री पर कोई कड़ा प्रतिबन्ध नहीं लगा पाती। कहा जा सकता है कि यदि मल्लिका के पिता जीवित होते तो कदाचित् उसके जीवन की वह दयनीय परिणति नहीं होती जो नाटक में चित्रित की गई है।

हठीली पुत्री—अम्बिका की इकलौती सन्तान होने के कारण मल्लिका के चरित्र में उस हठ और दुराग्रह का पर्याप्त पुट है, जो प्रायः ही इकलौती सन्तानों में पाया जाता है। अम्बिका उसे बार-बार यह समझाने की चेष्टा करती है कि मात्र भावनाओं में खोये रहकर जीवन की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती, किन्तु मल्लिका की हठ के समक्ष उसे हार ही माननी पड़ती है। उदाहरणार्थ अम्बिका इस बात पर मल्लिका से बड़ी रुष्ट है कि वह वर्षा होने की सम्भावना होने पर भी घर नहीं लौटी और कदाचित् अपने प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा में भीगती रही है। वह मल्लिका की बातों की उपेक्षा करती हुई उसे 'ना' अथवा 'हाँ' में ही उत्तर देती है तो मल्लिका उसके हाथ से यह कहकर छाज ही छीन लेती है कि मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगी और उसे दूर रख आती है। स्वयं मल्लिका का ही यह कथन—"मेरे घर में रहने पर भी तुम अकेली होती हो ?...कभी तो मेरी भर्त्सना करती

हो कि मैं घर में रहकर तुम्हारे सब कामों में बाधा डालती हूँ और कभी कहती हो ···"—इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि उसे माँ के दुलार-भाव ने किसी सीमा तक बिगाड़ रखा है, वह माँ के कार्यों में हाथ नहीं बँटाती, अपितु माँ को खिजाती रहती है। स्वपुत्री की हठ के सामने झुककर ही अम्बिका उसके विवाह के विषय में अधिक दौड़ धूप नहीं करती।

कल्पनाजीवी एवं भावुकतामयी—मल्लिका अत्यधिक भावुक है। प्रेमी के साथ वर्षा में विहार करने के अनन्तर उसका अंग-प्रत्यंग हुलसने लगता है—वह भावुकता के गगन में विहार करने लगती है। नाटक के आरम्भ में ही उसके द्वारा स्व-मातः से कही गई यह उक्ति कवित्व एवं भावुकता से ओत-प्रोत है—"मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती। ···चारों ओर धुँआरे मेघ घिर आए थे। मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती गई। एक बार मेरा अंशुक भी हवा ने उड़ा दिया। फिर बूँदें पड़ने लगीं।···वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत। नीलकमल की तरह कोमल-आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय।···मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूँद लूँ माँ × × × आज के वे क्षण मैं कभी भूल नहीं सकती। साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी माँसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि क्या है, जो भावना को कविता का रूप देता है।"

मल्लिका के सन्दर्भ में यदि यह कहा जाए कि कल्पना और भावना ही उसके ओढ़ना और बिछौना हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी। वह इतनी अधिक कल्पनाजीवी और भावुकतामयी है कि अपने और कालिदास के 'प्रेम सम्बन्ध' को वास्तविकता के स्थान पर भावना के स्तर पर प्रतिष्ठित करती है—जिसका अभिप्राय यही है कि कालिदास उसे अपनाना चाहे अथवा नहीं, किन्तु वह उसका मनसा वरण कर चुकी है और आजीवन कुँवारी रहते हुए भी कालिदास के प्रेम की माला जपते रहने को प्रस्तुत है। वह अपनी माँ से यह कहते हुए कि मैं विवाह करना ही नहीं चाहती, यह भी स्पष्ट कर देती है—"मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।" यह उसकी भावुकता का ही प्रमाण है कि

आत्मकेन्द्रित कालिदास मल्लिका से विवाह करना नहीं चाहता, किन्तु मल्लिका उसकी इस उपेक्षा और निस्संगता की भावना का दोष परिस्थितियों के सिर मढ़ती हुई कहती है—साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्योंकर की जा सकती है ? हम यह कहना चाहेंगे कि मल्लिका का यह कथन नितान्त भावुकतामय है--ज्ञात नहीं उसे किस आधार पर यह आशा थी कि उसके निठल्ले से प्रेमी की आर्थिक स्थिति कभी सुधर भी सकती है और जब वह सुदिवस आयेगा तब वह मुझसे विवाह कर लेगा ?

भावुकता का मल्लिका अन्तिम दृश्य के अतिरिक्त कभी भी परित्याग नहीं कर पाती। उसे यह समाचार मिल जाता है कि कालिदास ने नरेश-पुत्री से विवाह कर लिया है, उनका अधिकांश समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है, फिर भी कल्पनाजीवी मल्लिका यह आशा सँजोये बैठी रहती है कि मेरे प्रेमी महाशय मुझे विस्मृत न कर पाएँगे। ग्राम-प्रान्तर में आने पर कालिदास उससे मिलने नहीं आता, फिर भी भावुकतामयी मल्लिका स्वयं को कालिदास से पृथक् विच्छिन्न नहीं समझती। नाटक के तृतीय अंक में मातुल से यह सूचना पाकर कि कालिदास ने काश्मीर का शासन-भार त्यागकर संन्यास ले लिया है, वह कालिदास के ग्रंथों को सम्बोधित करती हुई जो उद्‌गार व्यक्त करती है, उससे अधिक भावुकता और क्या हो सकती है ? "मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा वर्तमान रहे हो मैंने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया। तुम रचना करते रहे औ मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है (ग्रंथ को घुटनों पर रख लेती है) और आज तुम मेरे जीवन को इस प्रका सर्वथा निरर्थक कर दोगे ? (ग्रंथ को आसन पर रखकर उद्विग्न भाव से उसव ओर देखती है) तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्र नहीं हो सकती। तुम जीवन को मेरी दृष्टि से क्यों नहीं देखते ?" कहना होगा कि उसकी इस भावुकता ने जहाँ पाठक-प्रेक्षकों की दृष्टि में उस चारित्रिक उत्कर्ष किया है, वहाँ वस्तु जगत् में उसका जीवन दुःखागार ब जाता है।

निश्चल, निःस्वार्थ प्रेमिका—सच्चा प्रेम निश्छल और निःस्वार्थ होता है उसमें स्वार्थ-भावना का कलुष नहीं होता। इस कसौटी की दृष्टि से मल्लि का चरित्र बड़ा प्रशंसनीय है। यह उसकी कालिदास के प्रति निश्छल

निःस्वार्थ प्रेम से अर्जित शक्ति का ही प्रताप है कि वह माता का विरोध और लोकापवाद सहकर भी अपनी प्रेम-भावना में न्यूनता नहीं आने देती। उसकी माता चाहती है कि कालिदास उज्जयिनी जाने से पूर्व उससे विवाह कर ले तथा विलोम तो इस तथ्य को मल्लिका ही नहीं अपितु कालिदास के भी सम्मुख प्रस्तुत कर देता है, फिर भी मल्लिका नहीं चाहती कि वह अपने प्रेमी के उज्जयिनी-गमन में अपने विवाह का बखेड़ा खड़ा करके अड़चन डाल दे। उसके स्वमाता से कहे गए इन उद्गारों में उसका निःस्वार्थ हृदय छलक उठा है—"माँ, आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है। आगे भी बीत जायेगा। आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती।"

कालिदास उसके अनुराग की ओर इंगित करते हुए उज्जयिनी नहीं जाना चाहते, किन्तु मल्लिका के हृदय में यह धारणा घर कर गई है कि ग्राम में रहते हुए उनकी काव्य-प्रतिभा का सम्यक् विकास नहीं हो सकता। अतः वह उनसे बड़ा मार्मिक प्रश्न करती है—"तुम समझते हो कि तुम इस अवसर को ठुकराकर यहाँ रह जाओगे तो मुझे सुख होगा ?" वह सरला इस तथ्य को भी स्पष्ट कर देती है कि प्रथम तो तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर नहीं हो सकते ? तथा मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती, इसीलिए जाने का आग्रह कर रही हूँ।

मल्लिका का हृदय भी बड़ा उदार है। उसे अब यह ज्ञात होता है कि उसके प्रेमी के विषय में ऐसा लोकापवाद है कि उसका अधिकांश समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है, तो वह कह देती है—"कोई व्यक्ति उन्नति करता है तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद अनायास जुड़ने लगते हैं।" जब निक्षेप कालिदास पर यह आक्षेप करता है कि वे यहाँ रहते हुए तो कहा करते थे कि मैं जीवन-भर विवाह नहीं करूँगा जबकि उन्होंने उज्जयिनी जाकर विवाह कर लिया है और उनके इस आग्रह की रक्षा के लिए तुमने अभी तक कौमार्य-व्रत ही ले रखा है, तो वह तुरन्त कह उठती है—"उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण प्राणियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए।" वह निश्छल, निःस्वार्थ, प्रेममयी तो यह सोचकर प्रमुदित है कि मैं स्वप्रेमी के काव्योत्कर्ष में बाधक नहीं बनी हूँ, मैंने उन्हें उज्जयिनी भेजकर बड़ा उत्तम

कार्य किया है। हाँ, भाग्य के हाथों ठोकरें खाकर उसे इस तथ्य का ज्ञान हो जाता है कि जीवन भावना और कल्पना के आधार पर नहीं जिया जा सकता, उसकी स्थूल अपेक्षाएं बड़ी निष्ठुर और क्रूर होती हैं। उसकी भावनाएँ कालिदास की सतत् उपेक्षा के कारण भूलुंठित हो उठती हैं—अपने अभावमय या कहिए वास्तविक जीवन में उसे विलोम की अंकशायिनी बनने को विवश होना पड़ता है—वह अपना नाम खोकर एक विशेषण (कुलटा) मात्र रह जाती है।

सच्चे प्रेमी और प्रेमिकाओं का एक-दूसरे को देखने का दृष्टिकोण बदल जाता है—उन्हें उनके अवगुण भी गुण प्रतीत हुआ करते हैं। मल्लिका कालिदास की सच्ची प्रेमिका है और उसे अपने हृदय की समस्त भावना से अनुराग करती है। यही कारण है कि वह स्वप्रेमी के विरोध में एक शब्द तक नहीं सुन पाती और उसके दोषों को भी गुण, उसकी दुर्बलताओं को भी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है। उसका हृदय यह अनुभव करके कचोट उठता है कि उसकी माँ भी ग्राम के अन्य लोगों की तरह कालिदास को सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती है। जब दन्तुल और कालिदास में आहत हरिणशावक को लेकर विवाद होता है तो आरम्भ में तो वह दन्तुल को यह कह कर फटकारती है कि तुम्हें ऐसे लांछन (चोरी करने में निपुणता) लगाते लज्जानुभव नहीं होता! जब कालिदास हरिणशावक को लेकर चला जाता है और दन्तुल अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखकर पीछा करना चाहता है, तो वह उसका मार्ग रोक कर खड़ी हो जाती है और उसे डपटती हुई-सी कहती है—"ठहरो राजपुरुष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिये प्रश्न अधिकार का है, उनके लिये संवेदना का। कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।" वह अपनी माँ से इस हेतु झगड़ती है कि वह कालिदास के विषय में उदारतापूर्वक नहीं सोचती, उसे पूर्वाग्रह के कारण उसके गुण भी दोष प्रतीत होते हैं। अम्बिका बड़ा स्वाभाविक प्रश्न करती है कि यदि उसका भी तुमसे भावना का सम्बन्ध है, तो वह तुमसे विवाह क्यों नहीं करता? यह प्रश्न अपने आप में बड़ा सार्थक था, किन्तु मल्लिका का प्रेमाप्लावित हृदय इस विकट प्रश्न को भी यह कह कर हवा में उड़ा देता है—'तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो माँ। तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है? उस

साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्योंकर की जा सकती है।" विलोम जब-जब कालिदास पर व्यंग्य प्रहार करता है या अम्बिका से बातें करते हुए उस पर आक्षेप लगाता है वह विलोम पर बिगड़ उठती है। निक्षेप द्वारा इस ओर इंगित करने पर कि व्यवसायियों के मुख कालिदास के विषय में कुछ अपवाद (वारांगनाओं का साहचर्य) सुनने को मिले हैं, तो वह कालिदास का पक्ष लेती हुई कह उठती है कि उन्नति करने वालों के विषय में लोगों की इस प्रकार के अपवाद फैलाने की आशा ही होती है। जब कालिदास उज्जयिनी से दो-तीन वर्ष पश्चात् ग्राम-प्रान्तर मे आने पर भी मल्लिका से साक्षात्कार करने नहीं आते और अम्बिका तथा विलोम उनके इस आचरण की कटु शब्दों में निन्दा करते हैं, तो मल्लिका उत्तेजित हो उठती है। वह विलोम की बाँह पकड़ कर अपने घर से बलात् निकाल देने की चेष्टा करती है और उसके द्वारा ढीठतापूर्वक तब भी न जाने पर अपनी माँ से कातर स्वर में कहती है—"माँ, इनसे कहो ये यहाँ से चले जायें। मैं नहीं चाहती कि इस समय यहाँ कोई अयाचित स्थिति उत्पन्न हो।" कालिदास द्वारा उससे बिना मिले ही लौट जाने पर उसके संयम का बाँध टूट जाता है। और वह सिसकती हुई स्वमाता के वक्ष में मुख छिपा लेती है। किन्तु जब उसकी माँ उसे यह कह कर समझाती है—"अब भी रोती हो ? उसके लिए ? उस व्यक्ति के लिए जिसने···?"—तो मल्लिका और भी अधिक सिसकती हुई कह उठती है—"उनके सम्बन्ध में कुछ मत कहो माँ, कुछ मत कहो···।"

स्वाभिमानिनी—मल्लिका के हृदय में आत्म-सम्मान या स्वाभिमान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। प्रियंगुमंजरी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि तुम्हारे घर का परिसंस्कार करा दिया जाय, किन्तु वह उसके इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर देती है, क्योंकि इससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है—"आप बहुत उदार हैं। परन्तु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिए हमें असुविधा नहीं होती।" विलोम से वह घृणा करती है और उसका रंचमात्र भी अहसान नहीं चाहती। इसीलिये जब वह उसकी माँ के लिए मधु दे जाने की बात कहता है तो वह कह देती है—"हमें मधु की आवश्यकता नहीं है। हमारे घर में मधु पर्याप्त मात्रा में है।" कालिदास जब ग्राम-प्रान्तर में आकर भी उससे मिलने नहीं आता तो उसका स्वाभिमान आहत हो उठता है और उसके मुख से ये शब्द फूट पड़ते हैं·

"आज वर्षों के अनन्तर तुम लौटकर आये हो। सोचती थी कि तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अंधेरा-सा दिन होगा, वैसे ही एक बार मैं वर्षा में भीगूंगी और तुमसे कहूँगी देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं। × × × परन्तु आज तुम आए हो तो वातावरण और है। और'''और नहीं सोच पाती कि तुम भी कहीं हो या'''।" इसी प्रकार जब प्रियंगुमंजरी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि वह अनुनासिक और अनुस्वार नामक राज्याधिकारियों में से किसी के साथ विवाह कर ले, तो उसके आत्माभिमान को बड़ी ठेस पहुँचती है और वह उससे कह देती है कि आप इस विषय में चर्चा न ही करें तो अच्छा है। हाँ, उसका यह स्वाभिमान अंत तक स्थिर नहीं रह पाता — उसे नियति के समक्ष घुटने टेकने पड़ जाते हैं। वह उसी विलोम की अंकशायिनी बनने को विवश हो जाती है, जिससे वह तीव्र घृणा करती आयी है।

विनम्र — मल्लिका के चरित्र में विनम्रता का पर्याप्त पुट है और वह प्रस्तुत नाटक के प्रायः प्रत्येक पात्र के साथ शालीनता प्रदर्शित करती दृष्टिगत होती है। विलोम के प्रति उसका मन कटु घृणा से भरा रहता है, किन्तु उसकी कटूक्तियों का उत्तर देते हुए भी वह आर्य तथा अन्य आदरास्पद शब्दों का ही प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ उसके कुछ कथन द्रष्टव्य है —

(क) "आर्य विलोम, यह समय और स्थान निस्सन्देह इन बातों के लिए नहीं है। मैं आपको इस समय यहाँ देखने की आशा नहीं कर रही थी।"

(ख) "आर्य विलोम, आप अपनी सीमा से बाहर जाकर बातें कर रहे हैं। मैं बालिका नहीं हूँ, अपना शुभ-अशुभ समझती हूँ।"

(ग) "आर्य विलोम, मैं इस प्रकार की अनर्गलता को अक्षम्य समझती हूँ।"

निक्षेप तथा प्रियंगुमंजरी से हुए वार्तालापों में भी मल्लिका की शालीनता टपकती है। उसके प्रियंगुमंजरी से कही गई उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं — "यह हमारा सौभाग्य होगा कि आप कुछ दिनों के लिए इस प्रदेश में रह जाएँ। यहाँ आपको असुविधा तो होगी, फिर भी'''।" तथा — "क्षमा चाहती हूँ। मैं अपने को ऐसे गौरव की अधिकारिणी नहीं समझती।"

करुण-हृदया — आलोच्य नाटक के प्रारंभिक दृश्य में ही हमें मल्लिका के करुणा-आप्लावित हृदय के दर्शन हो जाते हैं। कालिदास द्वारा उसके विषय में कहे गये वे शब्द पूर्णतया सार्थक हैं जिन्हें वे हरिणशावक को छाती से लगा कर मल्लिका के यहाँ लाने के समय कहते हैं — "तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ, जहाँ तुम्हें

अपनी माँ की-सी आँखें और उसका सा-ही स्नेह मिलेगा।" क्योंकि जैसे ही वह आहत हरिणशावक को देखती है, वह अधीर होकर पूछ बैठती है—"यह आहत हरिणशावक ? यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया ? क्या दक्षिण की तरह यहाँ भी···?" उसके लिए दूध ले आती है और उसे गोद में लेकर उसका मुख दूध के निकट ले जाती है। नाटक के अंतिम दृश्य में भी उसका स्वपुत्री के प्रति वात्सल्य भाव उसकी प्रेम-भावना पर विजयी दृष्टिगत होता है। वह कालिदास-कालिदास पुकारती हुई ड्योढ़ी तक आ पहुँचती है, किन्तु अपनी गोद में पुत्री को देखकर ठिठक जाती है और उसे आवेशपूर्वक चूम-चूम कर यह भाव व्यक्त कर देती है कि प्रेमी के लिए मैं संतति की उपेक्षा नहीं कर सकती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मल्लिका का चरित्रांकन कृतिकार ने बड़ी सहृदयतापूर्वक किया है। उसमें उसके चरित्रौदात्य को इतना महिमान्वित कर दिया है कि कृति के नायक कवि-कुल-गुरु कालिदास का चरित्र मलिन प्रतीत होने लगता है। मोहन राकेश ने 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में मल्लिका के विषय में जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं वे पूर्णतया सार्थक हैं—"मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का नहीं, भूमि में रोपित उस आस्था का भी है जो ऊपर से झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।" नाटक में मातुल द्वारा उसके विषय में प्रयुक्त किए गए ये विशेषण भी पूर्णतया उचित हैं कि "वह सारे प्रदेश में सबसे सुशील, सबसे विनीत और सबसे भोली लड़की है।" उसके प्रेमी द्वारा यद्यपि उसकी प्रेम-भावना के साथ खिलवाड़ ही किया जाता है, किन्तु अंततः वह भी यह स्वीकार करते मिलता है कि मेरे समस्त कृतित्व की मूल प्रेरणा तुम्हीं रही हो—कुमार-संभव की तपस्विनी उमा, मेघदूत की विरह-विमर्दिता यक्षिणी तथा अभिज्ञान शाकुन्तल की शकुन्तला तुम्हीं हो। मल्लिका की अनूठी समर्पण-भावना, निश्छल प्रेम, अनुपम त्याग, धैर्य, विनम्रता, दयार्द्रता और स्वाभिमान की जितनी भी प्रशंसा की जाए वही कम है। अपने इस चारित्रिक औदात्य के कारण ही वह तब भी हमारी घृणा नहीं अपितु करुणा की ही पात्र बनती है, जब परिस्थितियों की मार के समक्ष घुटने टेककर वह विलोम की अवैध संतति की जननी बन जाती है। उसका चरित्र पुकार-पुकार कर इस तथ्य की उद्‌घोषणा कर रहा है कि नारी का जीवन कितना दयनीय होते हुए भी किस प्रकार अमित प्रेरणा का स्रोत होता है—त्यागमयी

नारियाँ अपने प्रियजनों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देती हैं, फिर भी उन्हें उनका प्राप्य गौरव नहीं मिल पाता।

कालिदास

कालिदास के चरित्रांकन के विषय में मोहन राकेश पर यह दोषारोपण किया गया है कि उन्होंने कालिदास के चरित्र को गिरा दिया है और हम भी ऐसा ही अभिमत रखते हैं। नाटक के प्रथम अंक के उस प्रसंग के अतिरिक्त जिसमें वे एक आहत हरिणशावक की रक्षा करते हुए दन्तुल से शत्रुता तक मोल ले लेते हैं और उसकी धमकियों की चिन्ता न करते हुए हरिणशावक को लेकर चल देते हैं, तथा राज्याश्रय स्वीकार करना नहीं चाहते, अन्यथा नाटक के अन्य प्रसंगों में उनका चरित्र एक साधारण मानव से भी दुर्बल है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि कालिदास का अपना व्यक्तिगत जीवन कैसा रहा होगा—संभव है वे इससे भी अधिक दुर्बल-पतित रहे हों—किन्तु अपने प्रसिद्ध पूर्वजों का चरित्रांकन यदि हम ऐसे रूप में न करें जिससे उनके प्रति हमारी घृणा ही उद्बुद्ध हो तो अच्छा है। कालिदास की अम्बिका और विलोम द्वारा जो निन्दा की जाती है और वह निन्दा भी ऐसी कि जो सारहीन नहीं प्रतीत होती। मल्लिका के पावन-प्रेम को सर्वथा भुलाकर जिस रूप में वे नरेश-दुहिता से विवाह करके वहीं के हो रहते हैं, मल्लिका की सुधि तक नहीं लेते, उनका समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होने का अपवाद फैलता है, ग्राम-प्रान्तर में आकर भी वे मल्लिका से नहीं मिलते, तथा नाटक के अन्त में अपनी इस स्वार्थान्ध मनोवृत्ति को प्रकट करने के पश्चात् कि मैं तो समझ रहा था कि तुम अर्थात् मल्लिका और ग्राम की सभी वस्तुएँ यथावत होंगी,—वे निरीह-दयनीय मल्लिका को जिस तरह क्षण भर में ही त्याग कर भाग खड़े होते हैं—उनका यह आचरण किसी भावुक कवि के लिए तो शोभन है ही नहीं, किसी साधारण मनुष्य को भी शोभा नहीं देता। हाँ, कालिदास इस नाटक के नायक हैं और मल्लिका के अतिरिक्त अन्य पात्रों में सर्वप्रमुख स्थान रखते हैं। मल्लिका के समान वे नाटक के सभी पात्रों के संसर्ग में तो नहीं आते, हाँ, अधिकांश पात्रों के संसर्ग में आते हैं। दन्तुल से उनका हरिणशावक के विषय में विवाद होता है, विलोम उनका प्रतिद्वन्द्वी है, मातुल उनका मामा है। इसी प्रकार प्रियंगुमंजरी उनकी पत्नी है, तो नाटक की नायिका मल्लिका उनकी

प्रेयसी है। अम्बिका उनकी इस हेतु आलोचना करती रहती है कि उन्होंने उसकी पुत्री को गुमराह कर रखा है, तो रंगिणी और संगिनी उनकी जन्मभूमि का विशेष अध्ययन करने आती हैं। हाँ, प्रस्तुत नाटक की घटनाओं की योजना में वे द्वितीय स्थान के ही अधिकारी हैं, प्रथम स्थान मल्लिका का ही है। कालिदास के चरित्र के विविध पक्षों को निम्नांकित शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) पशुओं के प्रति दयालु—प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक की आरम्भिक घटना से ही कालिदास के चरित्र के इस पक्ष पर प्रकाश पड़ जाता है। दन्तुल द्वारा आहत हरिणशावक दौड़कर उसकी गोद में आ जाता है जिसे देख कर वे ऐसा दुखानुभव करते हैं मानो उन्हीं के शरीर में बाण लगा हो। वे उसे गोद में उठा कर मल्लिका के घर की ओर चल देते हैं, और अपनी सहृदयता का परिचय देते हुए कहते हैं—"हम जिएँगे हरिणशावक ! जिएँगे न ! एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है तो उँग-लियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएँगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल फिर हम वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खायेंगे। खायेंगे न ?"

मल्लिका के घर पहुँचकर वे ऐसी बातें करते हैं मानो उस आहत हरिणशावक और स्वयं में कुछ अन्तर ही नहीं समझते हों—"हम सोयेंगे ? हाँ, हम थोड़ी देर सो लेंगे तो हमारी पीड़ा दूर हो जाएगी। परन्तु उससे पहले हमें थोड़ा दूध पी लेना है। ···मल्लिका, थोड़ा दूध हो तो किसी भाजन में ले आओ।" वे मल्लिका से यह कामना भी व्यक्त करते हैं कि वह उसको आस्तरण पर सुला दे। जब दन्तुल वहाँ आकर उस आहत हरिणशावक को माँगता है और कहता है कि यह मेरी सम्पत्ति है तब कालिदास उत्तर देते हैं—"यह हरिणशावक इस पार्वत्य भूमि की सम्पत्ति है राज-पुरुष ! और इसी पार्वत्य भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं। तुम यह सोचकर भूल कर रहे हो कि हम इसे तुम्हारे हाथ में सौंप देंगे। ···मल्लिका, इसे अन्दर ले जाकर तल्प पर या किसी आस्तरण पर···" यह जानते हुए भी कि किसी राज-पुरुष से झगड़ा मोल लेना अच्छा नहीं है वे हरिणशावक को लेकर चल देते हैं और दन्तुल देखता ही रह जाता है। कालिदास के स्वभाव से परिचित

मल्लिका उनके विषय में ठीक ही कहती है "ठहरो राजपुरुष ! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनके लिए संवेदना का। कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।"

(ख) स्वाभिमानी—कालिदास के चरित्र में स्वाभिमान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। वे समझते हैं कि राज्याश्रय में रहने वाले कवियों को नरेशगण थोड़ी-सी मुद्राएँ देकर अपना क्रीत-दास बना लेते हैं जिससे उनकी काव्य-प्रतिभा का उचित विकास नहीं हो पाता। और वे उन नरेशों की प्रशस्ति में रचनाएँ लिखने लगते हैं। यही कारण है कि कालिदास के मामा मातुल राजकीय सम्मान मिलने की बात सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं किन्तु कालिदास उसे ठुकराते हुए जगदम्बा के मन्दिर में जा छुपते हैं। मातुल के शब्दों में "मैंने कहा कविवर्य, आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने के लिए आए हैं। राज्य की ओर से आपका सम्मान होगा। (रुक जाता है) सुन कर रुके। रुक कर जलते अंगारे की दृष्टि से मुझे देखा।—'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।' ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके लिए विरह में घुली जाती हों और चल दिये। ···मेरे लिए धर्म-संकट खड़ा हो गया कि अनुनय करता हुआ आपके पीछे-पीछे जाऊँ या अभ्यागतों को देखूं।" अम्बिका उनके इस आचरण को ढोंग बताती है किन्तु निक्षेप स्पष्ट कर देता है कि वे ढोंग नहीं कर रहे अपितु उन्हें राजकीय सम्मान का वास्तव में ही मोह नही है।

(ग) दुर्बल हृदय प्रेमी—मल्लिका की तुलना में कालिदास एक दुर्बल हृदय प्रेमी सिद्ध होते हैं। मल्लिका अपना तन-मन उन पर न्यौछावर कर देती है और उनसे ही विवाह करने की आशा में किसी अन्य पुरुष से विवाह करने से इनकार कर देती है। जैसा कि निक्षेप के कथन से ज्ञात होता है, कालिदास ने भी ग्राम-प्रान्तर में रहते हुए यह इच्छा व्यक्त की थी कि मैं भी आजीवन विवाह (मल्लिका के अतिरिक्त किसी अन्य युवती से) नहीं करूँगा, किन्तु वे उज्जयिनी जाकर नरेशपुत्री प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लेते हैं। जब उनके उज्जयिनी जाने के समय अम्बिका और विलोम मल्लिका को इस बात के लिए भड़काते हैं कि उसका और कालिदास का विवाह हो जाना चाहिए, तो वह अपनी उदात्त भावना का परिचय देती हुई कह देती है कि इस

अवसर पर जबकि उनके जीवन में महान परिवर्तन आने वाला है मैं अपने स्वार्थ का परिचय नहीं देना चाहती। इसके विपरीत जब विलोम कालिदास से मल्लिका के साथ विवाह करने के विषय में प्रश्न करता है तो कालिदास यह कह कर टाल जाते हैं कि तुम दूसरों के घर में अनधिकार आने के समान उनके जीवन में भी अनधिकार प्रवेश कर जाते हो। इसके साथ ही कालिदास ग्राम-प्रान्तर को त्यागने से पूर्व मल्लिका के विषय में विशेष लगाव नहीं दिखाते। अपितु वे वहाँ न जाने का जो कारण बताते हैं उससे यह ध्वनि निकलती है कि उनकी दृष्टि में मल्लिका का मूल्य वहाँ के पशुपालों और हरिणशावकों से अधिक नहीं हैं—"मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।"

कालिदास को यह तथ्य भली प्रकार विदित है कि उन्हें उज्जयिनी जाने के लिए विवश करती हुई मल्लिका की मनोदशा कैसी हो उठी है और वे उससे कहते भी हैं—'मैं चाहता हूँ कि इस समय तुम अपनी आँखें देख सकतीं—" किन्तु वे राजधानी में पहुँच कर मल्लिका को सर्वथा भुला देते हैं।

वे नरेश-पुत्री से विवाह कर लेते हैं और जैसा कि लोकापवाद था वे वारांगनाओं के साहचर्य में जीवन व्यतीत करने लगते' हैं। मल्लिका के समान हमारे हृदय को भी तब बड़ा आघात पहुँचता है जब वे ग्राम-प्रान्तर में आकर भी मल्लिका से नहीं मिलते। इस विषय में नाटक के तीसरे अंक में वे जो तर्क प्रस्तुत करते हैं वे बड़े लचर हैं। समझ में नहीं आता कि ऐसी वह कौन-सी विश्वविजय की यात्रा पर निकल रहे थे जिसमें व्याघात पड़ जाता, यदि वे मल्लिका से मिलकर जाते? उनका यह कथन कितना खोखला है—'मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं उनसे बचना चाहता था। उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था। मैं जानता था तुम पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, दूसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे मन में विपरीत भाव नहीं आएगा। और मैं यह आशा लिए हुए चला गया कि एक कल ऐसा आएगा तब मैं तुमसे यह सब कह सकूंगा।"

कालिदास के चरित्र में यह विचित्र असंगति परिलक्षित होती है कि वे अपनी प्रेमिका मल्लिका के जीवन को पुष्प की पंखुड़ियों की भाँति मसल कर

नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं—उस पितृ एवम् मातृहीना, दीन-हीना नवयौवना की ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं देते, जबकि दावा यह करते हैं कि वह उनके जीवन का मूल प्रेरणास्रोत रही है। हमें अम्बिका द्वारा उनके विषय में कहे गये यह शब्द उचित ही प्रतीत होते हैं—"मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह से समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो?" प्रस्तुत नाटक में हम वास्तव में ही कालिदास को मल्लिका के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते नहीं पाते, हाँ, मल्लिका के समान कुछ क्षण तक पाठक-प्रेक्षक भी कालिदास के इस कथन से प्रभावित होते हैं—"लोग सोचते हैं, मैंने उस जीवन और वातावरण में रह कर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ मैंने वहाँ रह कर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था। कुमारसम्भव की भूमिका यह हिमालय और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत में यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला में रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हट कर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई। रघुवंश में आज का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी और···।" तदनन्तर जब हम उन्हें यह इच्छा व्यक्त करते देखते हैं कि वे मल्लिका के साथ रहते हुए जीवन को पुनः अथ से आरंभ करना चाहते हैं तो हम यह सोचकर प्रमुदित हो उठते हैं कि चलो सुबह का भूला शाम को घर आ पहुंचा है। किन्तु हमारी इस प्रसन्नता और मल्लिका की आशा-आकांक्षाओं पर शीघ्र ही तुषारापात हो जाता है जब कालिदास यह ज्ञात होने पर कि मल्लिका विलोम की अवैध पुत्री की माँ बन चुकी है, मल्लिका को बिलखती छोड़ जाते हैं। कालिदास के इस आचरण का इससे भिन्न और क्या अभिप्राय निकलता है कि वे चाहे जितने दिनों तक रंगरेलियाँ मनाते रहते और निराश्रिता मल्लिका भूखी-नंगी रहती हुई उनके नाम की माला जपती रहती! माला तो वह उनके नाम की जपती मिलती ही है, हाँ, परिस्थितियों की मार को सहन नहीं कर पाती, और उसे विवशतापूर्वक

विलोम के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ता है। कालिदास के प्रेम में त्याग और क्षमा का कोई स्थान ही नहीं है, वे तो मात्र ग्रहण करना ही सीखे हैं, इसलिए वे मल्लिका के इस परिस्थितिजन्य चारित्रिक-स्खलन को क्षमा नहीं कर पाते। कालिदास का यह आचरण न तो एक सच्चे प्रेमी के अनुकूल है और न एक महान कवि के ही, बेचारी मल्लिका उनकी अहं तुष्टि का क्षुद्र माध्यम मात्र बनकर ही रह जाती है।

(घ) **वाक्पटुता**—कालिदास कवि-कलाकार हैं और कवि भी उत्तम कोटि के, अतः उनका वाक्पटु होना स्वाभाविक ही है। वे अपने आचरण से तो नही, हाँ अपनी बातों से अपने विपक्षियों और मित्रों को प्रभावित करने में पटु हैं। वे मल्लिका के घर में घुस आने वाले दन्तुल को डपटते हुए पूछते हैं—"जहाँ तक मैं जानता हूँ हम लोग परिचित नहीं हैं। तुम्हारा एक दूसरे के अपरिचित घर में आने का साहस कैसे हुआ ?" इसी प्रकार वे विलोम द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तुम राजधानी अकेले ही जाओगे अथवा मल्लिका के साथ विवाह करके इसे भी अपने साथ ले जाओगे ? ऐसा उत्तर देते हैं जिससे विलोम को बगलें झाँकनी पड़ती हैं—"मैं तुम्हारी प्रशंसा करने के लिए अवश्य बाध्य हूँ। तुम दूसरों के घर में ही नहीं, उनके जीवन में भी अनधिकार प्रवेश कर जाते हो।" इसी प्रकार वे मल्लिका से भी चिकनी-चुपड़ी बातें ही करते रहते हैं। अपने आचरण द्वारा ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उन्हें उससे वास्तव में कितना प्रेम है।

(ङ) **स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित**—प्रस्तुत नाटक में कालिदास का जैसा चरित्रांकन किया गया है उससे वे एक आत्म-केन्द्रित एवं स्वार्थी व्यक्ति सिद्ध होते हैं। उनके विषय में अम्बिका द्वारा कहे गये ये शब्द उचित ही हैं—"मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है; अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो ? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी न होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी ? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देंगी।" क्योंकि जब अम्बिका की वास्तव में ही मृत्यु हो जाती है तब भी कालिदास हमें मल्लिका के भरण-पोषण की चिन्ता या उसको पत्नी के रूप में अपना

लेने की चेष्टा करते नहीं मिलते। वे काश्मीर के शासक होने का जो भार स्वीकार करते हैं उसके मूल में भी उनकी यह स्वार्थ-भावना है कि वे अपने विरोधियों से बदला लेना चाहते हैं। उन्हीं के शब्दों में—"तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन सँभालने जा रहा हूँ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परन्तु मुझे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। सम्भवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा परिहास उड़ाया था।"

विलोम से जब कालिदास मल्लिका के घर से चले जाने के लिए कहते हैं तो उसके द्वारा उनकी यह कहकर आलोचना करना पूर्णतया सार्थक होने के साथ-साथ उनके स्वार्थी एवं आत्म-केन्द्रित स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है—"क्योंकि तुम यहाँ लौट आए हो?···क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है?··· क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं? (हँसता है) जैसे तुम से बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। समय निर्दय नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है। निर्माण किया है।···तुम्हें उसके निर्माण से वितृष्णा होती है, क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो नहीं देख पाते।"

(च) असफल राजनेता—भावुक कवि और साहित्यकार राजनीति में सफल नहीं हो पाते क्योंकि उसमें छल-छद्म और राजनैतिक हथकण्डों को जानने वाली विवेक-बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से यह तथ्य कालिदास के जीवन की भूल ही थी कि वे अपने विपक्षियों को नीचा दिखाने की कामना से काश्मीर का शासन भार सँभाल लेते हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि उन्हें प्रियंगुमंजरी जैसी राजनीति कुशल पत्नी न मिली होती तो वे काश्मीर का शासन उतने दिनों तक भी न संभाल पाते जितने दिनों के पश्चात् उन्हें काश्मीर का शासन छोड़ कर भागना पड़ता है। उनके अपने राजनैतिक जीवन के विषय में व्यक्त किये गये ये उद्‌गार उचित ही हैं—"किसी और के लिए वही वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था। मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह से उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है और जिस विशाल क्षेत्र में मुझे रहना चाहिए

था उससे हट आया हूँ ।" प्रियंगुमंजरी के अग्रलिखित कथन से इसी तथ्य का प्रकाशन होता है कि कालिदास स्वयं को राजनैतिक जीवन के अनुरूप ढाल नहीं पाते—"वे भी जब-तक यहां के जीवन की चर्चा करते हुए आत्मादी-मृत हो जाते हैं। इसलिए राजनीतिक कार्यों से कई बार उनका मन उचटने लगता है।...ऐसे अवसरों पर उनके मन को सन्तुलित रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।"

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक में कालिदास का जिस रूप में चरित्रांकन किया गया है, उसमें से हमें उनके चरित्र के मात्र दो गुण ही प्रभावित कर पाते हैं। उनमें से प्रथम है उनका पशु-पक्षियों के प्रति करुणा-प्लावित हृदय रखना और द्वितीय है उनका अपने कवि-व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए राजकीय सम्मान को ठुकराने को प्रस्तुत हो जाना। इसके विपरीत हमें उनके दोष अधिक अखरते हैं—वे स्वार्थी हैं, आत्म-केन्द्रित हैं—अपनी प्रेयसी के साथ विश्वासघात करते हैं, वे वारांगनाओं के साहचर्य में मग्न रहने वाले भी बताए जाते हैं, तथा राजकीय सम्मान प्राप्त करके अपना चोला गिरगिट की तरह बदल लेते हैं। ऐश्वर्य-मद में वे अपनी प्रेयसी मल्लिका को तो भूल ही जाते हैं, उन्हें अपने मामा मातुल की भी कोई चिन्ता नहीं है। मातुल के भवन के पुनर्निर्माण और उसको काश्मीर लिवा ले जाने में उनका नहीं अपितु प्रियंगुमंजरी का हाथ है। विदुषी प्रियंगुमंजरी ही मल्लिका के ग्राम-प्रान्तर के वातावरण को काश्मीर ले जाने की इच्छा से जहाँ वहाँ के हरिणशावक आदि उपादान साथ ले जाती है, वहाँ मातुल को भी साथ ले जाती हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कविकुल-गुरु की उपाधि से समाहृत होने वाले तथा विश्व-साहित्य में भारतीय साहित्य को सम्मान्य स्थान दिलाने वाले कालिदास का चरित्रांकन अपेक्षित रूप में नहीं हुआ है। इस संदर्भ में मोहन राकेश द्वारा 'लहरों के राजहँस' में व्यक्त किया यह अभिमत भी संदर्भगत त्रुटि का मार्जन नहीं कर पाता—"मुझे आश्चर्य हुआ कि आलोचक संस्कृत के पंडित होकर भी कालिदास को व्रती, तपस्वी, महात्मा मानते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल, कुमार-संभव, तथा मेघदूत पढ़कर यदि कालिदास का ऐसा ही चित्र उनके मन में बनता है, तो क्या कहा जा सकता है ? रूढ़ि-ग्रस्त संस्कार ही जहां व्यक्ति का विवेक बन जायें, वहां और आशा करना भी व्यर्थ है।" तथा "कालिदास के जीवन के

विषय में कितने प्रामाणिक तथ्य हमें आज उपलब्ध हैं ? जितनी सामग्री है, वह एक न एक अनुमान पर ही आधारित है। कुछ लोगों को अपने अनुमान अधिक प्रामाणिक लगें यह दूसरी बात है।" इनमें से प्रथम उद्धरण के विषय में हम मोहन राकेश से यह प्रश्न करना चाहेंगे कि क्या अभिज्ञान शाकुन्तल, कुमारसंभव और मेघदूत में कहीं ऐसे निर्देश मिलते हैं कि कालिदास ने मल्लिका के साथ वैसा ही विश्वासघात किया था, जैसा इस नाटक में चित्रित किया गया है ? रही अनुमानों की बात—यह तो हम भी नहीं मानते कि कालिदास दूध-धुले महात्मा रहे होंगे, किन्तु यह भी आवश्यक नहीं है कि वे आधुनिककालीन धोखेबाज प्रेमियों के समान विश्वासघाती रहे हों ! हमें मुख्य आपत्ति तो यह है कि मोहन राकेश ने अधमता की ओर झुके अनुमानों का ही आश्रय क्यों लिया है, कालिदास के चरित्र को उदात्त और भव्य चित्रित करने में उनके सामने क्या व्यवधान रहा है ?

(ग) विलोम—विलोम को कुछ आलोचकों ने इस नाटक का खलनायक बताया है जो उचित नहीं है। वह अधम पात्र तो अवश्य है क्योंकि कृति की नायिका की विवशता का लाभ उठाकर उसे अपनी अंकशायिनी बनने को विवश कर देता है। किन्तु खलनायक का मुख्य लक्षण यह है कि वह नायक और नायिका के मिलन में पग-पग पर बाधा पहुँचाया करता है, जबकि नाटक के आरंभिक भाग में विलोम उनके मिलन में बाधक बनने के स्थान पर उनका विवाह कराने को समुत्सुक मिलता है। इसलिए विलोम को इस नाटक का खलनायक न मान कर अधम पात्र ही मानना चाहिए। विलोम के चरित्र में अवगुणों की प्रधानता है, जिनमें से प्रथम यह है कि वह उस मल्लिका से प्रेम करता है, जो उसे घृणा करती है और इसके कारण ही उसके चरित्र में अन्य अवगुणों का समावेश हो जाता है। मल्लिका के प्रेम को जीतने के लिए वह उसकी माँ की चापलूसी करता रहता है, तथा कालिदास की प्रच्छन्न निन्दा। बेचारी अम्बिका भी वही करना चाहती है जो उसकी पुत्री की इच्छा है, और मल्लिका की इच्छाएँ कालिदास की इच्छाओं से प्रभावित हैं, और चूंकि कालिदास को स्पष्टवक्ता विलोम का मल्लिका के यहाँ आना नहीं सुहाता, अतः अम्बिका भी विलोम के आने पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं करती। विलोम के नाटक में प्रथम बार पदार्पण के समय ही उसके और अम्बिका

के मध्य जो वार्तालाप होता है, उससे यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है—

"अम्बिका : विलोम !...तुम यहाँ क्यों आये हो ?

(विलोम बाईं ओर दीपक की ओर चला जाता है)

विलोम : दीपक जला दूं !

(उल्मुक से छूकर दोनों दीपक जला देता है और कहता है)

विलोम का आना ऐसे आश्चर्य का विषय है।......

अम्बिका—तुम चले जाओ विलोम ! तुम जानते हो कि तुम्हारा यहाँ आना......

विलोम—मल्लिका को पसन्द नहीं है।

(दीपक जलाकर अम्बिका की ओर घूमता है)

मैं जानता हूँ अम्बिका ! मल्लिका बहुत भोली है। वह लोक और जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती।...वह नहीं चाहती कि मैं इस घर में आऊं क्योंकि कालिदास नहीं चाहता।...और कालिदास क्यों नहीं चाहता ? क्योंकि मेरी आँखों में उसे अपने हृदय का सत्य झाँकता दिखाई देता है। उसे उलझन होती है।... किन्तु तुम तो जानती हो अम्बिका ! मेरा एकमात्र दोष यह है कि मैं जो अनुभव करता हूँ, स्पष्ट कह देता हूँ।"

जैसाकि कहा जा चुका है वह अम्बिका का कृपाभाजन बनने की चेष्टा करता रहता है। इस उद्देश्य से वह अम्बिका की दयनीय दशा के प्रति संवेदना व्यक्त करता रहता है—"देख रहा हूँ इस समय तुम बहुत आर्त नहीं रही अम्बिका ? तुम्हारा तो जीवन ही पीड़ा का इतिहास है ? पहले से कहीं दुबली हो गई हो !...सुना है कालिदास उज्जयिनी जा रहा है।" अम्बिका उसके कथन की किंचित उपेक्षा करती है तो वह मल्लिका और कालिदास का विवाह हो ही जाना चाहिए, इस तथ्य पर बल देता हुआ तथा अम्बिका की दयनीय दशा के प्रति संवेदना व्यक्त करता हुआ कहता है—"कालिदास उज्जयिनी चला जायगा और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे प्रान्त में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहीं पड़ी रहेगी ? क्यों अम्बिका ? × × × क्यों तुमने इतने वर्ष यह सब पीड़ा क्या इसी दिन के लिए सही है ? दूर से देखने वाला ही अनुभव कर सकता है कि इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या बीता है ! समय ने तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा की इकाई को तोड़कर रख दिया है। तुमने

तिल-तिल कर अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो और आज जबकि उसके जीवन-भर के अभाव का प्रश्न उसके सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहतीं ?

विलोम ढीठ है। अम्बिका उससे वहाँ से चले जाने का अनुरोध करती है किन्तु वह धृष्टतापूर्वक कह देता है कि इस समय मैं अपना तुम्हारे पास होना बहुत आवश्यक समझता हूँ। कालिदास और मल्लिका के आने पर कालिदास से प्रश्न करता है कि क्या कल प्रातःकाल यहाँ से जा रहे हो ? और इस ग्राम-प्रान्तर को तो नहीं भूल जाओगे ? वह उन बातों का भी वर्णन करने लगता है जिसके कारण यह सम्भावना है कि वह ग्राम-प्रान्तर को भूल जायेगा। "सुना है, वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं...रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य विलास-भूमियाँ।"

कालिदास के प्रति विश्वासमयी मल्लिका विलोम के इन कथनों को सुन-रुष्ट हो उठती है और विनम्र स्वर में उससे वहाँ से चले जाने का आग्रह करती है, किन्तु वह टस-से-मस तक नहीं होता। इस संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यद्यपि विलोम अपनी ढीठता के लिए निन्दा का पात्र है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसे मानव-मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी है। कुछ ही समय पश्चात् हमें उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होते मिलता है—कालिदास वास्तव में ही राजधानी पहुँचकर वहाँ की रंगीनियों में डूब जाते हैं और मल्लिका तथा ग्राम-प्रान्तर को भूल जाते हैं। विलोम ने इस तथ्य पर बल दिया था कि कालिदास के उज्जयिनी जाने से पूर्व उनसे मल्लिका का विवाह हो जाना चाहिए। यदि ऐसा हो जाता तो सम्भव है उनका नरेश-पुत्री के साथ विवाह नहीं होता-और वे काश्मीर के शासक बनने का सौभाग्य भी प्राप्त न कर पाते, किन्तु वैसा होने की दशा में अम्बिका और मल्लिका के जीवन नष्ट नहीं होते।

विलोम कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी है। उसके हृदय में यह ईर्ष्या तो है ही कि वह मल्लिका जिसको वह प्रेम करता है, कालिदास के कारण उसकी उपेक्षा करती है, उसे कालिदास की कवि के रूप में सफलता के विषय में भी ईर्ष्या है। हाँ, वह अपने ईर्ष्या-भाव को व्यक्त नहीं होने देता—उसे अपने परिहास में छिपा लेने की कला में कुशल है। वह कालिदास से कह उठता

है—"विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास।··· और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।" इसी प्रकार वह यह नहीं कहता कि उसे कालिदास के राजकवि हो जाने का दुःख है, अपितु इस तथ्य को इस रूप में बदल देता है कि एक मित्र से बिछुड़ने का किसे दुःख नहीं होता। कालिदास उसको फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। द्वितीय अंक में वह अम्बिका और मल्लिका के समीप आकर कालिदास का इस हेतु उपहास करता है कि वह ग्राम-प्रान्तर में आकर भी उनके घर नहीं आया, तथा उसकी आज्ञा से वहाँ के कंकड़-पत्थर और हरिणशावक आदि उपादान काश्मीर ले जाए जा रहे हैं। तृतीय अंक में जब वह कीचड़ में लथपथ और सुरापान के कारण झूमता हुआ मल्लिका के यहाँ आता है और कालिदास को मल्लिका से बातें करते देखता है तो उसके शब्द उस पर विष में बुझे बाणों जैसा प्रहार करते हैं। वह मल्लिका से कहता है—"तुमने अभी तक कालिदास के आतिथ्य का आयोजन नहीं किया ? वर्षों के अनन्तर एक अतिथि घर में आए और उसका आतिथ्य न हो ? तुम जानती हो कालिदास को इस प्रदेश के हरिणशावकों से कितना मोह है ? (फिर वह कालिदास की ओर मुड़ता है) एक हरिणशावक इसमें भी है।···तुमने मल्लिका की बच्ची को अभी नहीं देखा ? उसकी आँखें किसी हरिणशावक से कम सुन्दर नहीं है × × × मैं इसलिए कह रहा था कि कालिदास ही देखकर बता सकें कि उसकी बात कहाँ तक सच है, कि क्या सचमुच बच्ची की आकृति विलोम से मिलती है या...।" जब कालिदास उससे वहाँ से चले जाने को कहता है, तो विलोम उसकी भर्त्सना और उपहास करता हुआ कह उठता है—"इस घर से या ग्राम-प्रान्तर से ही ? सुना था शासन बहुत बली होता है ? प्रभुता में बहुत सामर्थ्य होती है।" कालिदास के यह कहने पर कि मैं कह रहा हूँ, इस समय यहाँ से चले जाओ, वह कह उठता है—"क्योंकि तुम यहाँ लौट आए हो ? क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है ? क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं ? (हँसता है) जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है, अधिकार दिए हैं। वह धूप और नैवेद्य लिए घर की दहेली पर रुका नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है। निर्माण किया है। अंततः वह कालिदास और मल्लिका दोनों पर ही यह व्यंग्य-अरण

छोड़ता हुआ चला जाता है—"तुम चाहते हो इस समय मैं यहाँ से चला जाऊँ, मैं चला जाता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम आदेश देते हो परन्तु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो, और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।" वह मल्लिका से कहता है—"देखना, मल्लिका, आतिथ्य में कोई न्यूनता न हो। जो अतिथि वर्षों में एक बार आया है वह आगे जाने कभी आएगा या नहीं।" और उसकी पहली भविष्यवाणियों के समान उसका इस बार का कथन भी सत्य सिद्ध होता है—कालिदास इस बार वास्तव में मल्लिका को ऐसा त्याग कर जाता है कि उसके पुनः लौटने की सम्भावना नहीं रहती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विलोम में मानवोचित दुर्बलताएँ तो अवश्य है—वह कालिदास से ईर्ष्या करता है, मल्लिका से उसकी इच्छा के विपरीत प्रेम करना चाहता है। असहाय और निराश्रित मल्लिका को वह संरक्षण तो देता है किन्तु उसके सतीत्व के मूल्य पर, किन्तु इस तथ्य में सन्देह नहीं है कि वह कल्पनाजीवी न होकर पदार्थ के ठोस धरातल पर जीने वाला पात्र है। मल्लिका का भी वह हितचिन्तक ही अधिक है और इस तथ्य पर बल देता है कि उस सरल भावुकतामयी नवयौवना का विवाह कालिदास के साथ हो जाए। वह दूरद्रष्टा है और इस तथ्य में आशा रखता है कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता रहता। विलोम का चरित्रांकन कालिदास की अपेक्षा अधिक प्राणवान और सशक्त रूप में किया गया है।

(घ) मातुल—मातुल का प्रस्तुत नाटक की घटनाओं में तो विशेष योगदान नहीं है, हाँ वह कालिदास का मामा है, तथा कालिदास को उज्जयिनी भिजवाने में उसका भी हाथ है। प्रस्तुत नाटक में उसका जिस रूप में चित्रांकन हुआ है, उससे इन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है कि वह एक स्वार्थलिप्सु और खुशामदी प्राणी है। किन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर वह अपने भानजे कालिदास को अपने यहाँ आश्रय तो देता है किन्तु उससे अपने पशु चरवाते हुए बड़ी खस्ता हालत में रखता है। मल्लिका के इस कथन से मातुल के अपने भागिनेय के प्रति इसी प्रकार के व्यवहार का परिचय मिलता है—"तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना मे बीता है। मातुल के घर मे उनकी क्या दशा रही है ? उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्योंकर की जा सकती थी ?"

जैसा कि कहा जा चुका है मातुल की दृष्टि में इस तथ्य का बड़ा मान है कि उसके वंश का किसी-न-किसी प्रकार राजवंश के साथ नाम जुड़ सके। वह इस तथ्य को बड़े गौरवपूर्वक सुनाता है कि उसके प्रपितामह (परबाबा) के एक दौहित्र के पुत्र ने गुप्त राजा की ओर से शकों के विरुद्ध युद्ध किया था। इसलिए जब कालिदास को राजकीय सम्मान प्रदान करने हेतु उज्जयिनी ले आने के लिए आचार्य वररुचि प्रेषित किए जाते हैं और कालिदास राजधानी जाने से यह कहकर इनकार कर देता है कि मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ तो मातुल के क्रोध का पारावार नहीं रहता। वह रुष्ट होकर कह उठता है—"मैं आज सारे ग्राम प्रदेश में यह घोषणा करने जा रहा हूँ कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है।" वह कालिदास द्वारा इस राजकीय सम्मान को कुलद्रोह बताते हुए कहता है—"मैंने इसे पाला-पोसा, बड़ा किया। क्या इस दिन के लिए? कि यह कुलद्रोही बने?"

मातुल लौकिक जीवन में मिलने वाले मान-सम्मान को महत्त्व देने वाला भौतिकता प्रिय जीव है। उसे इस तथ्य में कोई असंगति नहीं प्रतीत होती कि यदि राजकीय सम्मान प्राप्त करने के लिए कवि को अपनी आत्मा बेचनी पड़ती है। उसके शब्दों में—"मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है? सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं तो कविता का मूल्य ही क्या है?" जब अम्बिका उसे यह समझाती है कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में निष्णात होने के कारण ही दिखावटी तौर पर जाने से इन्कार कर रहा है तो मातुल कह उठता है—"यह लोकनीति है तो मैं कहूँगा कि लोकनीति और मूर्खनीति दोनों का एक ही अर्थ है। जो व्यक्ति कुछ देता है, धन हो या सम्मान हो, वह अपना मन बदल भी सकता है। और मन बदल गया तो बदल गया। तुम सोचो कि सम्राट् रुष्ट भी तो हो सकते हैं कि एक साधारण कवि ने उसका सम्मान स्वीकार नहीं किया।"

मातुल को राजपुरुषों के संसर्ग में रहने पर उनके साथ घूमने का बड़ा मोह है। वह यह समाचार पाकर प्रसन्न हो उठता है कि मैं आचार्य वररुचि के साथ घूमता हुआ उन्हें उस ग्राम-प्रान्तर को दिखाऊँगा जिसने कालिदास की कविता को जन्म दिया है। वह नरेश-दुहिता प्रियंगुमंजरी की तब चापलूसी करते नहीं थकता, जब वह उसे मल्लिका के घर पहुँचाने आता है। प्रियंगुमंजरी उससे कहती है—"आर्य मातुल, आप जाकर विश्राम कीजिए। मेरे अनुचर

मेरे लौटने तक बाहर प्रतीक्षा करेंगे × × × चिन्ता मत कीजिए, मुझे कोई असुविधा नहीं होगी।" मातुल कह उठता है—"असुविधा तो अवश्य होगी, आप असुविधा को असुविधा न समझें यह और बात है। और वास्तव में कुलीनता इसी को कहते हैं। बड़े कुल की यही विशेषता होती है कि···।" उसकी बात को काटती हुई जब वह यह कहती है कि आप अब विश्राम कीजिए, क्योंकि आपको मैं पहले ही बहुत थका चुकी हूँ, तो वह कह उठता है—"आपके कारण मैं थकूँगा? मुझे आप दिन-भर पर्वत शिखर से खाई में और खाई से पर्वत-शिखर पर जाने को कहती रहें, मैं तब भी नहीं थकूँगा।" अपनी इस मनोवृत्ति के कारण ही वह तथ्य में कोई बुराई नहीं देखता कि उसका घर राज्य की ओर से पक्का बनवा दिया जाए, और वह कालिदास के साथ काश्मीर में रहने चला जाए। उसकी इस राजभोगों की ही लालसा का यह परिणाम निकलता है कि वह काश्मीर के राजप्रासाद के चिकने फर्श पर फिसल कर अपना एक पैर तोड़ बैठता है और लँगड़ा हो जाने के कारण बैसाखियों के सहारे चलने को विवश हो जाता है। उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है और वह कहने लगता है—"मुझसे कोई पूछे तो मैं कहूँगा कि राजप्रासाद में रहने से अधिक कष्टकर स्थिति संसार में हो ही नहीं सकती। आप आगे देखते हैं तो प्रतिहारी जा रहे हैं। पीछे देखते हैं तो प्रतिहारी आ रहे हैं। सच कहता हूँ मल्लिका, मुझे कभी पता नहीं चल पाया कि प्रतिहारी मेरे पीछे चल रहे हैं, या मैं प्रतिहारियों के पीछे चल रहा हूँ।"···और इससे भी कष्टकर स्थिति यह थी कि जिन व्यक्तियों को देखकर मेरा आदर से सिर झुकाने का मन होता था, वे मेरे सामने सिर झुका देते थे। मेरे सामने···। हाथ से अपनी ओर संकेत करता है। बताओ मातुल में ऐसा क्या है जिसके आगे कोई सिर झुकाएगा? मातुल न देवी है न देवता है, न पंडित है, न राजा है। कोई क्यों सिर झुकाकर मातुल की वन्दना करे? कहना न होगा कि मातुल का यह सम्मान उसके उस भागिनेय के शासक होने का प्रताप है जिसकी उसने उसके आरम्भिक जीवन-काल में घोर उपेक्षा की थी। मातुल इस तथ्य का दोषी तो है ही कि वह कालिदास को बड़ी खस्ता हालत में रखता है, वह इस बात का उससे भी अधिक दोषी है कि मल्लिका और कालिदास का विवाह कराने का प्रयास नहीं करता। मातुल को भी अवश्य ही मल्लिका और कालिदास के

सम्बन्धों के लोकापवाद का ज्ञान रहा होगा, फिर भी वह उनके परिणय की दिशा में कोई कदम नहीं उठाता ।

मातुल अपनी ऐश्वर्य और प्रशंसा-लिप्सा के कारण हमारी सहानुभूति नहीं अर्जित कर पाता । यही कारण है कि जब हम उसको बैसाखी के सहारे लँगड़ाकर चलते हुए यह कहते देखते हैं—"यह आषाढ़ की वर्षा तो मेरे लिए घातक हो रही है । पहले जब दो पैरों पर चल लेता था तो मैंने भारी-से-भारी वर्षा की चिन्ता नहीं की । परन्तु अब स्थिति यह है कि बैसाखी आगे को रखता हूँ तो पैर पीछे को फिसल जाता है और पैर अगे को रखता हूँ तो बैसाखी पीछे को फिसल जाती है । यह जानता कि राजप्रासाद में रहकर पाँव तोड़ बैठूंगा तो कभी ग्राम छोड़ कर न जाता । अब पीछे से मेरा घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं मेरा पैर जमता ही नहीं । इन चिकने शिला-खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैर को पकड़ती तो थी । मैं तो इस घर के रहते हुए भी गृहहीन हो रहा हूँ । न बाहर रहते बनता है और न अन्दर रहते । इन श्वेत शिला-खंडों के दर्शन से ही मुझे वह प्रासाद स्मरण हो आता है जहाँ फिसल कर एक पैर तोड़ आया हूँ ।"—तो हम मातुल की दयनीय दुरवस्था के प्रति दयार्द्र होने के स्थान पर यह सोचकर प्रसन्न ही होते हैं कि उसे ऐसे ही सजा मिलनी चाहिए थी ।

मातुल ने अपनी मतिहीनता या नासमझी का परिचय स्वयं ही इन शब्दों में दे दिया है—"एक राजनीतिक जीवन दूसरे कालिदास । मैं आज तक इन दोनों में से किसी एक की धुरी को नहीं पहचान सका । मैं तो समझता हूँ कि मैं जो कुछ समझ पाता हूँ सत्य सदा उसके विपरीत होता है और जब मैं उस विपरीत तक पहुँचने लगता हूँ तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है । अत: मैं जो कुछ समझ पाता हूँ वह सदा मिथ्या होता है । इससे अब तुम यह निष्कर्ष निकाल लो कि क्या सत्य हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया है या नहीं लिया । मैं तो यह समझता हूँ कि उसने संन्यास नहीं लिया अतः सत्य यही होना चाहिए कि उसने संन्यास ले लिया है और वह काशी चला गया है ।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मातुल इस नाटक का साधारण पात्र है । नाटककार ने उससे यत्र-तत्र विदूषक का कार्य लेते हुए उसके कथनों में पाठक-प्रेक्षकों को हँसाने की सफल चेष्टा की है । राजकीय सेवा का उसकी दृष्टि में

अत्यधिक महत्त्व है। राजसी-भोगों को भोगने की लालसा से वह काश्मीर जाता है किन्तु वहाँ के जीवन की कृत्रिमता को देखकर सोचने लगता है कि इससे तो ग्राम-जीवन ही अच्छा है।

(ङ) अम्बिका—अम्बिका प्रस्तुत नाटक का ऐसा पात्र है जिसके प्रति पाठक-प्रेक्षकों की पूर्ण सहानुभूति रहती है। उसका मुख्य दुर्भाग्य यह है कि वह असमय ही विधवा हो जाती है तथा उसके कोई पुत्र भी नहीं है जो बड़ा होकर उसके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व संभाल लेता। यह भी उसका दुर्भाग्य ही है कि उसकी इकलौती पुत्री मल्लिका उसके लाड़-प्यार के कारण कुछ ढीठ हो गयी है, तथा नवयौवनाओं के समान कल्पना के संसार में खोई रहती है। अनुभवी अम्बिका इस तथ्य से भली प्रकार परिचित है कि युवक कालिदास जैसे आत्मकेन्द्रित कवि-पुंगवों को अपनी प्रेयसियों के जीवन से खिलवाड़ करने में ही आनन्दानुभव होता है। उन्हें उनके भले-बुरे की विशेष चिन्ता नहीं होती। वे उनसे विवाह करने का झंझट मोल लेना नहीं चाहा करते—और इन बातों को वह स्वपुत्री को समझाना भी चाहती है। किन्तु वह स्वमाता की उचित सीखों की ओर कान नहीं देती। परिणाम वही निकलता है जिसकी उसे आशा थी, वह स्वपुत्री के दुःखों से तिल-तिल कर गलती हुई, असमय ही काल-कवलित हो जाती है।

नाटक के प्रथम अंक के आरम्भ में ही हमें अम्बिका स्व-पुत्री के वर्षा में भी घर से बाहर रहने के तथ्य को लेकर विक्षुब्ध दिखाई देती है। अनुभवी अम्बिका यह अनुमान कर लेती है कि वह उस कालिदास के साथ ही वर्षा-विहार कर रही होगी जिसको लेकर होने वाले लोकापवाद के कारण जीना दूभर हो रहा है। यही कारण है कि वर्षा में भीग कर लौटी मल्लिका के साथ वह बड़ी रूक्षता का व्यवहार करती है। उल्लसित मल्लिका उससे बार-बार बातें करने की चेष्टा करती है, किन्तु वह उसकी बातों को टालती रहती है। अधिक आग्रह करने पर वह कह देती है—देखती नहीं हो मैं काम कर रही हूँ। हाँ, उसके हृदय में स्वपुत्री के प्रति अपार वात्सल्य-भाव है। वह उससे रुष्ट तो अवश्य है फिर भी यह सोचकर कि उसे ठंड न लग जाए, उसके लिए पहले से ही सूखे वस्त्र निकाल कर रख देती है। वह उससे यह भी कहती है कि मैंने दूध औटा दिया है उसमें शर्करा मिलाकर पी लो। यह तथ्य भी उसके वात्सल्य-भाव का ही परिचायक है कि यद्यपि वह उसकी प्रशंसा करने वाले

विलोम के प्रति मन से संतुष्ट और प्रसन्न ही रहती है, फिर भी उसको अपने यहाँ से चले जाने को कहती है, क्योंकि उसकी पुत्री को विलोम का आगमन अच्छा नहीं लगता।

प्रत्येक भारतीय जननी के समान अम्बिका भी इस तथ्य के प्रति बड़ी व्यग्र है कि उसकी पुत्री के हाथ पीले हो जाएँ। वह अग्निमित्र को इस हेतु वर-पक्ष वालों के यहाँ भेजती भी है किन्तु यह सूचना पाकर व्यथित हो उठती है कि मेरी पुत्री और कालिदास के सम्बन्धों का अपवाद वहाँ भी पहुँच गया है, जिससे उन्होंने विवाह करने से इनकार कर दिया है। मल्लिका से विवाह के विषय में यह सुनकर—"किन्तु मैंने तुमसे कहा था, अग्निमित्र को कहीं भेजने की आवश्यकता नहीं है। तुम जानती हो मैं विवाह नहीं करना चाहती फिर उसके लिए प्रयत्न क्यों करती हो ? तुम समझती हो मैं निरर्थक प्रलाप करती हूँ"—उसके अन्तर्मन को वड़ी ठेस पहुँचती है और वह व्यथित होकर कह उठती है कि तुम्हारी बात ही सार्थक होती जा रही है। दुःख भरे स्वर में उसके मुख से ये उद्गार भी निकल पड़ते हैं—"तुम न कहो, मैं तो कह रही हूँ। आज तुम्हारा जीवन तुम्हारी सम्पत्ति है। मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है।" जब उसके इस कथन के प्रत्युत्तर में कि मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है। किन्तु इतना वड़ा अपवाद मुझसे नहीं सहा जाता"—मल्लिका यह कहती है कि अपवाद के विषय में जानते हुए भी मैं स्वयं को दोषी नहीं मानती क्योंकि मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है—तो अनुभवी अम्बिका खेदपूर्वक कह उठता है—"और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है × × × तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है ! ····· भावना में भावना का वरण क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएं किस तरह पूरी होती हैं ? भावना में भावना का वरण है ?"

अम्बिका मानव-मनोविज्ञान की भी अच्छी पारखी है। वह कालिदास की आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति की जिस रूप में भर्त्सना करती है वह अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। वह उसके विषय में उचित ही कहती है—"मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो ! तुम्हारे प्रति

उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है ? कल जब तुम्हारी मां का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा उसका तुम क्या उत्तर दोगी ? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी ?" अम्बिका का मल्लिका से कहा गया यह कथन भी कितना सटीक और मार्मिक है कि "किसी सम्बन्ध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है' — जिसका अभिप्राय यह है कि कालिदास साधन-सम्पन्न हो जाने पर भी तुझ से विवाह नहीं करेगा और हम देखते हैं कि उसकी यह उक्ति पूर्णतया सत्य सिद्ध होती है। आलोच्य नाटक के प्रथम अंक में ही अम्बिका के ये उदगार सुनकर कि इस घर के तल्प और आस्तरण हरिणशावकों के लिए नहीं हैं, यह अनुमान लगाना अनुचित होगा कि उसके हृदय में दया का अभाव है। कारण यह है कि उसे कालिदास का अपने घर अधिक आना-जाना पसन्द नहीं है और इसीलिए वह उस आहत हरिणशावक को अपने गृह में आश्रय देकर यह बखेड़ा मोल नहीं लेना चाहती कि उसको देखने के बहाने से कालिदास बार-बार उसके घर आए।

अम्बिका के लोकानुभव का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि वह कालिदास द्वारा राजकीय सम्मान को स्वीकार करने में अरुचि प्रदर्शित करने को ढोंग बताती है। वह मातुल से कह देती है कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य ही जायेगा और यह उसकी लोकनीति-विचक्षणता का ही प्रमाण है कि वह इस सम्मान के प्रति अरुचि दिखाकर अपना सम्मान बढाना चाहता है। उसके शब्दों में—"सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में भी निष्णात है।" वह निक्षेप से कहती है—"राज्य कवि का सम्मान करना चाहता है। कवि सम्मान के प्रति उदासीन जगदम्बा के मन्दिर में साधना-निरत है। राज्य के प्रतिनिधि मन्दिर में जाकर कवि की अभ्यर्थना करते है। कवि धीरे-धीरे आँखें खोलता है।······इतना बड़ा नाटक खेलना विलक्षणता नहीं है ?"

कालिदास द्वारा मल्लिका के साथ विश्वासघात करके राज-पुत्री प्रियंगु-मंजरी से विवाह कर लेने से दुःखी होकर अम्बिका दिन-प्रतिदिन घुलती जाती है। द्वितीय अंक में प्रियंगुमंजरी के आगमन पर उसके कथनों में बड़ी विपाक्त

व्यंग्यमयता परिलक्षित होती है। जब राजकुमारी मल्लिका से यह प्रश्न करती है कि क्या तुम्हारे मन में अपना घर-परिवार बसाने की कल्पना नही है ?—तो मल्लिका तो चुप रहती है किन्तु अम्बिका आगे आकर उत्तर देती है—"इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है। इसके जीवन में···।" (साँस उखड़ आने के कारण वह अपना कथन पूरा नहीं कर पाती)। मल्लिका द्वारा यह चेष्टा किए जाने पर कि वह प्रियंगुमंजरी से कोई अशोभन बात न कह दे, मेरे और कालिदास के विवाह की बात न उठा दे, वह उसकी भर्त्सना करती हुई कह उठती है— "मैं किसी अभ्यागत से बात भी नहीं कर सकती ? दिन, मास, वर्ष मुझे घुटते हुए बीत जाते हैं। मेरे लिए यह घर अब घर नहीं, एक काल-गहर है, जिसमें मैं हर समय बन्द रहती हूँ और तुम चाहती हो कि मैं किसी से बात भी न करूँ ?" वह प्रियंगुमंजरी के समक्ष इस रहस्य का उद्घाटन करने की दो वार चेष्टा करती है कि हमारी इस दुरावस्था का एक कारण तुम्हारे पति प्राणेश्वर कालिदास भी हैं, किन्तु अनवसर खाँसी उठ आने के कारण वह अपनी पूरी बात नहीं कह पाती और प्रसंग बदल जाता है। प्रथम वार वह कहती है—"यह घर सदा से इस अवस्था में नहीं है राजवधू ! जब मेरे हाथ चलते थे मैं प्रतिदिन इसे लीपती-बुहारती थी। यहां की हर वस्तु इस प्रकार गिरी-टूटी नहीं थी। परन्तु आजकल तो हम दोनों माँ-बेटी भी यहाँ टूटी-सी पड़ी रहती हैं। यह इसलिए कि······।" दूसरी बार यह कहती है—"परन्तु राजवधू, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती थी। तुम्हें बताना चाहती थी कि······।

हम लोग······लोग···।"

खाँसी उखड़ आने में उसके शब्द डूब जाते हैं और प्रियंगुमंजरी यह कहती हुई चली जाती है—"मैं आपके कष्ट को समझ रही हूँ। जो भी सहायता मुझसे बन पड़ेगी, अवश्य करूँगी। इस समय अनुचर प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिए···।"

अम्बिका कालिदास की ओर से निराश तो अवश्य थी किन्तु इतनी हताश नहीं थी कि कालिदास यहाँ आकर भी हमारी उपेक्षा करके चला जायेगा। जब वह इस अप्रत्याशित को ही घटित होते देखती है तो मल्लिका पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा करते हुए अपनी अन्तरात्मा की व्यथा को हलका करने लगती है "लो मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थी कि उसके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है ? आज उस कोमलता का और भी साकार रूप

देख लिया ? आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है। क्यों नहीं स्वीकार कर लेतीं ? घर की भित्तियों का परिसंस्कार हो जाएगा और तुम उनके यहाँ परिचारिका बनकर रह सकोगी। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य चाहिए ? × × × आज वह प्रभु है, उसके पास सम्पदा है, उस प्रभुता और सम्पदा का परिचय देने के लिए इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता था ?" वह यह इच्छा व्यक्त करती है कि काश ! मैं छाया-ग्राहिणी राक्षसी होती। जिसका उद्देश्य मात्र यही है कि वह किसी प्रकार कालिदास को पकड़ पाती और उससे पूछती कि तेरे उन वायदों का क्या हुआ जो तूने मल्लिका से किए थे ! किन्तु उसकी यह साध कि मैं अपने जीवन-काल में स्वपुत्री के हाथ पीले कर सकूं अधूरी ही रह जाती है और यही निराश्रिता विधवा स्वपुत्री के दुःखों से अनुदिन परितापित-विगलित होती हुई अन्ततः दम तोड़ देती है।

संक्षेप में कहा जा सकता कि अम्बिका आलोच्य नाटक का एक जीवन्त पात्र है। वह अपनी मल्लिका विषयक वात्सल्य-भावना, उसकी हिताकांक्षा, उसके भोलेपन के प्रति कातरता तथा कर्मठता और यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण पाठक-प्रेक्षकों की सहानुभूति अर्जित करने में पूर्णतया सफल रहती है। प्रभाव की दृष्टि से उसका चरित्र मल्लिका के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों से बढ़कर प्रभावशाली है।

(च) निक्षेप—निक्षेप हमारी सहानुभूति अर्जित करने में पूर्णतया सफल रहता है जिसका मूल कारण यह है कि वह आलोच्य नाटक के नायक और नायिका दोनों का ही शुभचिन्तक है और प्रायः प्रत्येक अवसर पर सूझबूझ की बातें करता है। वह मातुल का भी एक शुभेच्छु पड़ोसी है और उसके कार्यों में सहायता करता रहता है। इस नाटक में हमें उसके प्रथम बार दर्शन कालिदास को उज्जयिनी ले जाए जाने के प्रसंग में होते हैं। कालिदास को खोज लाने के उद्देश्य से मातुल तो मल्लिका के घर की ओर चला आता है और राजधानी से आए आचार्य वररुचि की सेवा में निक्षेप को नियुक्त कर आता है। वह उससे कह आता है कि जब आचार्य जग जाएँ तो मुझे बुला लेना, किन्तु निक्षेप के आने पर वह बिगड़ उठता है कि तुम आचार्य को अकेले क्यों छोड़ आए हो ? सरल हृदय का निक्षेप उसकी बातों का बुरा नहीं मानता और उसके क्रोध को इस उपहास में डुबा देता है कि मातुल का तीसरा नेत्र प्रत्येक समय खुला रहता है।

कालिदास को उज्जयिनी भिजवाने में प्रमुख भूमिका निक्षेप की है। वह अम्बिका के हृदय से इस विचार को निकालने की चेष्टा करता है कि कालिदास राजकीय सम्मान स्वीकार न करने का ढोंग रच रहा है—'कालिदास नाटक नहीं खेल रहे अम्बिका! मुझे विश्वास है कि उन्हें राजकीय सम्मान का मोह नहीं है। वे सचमुच इस पर्वतभूमि को छोड़कर जाना नहीं चाहते।" उसे यह भी ज्ञात है कि सम्प्रति कालिदास जगदम्बा के मन्दिर में छिपे बैठे। उन्हें वहाँ से मातुल डाँट-फटकार कर घर नहीं ला सकते, अपितु इससे तो बात के और भी अधिक बढ़ जाने की सम्भावना है। इसीलिए वह मातुल को कालिदास का पता नहीं बताता—"मैं चाहता हूँ कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य जायँ। इसीलिए मैंने मातुल का इस समय उनके पास जाना उचित नहीं समझा। मातुल को अपने मुख से उच्चारित शब्दों को सुनने में ऐसा रस प्राप्त होता है कि वे बोलते ही जाते हैं, परिस्थिति को नहीं समझना चाहते।" निक्षेप इस तथ्य पर बल देता हुआ कि काव्योत्कर्ष के लिए कालिदास का राजधानी जाना अत्यावश्यक है, मल्लिका पर इस बात का जोर देता है कि वह उन्हें उज्जयिनी जाने के लिए विवश करे। निक्षेप की यह उक्ति कितनी सटीक एवं महत्त्वपूर्ण है—"कालिदास अपनी भावुकता में यह भूल रहे हैं कि इस अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेंगे। योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। कालिदास को राजधानी अवश्य जाना चाहिए।" मल्लिका को भी वह बड़ी अवसरानुकूल और मार्मिक सीख देते हुए कहता है—"उस कटुता को केवल तुम्हीं दूर कर सकती हो मल्लिका। अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज है, जीवन-भर नहीं रहेंगे—केवल एक स्थानीय कवि। जो लोग आज ऋतुसंहार की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जायेंगे।"

निक्षेप स्वयं को अम्बिका के ही परिवार का एक सदस्य मानता है, जो इस दृष्टि से उचित भी है कि वह उसका परिवार के सदस्य के समान ही हितैषी है। उसे अम्बिका का मल्लिका से कहा यह कथन अखर जाता है कि क्या मुझे एक बाहर के व्यक्ति के सामने यह कहना पड़ेगा कि मैं इस समय इस पक्ष में नहीं हूँ कि तुम कालिदास को मनाने जगदम्बा के

मंदिर में जाओ—और वह कह उठता है—'निक्षेप बाहर का व्यक्ति नहीं है, अम्बिका।" हाँ, वह व्यवहारकुशल भी है। जब वह यह अनुभव करता है कि अम्बिका की इच्छा के विरुद्ध मल्लिका को अपने साथ जगदम्बा के मन्दिर लिवा ले जाना अनुचित है तो वह तदर्थ अम्बिका से क्षमा-याचना करने में संकोच नहीं करता।

निक्षेप सरल हृदय का व्यक्ति है। उसे कालिदास के प्रति यह आशंका नहीं थी कि वह उज्जयिनी जाकर मल्लिका और ग्राम-प्रान्तर को पूर्णतया भुला देगा अन्यथा वह मल्लिका को इस हेतु विवश न करता कि वह उसे राजधानी जाने के लिए बाध्य करे। द्वितीय अंक में वह इस तथ्य को लेकर आत्मनिन्दा करते दृष्टिगोचर होता है—"कई बार सोचता हूँ कि स्वयं उज्जयिनी जाकर उनसे मिल आऊँ। × × × कई-कई बातें करना चाहता हूँ। कई-कई बार मुझे लगता है कि मेरा भी अपराध है। × × × मैंने आशा नहीं की थी कि उज्जयिनी जाकर कालिदास इस प्रकार वहाँ के ही हो जाएँगे।" वह कालिदास को इस दृष्टि से दोषी समझते हैं कि यहाँ रहते हुए तो वे आग्रह करते थे कि आजीवन विवाह नहीं करेंगे, फिर उस आग्रह का क्या हुआ? जबकि उनके इस आग्रह की रक्षा के लिए तुमने अपने जीवन की खुशियाँ बलिदान कर दी हैं। वह मल्लिका से स्पष्ट शब्दों में कह देता है—"यही तो सोचता हूँ कि मेरे नियोजन से तुम ऐसा न करतीं (कालिदास को राजधानी जाने के लिए प्रेरित) तो संभवतः आज तुम्हारा जीवन यह न होता।" इसीलिए उसे ग्राम-प्रान्तर में जैसे ही कालिदास की अश्वारूढ़ आकृति पर्वत की ओर जाती दिखाई देती है, वह उनसे बातें करने उसी ओर चल देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है, कि निक्षेप एक साफ हृदय का परोपकारी पुरुष है। उसकी परोपकार से सम्बन्धित और सूझ-बूझमयी बातें बड़ी प्रभावशाली हैं—उनके द्वारा वह हमारी सहानुभूति और श्रद्धा का पात्र बन जाता है।

(छ) प्रियंगुमंजरी—प्रियंगुमंजरी उज्जयिनी-नरेश की दुहिता और कालिदास की पत्नी के रूप में प्रस्तुत की गई है। मल्लिका ने उसके विषय में यह सुना था कि वह बहुत विदुषी हैं और निक्षेप भी इस तथ्य की पुष्टि करता हुआ कहता है—"हाँ, सुना था। बहुत दर्शन-शास्त्र पढ़ी हैं।" आलोच्य नाटक में प्रियंगुमंजरी का जिस रूप में चरित्रांकन किया गया है, उससे उसके दर्शन-शास्त्र में निष्णात होने का परिचय तो नहीं मिलता, हाँ, वह एक सहृदया,

विनोदी, विनीत, व्यवहार-कुशल और राजनीति-निपुण राजकुमारी सिद्ध होती है। हाँ, उसके चरित्र का भी आलोच्य नाटक में पूर्ण विकास नहीं मिलता, वह उसके मात्र द्वितीय अंक में ही रंगमंच पर अवतरित होकर रह जाती है।

प्रियंगुमंजरी एक चतुर नारी है। वह अनुभव करती है कि उसके पति-प्राणेश्वर ग्राम-प्रान्तर और वहाँ की भी विशेषतया मल्लिका सम्बन्धी बातें छिड़ने पर यदा-कदा इतने उद्विग्न हो जाते हैं कि कई-कई दिवस तक उन्हें उसकी नार्मल (स्वाभाविक) स्थिति में लाने का प्रयत्न करना पड़ता है। अतः कालिदास द्वारा काश्मीर का शासन-भार सम्भालने से पूर्व वह उनके मन से ग्राम-प्रान्तर के इस काँटे को दो प्रकार से निकाल देने का प्रयत्न करती है। उसकी योजना का एक अंग तो यह है कि उस ग्राम-प्रान्तर के प्राकृतिक दृश्यों के चित्र उतार-कर काश्मीर में भी वैसा ही कृत्रिम प्राकृतिक वातावरण बनाने की चेष्टा की जाए तथा हरिणशावक आदि वे पशु-पक्षी जो कालिदास को विशेष प्रिय हैं, ग्राम-प्रान्तर से पकड़कर काश्मीर ले जाएँ। उसकी योजना का दूसरा अंग यह है कि कालिदास की किशोर-काल की सहचरी मल्लिका का किसी राज-पुरुष से विवाह करा दिया जाए, जिससे उसे विवाहित जानकर कालिदास उसके विषय में सोचना स्थगित कर दें। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह काश्मीर जाने का मार्ग बदलकर उस ग्राम-प्रान्तर में से होती हुई जाने की योजना बनाती है। अपनी इस योजना के प्रथम अंग को वह मल्लिका के समक्ष इन शब्दों में प्रस्तुत करती है, "मैंने तुमसे कहा था कि मैं यहाँ का कुछ वातावरण अपने साथ ले जाना चाहती हूँ। यह इसीलिए कि उन्हें अभाव का अनुभव न हो। कई बार बहुत क्षति होती है। वे व्यर्थ में धैर्य खो देते हैं, जिसमें समय भी जाता है, शक्ति भी। उनके समय का बहुत मूल्य है। मैं चाहती हूँ कि उनका समय नष्ट न हुआ करे। इसलिए मैं यहाँ से कई कुछ अपने साथ ले जा रही हूँ। कुछ हरिणशावक जाएँगे, जिनका हम अपने उद्यान में पालन करेंगे। यहाँ की औषधियाँ उद्यान के क्रीड़ा-शैल पर तथा आसपास के प्रदेश में लगवा दी जाएँगी। हम यहाँ के कुछ घरों का भी वहाँ निर्माण करेंगे।"

मल्लिका का किसी राजपुरुष से विवाह करा देने की चेष्टा से वह अनुस्वार तथा अनुनासिक नामक राज्याधिकारियों को मल्लिका के घर को व्यवस्थित करने के बहाने से उसके यहाँ भेज देती है, जिससे मल्लिका उन दोनों में से किसी एक को पसन्द कर सके। वह मल्लिका से कहती भी है—"मेरे आने

से पूर्व राज्य के दो अधिकारी यहाँ आये थे। मैंने उन्हें औपचारिक प्रक्रिया के लिए ही नहीं भेजा था। तुमने उन दोनों को देखा है ? × × × तुम उनमें से जिस किसी को अपने योग्य समझो उसी के साथ तुम्हारे परिणयन का प्रबन्ध किया जा सकता है। दोनों बहुत योग्य अधिकारी हैं। × × × संभवतः तुम उन दोनों में से किसी को भी अपने योग्य नहीं समझती, परन्तु राज्य में ये दो ही नहीं, और अनेकानेक अधिकारी हैं। तुम मेरे साथ चलो। तुम जिस किसी से भी चाहोगी···।"

प्रियंगुमंजरी के विनोदी स्वभाव के दर्शन उसके मातुल से हुए वार्तालाप में होते हैं। वह उस चाटुकार से पीछा छुड़ाना चाहती है किन्तु मातुल है कि उसका साथ छोड़ना ही नहीं चाहता। बातों में जब वह यह डींग हांकने लगता है कि मैं अपने पशुओं की खोज में दस-दस योजन तक भटका हूँ, तो प्रियंगुमंजरी कह उठती है—"देखिए, आज भी आपके पशु भटक रहे होंगे, उन्हें जाकर एक बार देख लीजिए।" वह विनीत भी है। जब मातुल कहता है कि आपको यहाँ बड़ी असुविधा होगी तो वह कह उठती है—"चिन्ता मत कीजिये। मुझे कोई असुविधा न होगी।" मल्लिका उससे बैठने के लिये कहती है और यह भाव व्यक्त करती है कि मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि आपका आतिथ्य कैसे करूँ ? तो वह सविनय कहने लगती है—"मेरा आतिथ्य करने की बात मन में मत सोचो। मैं तुम्हारे पास अतिथि के रूप में नहीं आयी हूँ।" जब वह बैठ जाती है और मल्लिका से बैठने का आग्रह करती है, तो मल्लिका उससे दूर हटकर बैठने लगती है, किन्तु प्रियंगुमंजरी उसे साग्रह अपने समीप बिठा लेती है। मल्लिका द्वारा कालिदास शब्द का प्रयोग सुनकर उसकी भवें चढ़ जाती हैं। किन्तु अंततः वह उसे संयत स्वर में यह समझा देती है कि अब वे मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं।

प्रियंगुमंजरी नरेश-पुत्री है अतः राजनीतिक सूझ-बूझ की बातें उसे घुट्टी में पिलाई गई हैं। वह काश्मीर शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना चाहती है, क्योंकि—"काश्मीर की राजनीति इतनी अस्थिर है कि हमारा एक-एक दिन वहाँ से दूर रहना कई-कई समस्याओं को जन्म दे सकता है।···एक प्रदेश का शासन बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है और हम पर तो और भी बड़ा उत्तरदायित्व है क्योंकि काश्मीर की स्थिति इस समय बहुत संकटपूर्ण है। यों वहाँ के सौन्दर्य की इतनी चर्चा है, परन्तु हमें उसे देखने का अवकाश कहाँ रहेगा ?" वह राज-

नीति को साहित्य से सर्वथा पृथक् बताती हुई उचित ही कहती है—"राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक-एक क्षण का महत्त्व है। कभी एक क्षण भी स्खलित हो जाय तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने के लिए व्यक्ति को बड़ा जागरूक रहना पड़ता है।··· साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण पर पहुँच चुके हैं। मेरा समय इसी आयास में व्यतीत होता है कि उनका बढ़ा हुआ चरण पीछे न हट जाय।··· बहुत परिश्रम-साध्य जीवन है यह।"

प्रियंगुमंजरी दयामयी भी है। वह मल्लिका के घर की जीर्ण-शीर्ण दशा देखकर द्रवित होकर कह उठती है—"देख रही हूँ कि तुम्हारा घर बहुत जर्जर स्थिति में है। इसका परिसंस्कार आवश्यक है। तुम चाहो तो मैं इस कार्य के लिए आदेश दे जाऊँगी। उज्जयिनी के दो कुशल स्थपित हमारे साथ आए हैं। क्यों ?" जब मल्लिका उसके इस अनुरोध को यह कहकर टालना चाहती है कि "आप बहुत उदार हैं। परन्तु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिए हमें असुविधा नहीं होती"—तो वह कह उठती है "फिर भी मैं चाहूँगी कि इस घर का परिसंस्कार हो जाय। उनके जीवन के आरंभिक वर्षों का इस घर के साथ भी सम्बन्ध रहा है। × × × तुम्हारी माँ के भी साथ जाने की व्यवस्था हो सकती है। हमारे स्थपित इस घर का परिसंस्कार करते रहेंगे। तुम वहाँ मेरे साथ चलकर मेरी संगिनी के रूप में रहोगी।" वह अम्बिका से कहती है "मैं देख रही हूँ कि इस घर की अवस्था अच्छी नहीं है। मल्लिका मेरे साथ चल सकती तो समस्या वैसे ही सुलझ जाती। परन्तु अब (अपना ओठ काटती हुई क्षण भर जैसे सोचने के लिए रुकती है) भी जो कुछ संभव है, मैं अवश्य कर जाऊँगी। मैं स्थपतियों को आदेश दूँगी कि वे इस घर को गिरा कर उसके स्थान पर···।" उसके इस कथन को सुनकर जब मल्लिका कह उठती है कि ऐसा मत कीजिये। इस घर को गिराने का आदेश मत दीजिए।—तो वह कह उठती है—"मैं तुम्हारी सुविधा के ही लिए कह रही थी। तुम्हें इसमें असुविधा हो तो···तो ठीक है। मैं ऐसा आदेश नहीं दूँगी। फिर भी चाहती हूँ कि तुम्हारे लिये कुछ-न-कुछ अवश्य कर सकूं।" और प्रियंगुमंजरी दिखावे की प्रीति दिखाकर ही नहीं रह जाती, अपितु काश्मीर पहुँचकर भी मल्लिका की जीवन-दशा सुधारने के लिये स्वर्ण मुद्राएँ और कुछ वस्त्र भिजवाती है। यह दूसरी बात है कि स्वाभिमानिनी मल्लिका उसके

इन उपहारों को स्वीकार नहीं करती तथा अपने घर का परिसंस्कार भी नहीं कराती।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि प्रियंगुमंजरी का आलोच्य नाटक में जितना स्वल्प-रूप में चरित्रांकन हुआ है उसके आधार पर भी उसके चरित्र के भव्य पक्ष का दिग्दर्शन हो जाता है। वह राजकुमारी होते हुए भी राजकुमारियों जैसे गर्व से अछूती है। अपने पति की कल्याण-कामना और उसकी प्रसन्नता की दृष्टि से वह उसकी किशोर काल की प्रेमिका को अपनी संगिनी के रूप में काश्मीर ले जाने का जोखिम उठाने तक को प्रस्तुत है। वह एक सहृदया नारी है अतः दीन-हीन दशा में रहने वाली मल्लिका और अम्बिका की वित्तीय सहायता भी करना चाहती है और उनके घर का परिसंस्कार करा देने पर भी बल देती है। वह राजनीति विचक्षण है और समझती है कि राजनीति में प्रत्येक क्षण का कितना महत्त्व है, अतः अपने कवि पति को राजनीतिक दृष्टि से सफल रखने की भरसक चेष्टा करती रहती है।

(ज) दन्तुल—दन्तुल राजपुरुष है और उसके माध्यम से नाटककार ने यह सूचना दिलाने का कार्य किया है कि कालिदास को राजकीय सम्मान प्रदान करने के लिए ले जाने हेतु आचार्य वररुचि उज्जयिनी से आये हुए हैं। इसके अतिरिक्त उसके इस नाटक में अस्तित्व का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष और भी है और वह यह है—दन्तुल द्वारा आहत हरिणशावक के प्रसंग द्वारा हमें कालिदास की दयामयी मनोवृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। कृति के नायक कालिदास के चरित्र के इस पक्ष का उद्घाटन इस दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण है कि उनमें अन्य ऐसे गुण नहीं हैं, जिनके द्वारा वे पाठक-प्रेक्षकों को विशेष प्रभावित कर सकें। दन्तुल राजपुरुष है और उन्हीं के समान उद्धत भी है। उसे कालिदास का अनुगमन करते हुए मल्लिका के घर में प्रवेश कर जाने में संकोच का अनुभव नहीं होता। जब कालिदास द्वारा वह इस अनधिकार प्रवेश के लिए टोका जाता है तो दन्तुल कह उठता है कि यही तो मैं भी पूछना चाहता हूँ कि जब हम और तुम परिचित नहीं हैं तो फिर तुम मेरे द्वारा आहत हरिणशावक को कैसे उठा लाये हो? दन्तुल में अभद्रता भी पर्याप्त मात्रा में है। वह कालिदास का उपहास करते हुए कहता है कि तुम चोरी करने के साथ-साथ सामुद्रिक-शास्त्र में भी निपुण प्रतीत होते हो। जब कालिदास यह कहते हैं कि यहां के नियमों से अपरिचित होने के कारण यही पर्याप्त है

कि हम तुम्हें अपराधी न मानें, तो वह भड़क कर कह उठाता है—"तो राज-पुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे ? ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो ? × × × समझदार व्यक्ति जान पड़ते हो, फिर भी यह नहीं जानते कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं । मुझे देर हो रही है । यह हरिणशावक मुझे दे दो ।" जब कालिदास उस मृगछौने को लेकर चले जाना चाहते हैं तो दन्तुल उन्हें यह कहकर धमकाता है—"राज-पुरुष की रुचि-अरुचि क्या होती है, सम्भवतः इसका परिचय तुम्हें देना आवश्यक होगा ।" वह तलवार की मूठ पर हाथ रखकर कालिदास का पीछा करने को उद्यत होता है किन्तु यह जानकर घबड़ा जाता है कि जिस व्यक्ति से वह बातें कर रहा था वह और कोई न होकर स्वयं कवि कालिदास ही हैं जिनको उज्जयिनी ले आने के लिए उसे और आचार्य वररुचि को प्रेषित किया गया है । वह स्पष्ट करता है कि सम्राट् ने स्वयं ऋतुसंहार पढ़ा है और उसके रचयिता को सम्मानित करने के लिये उसे राजकवि का आसन देना चाहते हैं । जैसी कि राजपुरुषों से अपेक्षा की जाती है, वे अपने से बड़े अधिकारियों के समक्ष दुम हिलाया करते हैं और दन्तुल भी इसका अपवाद नहीं है । कालिदास का वास्तविक परिचय पाकर वह अपनी अभद्रता के प्रति खेद व्यक्त करते हुये, उनसे क्षमा याचना करने चल देता है । संक्षेप में, कहा जा सकता है कि दन्तुल के चरित्र का विकास नहीं होता, प्रस्तुत नाटक में उसके एक पक्ष की झलक मात्र ही दिखाई गई है ।

(झ) **अनुनासिक और अनुस्वार**—अनुनासिक और अनुस्वार की अवतारणा विदूषकों के रूप में की गई है । यद्यपि प्रियंगुमंजरी उन्हें मल्लिका के यहाँ भेजने का उद्देश्य यह बताती है कि वह उनमें से किसी एक को पसन्द करके उसके साथ विवाह कर ले किन्तु वे अपने निरर्थक वार्तालापों से पाठक-प्रेक्षकों का मनोरंजन करते ही मिलते हैं । उनके माध्यम से नाटककार ने यह सूचना भी दिला दी है कि कालिदास ने किन-किन ग्रन्थों की रचना की है, सम्प्रति वे मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं और उन्हें काश्मीर का शासक नियुक्त किया गया है—"ऋतुसंहार, कुमारसंभव, मेघदूत एवं रघुवंश के प्रणेता कवीन्द्र, राजनीति निष्णात आचार्य, तथा काश्मीर के भावी शासक । देव मातृगुप्त की राजमहिषी गुप्तवंश-दुहिता परम विदुषी देवी प्रियंगुमंजरी आपके साक्षात्कार के लिए उत्सुक हैं और शीघ्र ही यहां आना चाहती हैं ।"

जब मल्लिका यह कहती है—"ऋतुसंहार और मेघदूत आदि के प्रणेता कालिदास हैं और आप कह रहे हैं—"—तो अनुस्वार स्पष्ट कर देता है—"वे गुप्त राज्य की ओर से काश्मीर का शासन संभालने जा रहे हैं। मातृगुप्त उन्हीं का नया नाम है।" वे अपने आने का प्रयोजन मल्लिका के उपवेशगृह के वस्तु-विन्यास में परिवर्तन करना बताते हैं और मल्लिका द्वारा तदर्थ उत्सुकता न दिखाने पर भी उसकी योजना भी बनाने लगते हैं, किन्तु वे बातें ही बनाते रहते हैं, करते कुछ भी नहीं हैं। उन्हें बातों की खाते वाले राज-कर्मचारियों के प्रतीक पात्र कहा जा सकता है। वे किस प्रकार का निरर्थक प्रलाप करते हैं, इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिये उनका निम्नांकित वार्तालाप अवलोकनीय है—

अनुनासिक—अच्छी बात है, इसे (आसन को) यहीं रहने दिया जाय और ये कुम्भ ?

अनुस्वार—मैं समझता हूँ कि एक कुम्भ इस कोने में और दूसरा उस कोने में होना चाहिये।

अनुनासिक—मैं समझता हूँ कि कुम्भ इस प्रकोष्ठ में होने ही नहीं चाहिये।

अनुस्वार—क्यों ?

अनुनासिक—क्यों का कोई उत्तर नहीं।

अनुस्वार—मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुनासिक—मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।

अनुस्वार—तो ?

अनुनासिक—तो कुंभों को भी रहने दिया जाय।

अनुस्वार और अनुनासिक इसी प्रकार आसन, वस्त्रों, चूल्हे और चौकी को इधर-उधर हटाने की योजना बनाते हैं किन्तु तदर्थ शास्त्रीय प्रभाव न होने की उपहासास्पद बात कहकर या दोनों किसी एक निष्कर्ष पर न पहुँच पाने के कारण कुछ भी नहीं करते। सभी वस्तुएँ यथास्थान रखी रहती हैं, और उनकी दृष्टि में उनका कार्य पूर्ण हो जाता है।

(ञ) रंगिणी-संगिनी—रंगिणी और संगिनी का आलोच्य नाटक में चरित्र-विकास नहीं मिलता अपितु उनके माध्यम से नाटककार ने नगर की बातूनी नव-यौवनाओं और ऐसे शोधार्थियों का खाका खींचने की चेष्टा की है, जो

न्यूनातिन्यून परिश्रम के द्वारा नूतन तथ्यों की खोज का उपहासास्पद प्रयास किया करते हैं। वे दोनों मल्लिका के गृह-द्वार पर जाकर अंदर जाने के लिए तुम पूछो, तुम पूछो इस विवाद में पड़कर अंततः उसके गृह में प्रवेश करती हैं और मल्लिका द्वारा पूछने पर स्पष्ट कर देती हैं—"हम विशेष रूप से किसी के यहाँ नहीं आयी हैं, समझ लीजिए कि यों ही आयी हैं, ग्राम-प्रदेश में घूमती हुई।...बात वस्तुतः यह है कि राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं। आप समझ सकती हैं कि यह कितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु इस प्रदेश में घूमकर हम तो लगभग निराश हो रही हैं। यहाँ कुछ सामग्री ही नहीं है।" नगर-सभ्यता उनकी रग-रग में बसी हुई है अतः वे मल्लिका को अपना परिचय देती हुई उसका भी परिचय पूछती हैं। संगिनी अपनी सहचरी का परिचय देती है—"ये हैं शुभश्री रंगिणी। उज्जयिनी के नाट्य-केन्द्र में नृत्य का अध्ययन करती हैं। नाटक लिखने में भी आपकी रुचि है।" रंगिणी अपनी सखी का परिचय इन शब्दों में देती है—"और ये हैं संगिनी—उसी केन्द्र में मृदंग और वीणा-वादन सीखती हैं। बहुत सुन्दर प्रणय गीत लिखती हैं। अब गद्य की ओर आ रही हैं। और आप ?" उन्हें यह जानकर बड़ी निराशा होती है कि इस ग्राम-प्रान्तर में भी उज्जयिनी के समान प्रकोष्ठ और कुम्भ को ग्रामवासी प्रकोष्ठ और कुम्भ ही कहते हैं। वे इस दृष्टि से झुंझला उठती हैं कि इस ग्राम-जीवन की वह विशेषता क्या है जिसने कालिदास जैसी अनूठी कवि-प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु ही असाधारण होनी चाहिए थी, जबकि यहाँ कुछ भी असाधारण दृष्टिगत नहीं होती। उन्हें यह जानकर भी बड़ी निराशा होती है कि कालिदास ने "भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च" के रूप में जिन चमकने वाली वनस्पतियों का उल्लेख किया है, वे भी यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें मल्लिका यह समझाना चाहती है कि कालिदास के संदर्भगत श्लोक में चमकने वाली औषधियों का वर्णन नहीं है, किन्तु वे ज्ञान-गर्विणी शोध-छात्राएँ एक ग्रामीण बाला को स्वयं से अधिक विद्वान कैसे मान सकती थीं ?—अतः वे कोठे मटकाती हुई यह बुदबुदाती हैं कि ये (मल्लिका) यहाँ के जीवन के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं जानतीं। स्तंभित मल्लिका उन्हें देखती ही रह जाती है और वे उससे उसका समय नष्ट करने के लिए क्षमा माँगती हुई चली जाती हैं।

प्रश्न ६—देशकाल अथवा वातावरण की योजना की दृष्टि से आलोच्य नाटक की सफलता-असफलता की विवेचना कीजिये ।

उत्तर—देशकाल अथवा वातावरण की कृति के वर्ण्य-विषय के समय (काल) के अनुकूल योजना करने का यद्यपि उपन्यास, कहानी आदि गद्य-विधाओं तथा प्रबन्ध-काव्य, खण्ड-काव्य आदि काव्य-विधाओं में भी पर्याप्त महत्त्व है, किन्तु नाटकों में उसका सर्वाधिक महत्त्व होता है। कारण यह है कि देशकाल की उपयुक्त योजना करने से ही नाटककार अपने वर्ण्य-विषय को संभाव्यता प्रदान करने में सफल रहता है। पात्रों की वेशभूषा, आचार-व्यवहार, बोल-चाल की भाषा, उनके पर्व-त्यौहार आदि सभी तथ्यों में इस बात के प्रति नाटककार को विशेष जागरूकता दिखानी पड़ती है कि वे उसी युग के अनुकूल हों, जिस युग की कहानी को उसने अपने नाटक की कथावस्तु के रूप में अपनाया है। इस जागरूकता में जो नाटककार जितनी ही अधिक सूझबूझ का परिचय देता है, उसका नाटक देशकाल अथवा वातावरण की यथातथ्यता के कारण उतना ही अधिक संभाव्य और सफल हुआ करता है। दृश्य-विधान और रंग-प्रबन्ध से भी इस दिशा में सहायता ली जाती है। जहां तक ऐतिहासिक नाटकों का प्रश्न है, उनमें देशकाल अथवा वातावरण की सुष्ठु योजना और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण ही इस श्रेणी के नाटकों का प्राण हुआ करता है। मोहन राकेश के ऐतिहासिक नाटकों में देशकाल अथवा वातावरण की योजना विषयक उतनी जागरूकता तो परिलक्षित नहीं होती जैसी प्रसादजी के नाटकों में मिलती है; तथापि उन्होंने भी इस दिशा में प्रयत्न अवश्य किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में गुप्तकालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक अर्थात् सांस्कृतिक जीवन की झाँकी तो नहीं मिलती, उसकी भाषा में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है जिससे प्राचीनता का वातावरण निर्मित होता हो, तथापि उसमें दृश्य-विधान, मकानों की सज्जा, विलासमय नागरिक जीवन, क्रियाशून्य राज्याधिकारियों आदि के चित्रण द्वारा गुप्तकालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मुख्य बात तो यह है कि जहाँ नाटककार ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न नहीं किया है, वहाँ इस तथ्य का भी ध्यान रखा है कि वह ऐसी बातों का चित्रण न करे, जो उस युग के जीवन के प्रतिकूल पड़ती हों। 'आषाढ़ का

एक दिन' के आधार पर गुप्तकालीन सामाजिक वातावरण का जो चित्र उभरता है, उस पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत तत्कालीन आवासों का नाटककार ने दृश्य-विधान के माध्यम से परिचय दिया है। एक ओर तो राजकीय प्रासाद थे जो इतने चिकने शिला-खण्डों से बनाए जाते थे उनके फर्शों पर भली प्रकार चलना तक असंभव हो जाता था। कालिदास के काश्मीर के राजप्रासाद का फर्श इतना चिकना था कि उस पर मातुल फिसल कर गिर पड़ता है जिससे उसका एक पैर ही टूट जाता है। मातुल के लिए राजकीय स्थपतियों द्वारा जो भवन तैयार किया जाता है, वह भी प्रायः ऐसा ही था। मातुल के शब्दों में—"यह जानता कि राजप्रासाद में रहकर पाँव तोड़ बैठूंगा तो कभी ग्राम छोड़ कर नहीं जाता। अब पीछे से मेरा घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं मेरा पैर जमता ही नहीं। इन चिकने शिला-खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैर को पकड़ती थी। मैं तो इस घर के रहते हुए भी गृहहीन हो रहा हूँ।" इसके विपरीत ग्रामीण लोगों के जैसे घर होते थे, उनका नाटककार ने दृश्य-विधान के माध्यम से चित्रांकन किया है, जो इस प्रकार है—"एक साधारण प्रकोष्ठ। दीवारें लकड़ी की हैं, परन्तु निचले भाग में चिकनी मिट्टी से पोती गयी हैं। बीच-बीच में गेरू से स्वस्तिक चिन्ह बने हुए हैं। सामने का द्वार अँधेरी ड्योढ़ी में खुलता है। उसके दोनों ओर छोटे-छोटे ताक हैं, जिनमें बुझे हुए मिट्टी के दीपक रखे हुए हैं। × × × द्वार खुला होने पर प्रकोष्ठ में बिछे हुए तल्प (शैया) का एक कोना ही दिखायी देता है। द्वारों के किवाड़ भी मिट्टी से पोते गये हैं और उन पर गेरू एवं हल्दी से कमल तथा शंख बनाए गए हैं। × × × प्रकोष्ठ में एक ओर चूल्हा है, जिसके आस-पास मिट्टी और काँसे के बरतन सहेज कर रखे गए हैं। दूसरी ओर, झरोखे से हट कर तीन-चार बड़े-बड़े कुंभ रखे हैं जिन पर कालिख और काई जमी है। उन्हें कुश से ढक कर ऊपर पत्थर रख दिए गए हैं। झरोखे से सटा हुआ एक लकड़ी का आसन है जिस पर बाघ-छाल बिछी है। चूल्हे के निकट दो-एक चौकियाँ पड़ी हैं। उन्हीं में से एक पर बैठ कर अम्बिका छाज में धान फटक रही है।" संदर्भगत उद्धरण से इन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है कि उस काल में पर्वतीय प्रदेश में मकान लकड़ी के बनाए जाते थे, जिनकी दीवारों के निचले भाग को चिकनी मिट्टी से पोत दिया जाता था। मकानों

के किवाड़ों को भी मिट्टी से पोतकर उन पर गेरू एवं हल्दी से कमल और शंखों के चित्र बना दिए जाते थे, जबकि दीवारों पर भी गेरू से स्वस्तिक चिन्ह बनाने की प्रणाली थी। बरतनों में मिट्टी और कांसे के बने बरतनों का प्रयोग किया जाता था। दीपक मिट्टी के बने होते थे। घरों में पानी तथा अन्न के संचय के लिए बड़े-बड़े कुंभ हुआ करते थे। घड़ों पर ढकनों के रूप में कुशा और पत्थरों का प्रयोग किया जाता था आदि। उन दिनों प्रकाश के लिए लोग उल्मुक (मशाल) लेकर चला करते थे, तथा कागजों के स्थान पर भोजपत्रों का प्रयोग किया जाता था।

खान-पान और वस्त्राभरणों के विषय में नाटककार ने विशेष प्रकाश तो नहीं डाला, हाँ, पर्वतीय प्रदेशों का मुख्य भोज्यान्न चावल दिखाया है, जो अम्बिका द्वारा छाज में धान फटकने से सूचित होता है। उस समय दूध को मीठा करने के लिए शर्करा प्रयोग में लाई जाती थी। जैसा कि अम्बिका द्वारा मल्लिका से दूध में शर्करा मिलाकर पी लेने के कथन से स्पष्ट होता है। यह शर्करा चीनी नहीं थी, अपितु खाँड से मिलता-जुलता पदार्थ रहा होगा। शहद को भी दवा और मीठे के रूप में प्रयोग किया जाता था। मल्लिका अपने अंशुक के उड़ जाने का उल्लेख करती है, जिससे स्पष्ट होता है कि नव-यौवनाएँ अंशुक अर्थात् दुपट्टे का प्रयोग करती थीं।

विवाह-सम्बन्धों की दृष्टि से कन्या के सच्चरित्र होने पर उन दिनों भी पर्याप्त बल दिया जाता था। मल्लिका के विवाह की जहाँ बातचीत चल रही थी, वहाँ से इसीलिए निषेध की सूचना भेज दी जाती है, क्योंकि मल्लिका और कालिदास के सम्बन्ध लोकापवाद का कारण बन चुके थे। जहाँ तक तत्कालीन धार्मिक स्थिति का प्रश्न है, नाटककार ने इस दिशा में भी विशेष संकेत नहीं किए हैं। आलोच्य नाटक से इस तथ्य पर अवश्य प्रकाश पड़ता है कि ग्रामों में जगदम्बा के मन्दिर हुआ करते थे। काशी उस समय का मुख्य धार्मिक केन्द्र था और संन्यास लेकर लोग मुख्यतया काशी ही चले जाया करते थे।

राजनीतिक जीवन के विषय में नाटककार ने अपेक्षाकृत कुछ अधिक संकेत किए हैं। उसने उज्जयिनी के गुप्त-सम्राट् का नामोल्लेख तो नहीं किया है, किन्तु यह दिखाया है कि वे काव्य-प्रेमी थे। ग्रामीण लोग राजपुरुषों के दर्शन तक को अपशकुन का निमित्त समझते थे। अम्बिका का यह कथन कि "जब

कभी ये आकृतियाँ अर्थात् राजपुरुष ग्राम-प्रान्तर में दिखाई देती हैं, कोई-न-कोई अनिष्ट हुआ करता है। कभी युद्ध की सूचना आती है, कभी महामारी की"—इसी तथ्य का अभिद्योतन करता है। ये राजपुरुष ग्रामीणों की सुख-सुविधाओं की चिन्ता न करते हुए, उद्दंडता और स्वेच्छाचारिता का व्यवहार करते थे। दन्तुल मल्लिका के घर में बेधड़क घुसा चला आता है, गृह-स्वामिनी से पूछने पर दरवाजा खटखटाने की भी आवश्यकता नहीं समझता। वह अपने को अदंड्य भी समझता है। उसके शब्दों में ग्रामीणों को यह अधिकार ही कहाँ है कि वे राजपुरुषों के अपराध और दंड का निर्णय कर सकें। उसका यह कथन कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं, तथा कालिदास से आहत हरिणशावक को छीनने के लिए खड्ग तक का प्रयोग करने को उद्यत हो जाना इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि राजकर्मचारी ग्रामीणों के साथ मनचाहा दुर्व्यवहार कर सकते थे और उन्हें यह भय नहीं होता था कि इसके लिए हमें दंडित किया जा सकता है।

राजप्रासादों का वातावरण बड़ा कृत्रिमतापूर्ण होता था और उनमें राजकीय भृत्ति पर पलने वाले प्रतिहारियों के टिड्डी दल रहते थे। जब मातुल की सेवा में ही इतने प्रतिहारी नियुक्त थे कि उसे अपने आगे-पीछे प्रतिहारी-ही-प्रतिहारी दिखाई देते थे और वह यह नहीं सोच पाता था कि प्रतिहारी उसके पीछे चल रहे हैं अथवा वह प्रतिहारियों के पीछे चल रहा है, तो नरेशों की सेवा में कितने प्रतिहारी रहते होंगे इसका अनुमान किया जा सकता है। राजकीय अधिकारियों में बहुत से अधिकारी ऐसे भी होते थे, जो कोई कार्य करने के स्थान पर बातों की खाते में अधिक विश्वास रखते थे। अनुनासिक और अनुस्वार के वार्तालाप से यह तथ्य भलीभांति उभर उठता है, कुछ भी करने के स्थान पर निरर्थक प्रलाप में अनुरक्त दृष्टिगोचर होते हैं—

अनुस्वार—ये वस्त्र ?

अनुनासिक—वस्त्र अभी गीले हैं इसलिए इन्हें नहीं हटाना चाहिए।

अनुस्वार—क्यों ?

अनुनासिक—शास्त्रीय प्रमाण ऐसा है।

अनुस्वार—कौन-सा प्रमाण है ?

अनुनासिक—यह तो मुझे स्मरण नहीं।

अनुस्वार—यह स्मरण है कि ऐसा प्रमाण है ?

अनुनासिक—हाँ ।

अनुस्वार—तो ?

अनुनासिक—तो संदिग्ध विषय है ।

अनुस्वार—हाँ, तब तो अवश्य संदिग्ध विषय है ।

अनुनासिक—तो संदिग्ध विषय होने से वस्त्रों को भी रहने दिया जाय ।

अनुस्वार—अच्छी बात है, वस्त्रों को भी रहने दिया जाय ।

रजधानियों या कहिए नगरों का वातावरण बड़ा विकासमय था । वहाँ रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य विलास-भूमियाँ होती थीं । ग्रामीण-जीवन से निकलकर उज्जयिनी पहुँचे कालिदास इन विलासों की चकाचौंध में फँस कर ही मल्लिका को भुला बैठते हैं । रंगशालाओं में नगर-कन्याओं के लिए नृत्य और संगीत के अध्ययन की भी व्यवस्था होती थी । रंगिणी और संगिनी एक-दूसरी का जो परिचय देती हैं, उनसे यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो उठता है—

संगिणी—ये हैं शुभश्री रंगिणी । उज्जयिनी के नाट्य-केन्द्र में नृत्य का अभ्यास करती हैं । नाटक लिखने में भी आपकी रुचि है ।

रंगिणी—और ये संगिनी—उसी केन्द्र में मृदंग और वीणा-वादन सीखती हैं । बहुत सुन्दर प्रणय गीत लिखती हैं ।

इन रंगशालाओं में कालिदास के नाटकों का भी अभिनय किया जाता था ।

राजनीतिक जीवन के विषय में यह संकेत भी मिलते हैं कि उस काल का राजनीतिक वातावरण अशान्त था और यह भय बना रहता था कि कब विद्रोही शक्तियाँ सिर उठाने लगें । प्रियंगुमंजरी का यह कथन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है—"काश्मीर की राजनीति इतनी अस्थिर है कि हमारा एक-एक दिन वहां से दूर रहना कई-कई समस्याओं को जन्म दे सकता है ।···एक प्रदेश का शासन बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है और हम पर तो और भी बड़ा उत्तर-दायित्व है क्योंकि काश्मीर की स्थिति इस समय बहुत संकटपूर्ण है । इस अराजक स्थिति का ही यह परिणाम निकलता है कि जैसे ही सम्राट् का निधन

होता है, काश्मीर में विद्रोही शक्तियां इतनी उभर उठती हैं कि कालिदास को राज्य त्यागकर पलायन करना पड़ता है।

नाटककार ने कुछ अन्य माध्यमों से भी देशकाल-योजना में प्राचीनता का पुट देने की चेष्टा की है—जैसे उसने माप में अंगुलों का प्रयोग दिखाया है। अनुनासिक और अनुस्वार आसन को सात अंगुल दक्षिण की ओर हटाने की योजना बनाते हैं। इसी प्रकार कृतियों की रचना भोजपत्रों पर दिखाई गयी है, क्योंकि कागज का आविष्कार तो वहुत अर्वाचीन काल की देन है। कुछ शब्दों द्वारा भी प्राचीन वातावरण का निर्माण हुआ है जैसे तल्प, आसन (तख्त के अर्थ में), उल्मुक (मशाल), आस्तरण (बिछौना), उपवेशगृह (निवास-स्थान) आदि। पात्रों के नामों में मल्लिका, रंगिणी, संगिनी, प्रियंगुमंजरी, विलोम आदि नाम भी ऐसे हैं, जो प्राचीनता का बोध कराते हैं।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' में देशकाल अथवा वातावरण की योजना की ओर नाटककार ने विशेष जागरूकता तो प्रदर्शित नहीं की है. तथापि भवनों के निर्माण, उनकी सज्जा, खान-पान के बरतन, पात्रों के नाम, नागरिक जीवन में विलासिता की प्रधानता, काव्य और नाटकों का विशेष प्रचार आदि ऐसे तथ्यों की योजना की है, जिनसे गुप्तकालीन समाज की दशा पर अंशतया प्रकाश अवश्य पड़ता है। उसमें देशकाल-विरोधी सामग्री का प्रायः अभाव ही है।

प्रश्न ७—'आषाढ़ का एक दिन' की संवाद-योजना पर आलोचनात्मक प्रकाश डालिए।

उत्तर—नाटक के मूल तत्त्वों में कथोपकथनों अथवा संवाद-योजना का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि कथोपकथन उपन्यास और कहानी के भी आवश्यक तत्त्व स्वीकार किए जाते हैं, तथापि नाटकों के तो कथोपकथन प्राण ही होते हैं। कारण यह है कि उपन्यास और कहानियों में उनके लेखक पात्रों और घटनाओं आदि के विषय में वहुत-सी आवश्यक सूचनाएँ अपनी ओर से भी दे सकते हैं, किन्तु नाटककार को यह सुविधा उपलब्ध नहीं होती। उसे तो सभी प्रकार के तथ्यों और घटनाओं की सूचना देने के लिए नाटक के पात्रों का ही मुखापेक्षी रहना पड़ता है। वह परदे के पीछे रहता हुआ सभी बातें पात्रों के कथोपकथनों द्वारा ही व्यक्त कराता है। इसीलिए कथोपकथन नाटक

के मूल तत्त्व स्वीकार किए जाते हैं। कथोपकथनों के आपेक्षित गुण निम्नांकित हैं :—

(क) वे संक्षिप्त और सजीव हों।
(ख) वे पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक हों।
(ग) उनसे घटनाओं के विकास में योग मिले।
(घ) वे पात्रों की मन:स्थिति और सामाजिक दशा के अनुकूल हों।
(ङ) उनमें विदग्धता और व्यंग्य का पुट हो।
(च) उनमें स्वगत कथनों की अधिकता न हो।

इन निकषों पर 'आषाढ़ का एक दिन' के कथोपकथनों को परखने पर स्पष्ट होता है कि वे नाटकीय दृष्टि से सफल ही हैं। इन दृष्टियों से आलोच्य नाटक के कथोपकथनों पर क्रमश: आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

'आषाढ़ का एक दिन' के अधिकांश कथोपकथन संक्षिप्त और सजीव हैं। उदाहरण के लिए निक्षेप और मातुल का यह वार्तालाप अवलोकनीय है—

"निक्षेप — मातुल, आप अभी यहीं हैं, और आचार्य आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मातुल—और तुम यहाँ क्या कर रहे हो? मैंने तुमसे नहीं कहा था कि जब तक मैं लौट कर न आऊँ, तुम आचार्य के पास रहना?

निक्षेप — परन्तु यह भी तो कहा था कि आचार्य विश्राम कर चुकें तो तुरन्त आपको सूचना दूं।

मातुल — यह भी कहा था। किन्तु वह भी तो कहा था। यह कहा तुम्हारी समझ में आ गया, वह नहीं आया?

निक्षेप — किन्तु मातुल······।

मातुल — मैं मूर्ख नहीं तो निश्चित रूप से तुम मूर्ख हो।······आचार्य ने क्या कहा है?

निक्षेप — उन्होंने कहा है कि वे आपके साथ इस सारे ग्राम-प्रदेश में घूमना चाहते हैं।"

संक्षिप्ति की दृष्टि से अनुनासिक और अनुस्वार के कथोपकथन विशेषतया अवलोकनीय हैं :—

"अनुस्वार — मेरे विचार में कुछ भी शेष नहीं।

अनुनासिक — नहीं अभी शेष है।

अनुस्वार—क्या ?

अनुनासिक—यह चौकी यहाँ रास्ते में पड़ी है। यह यहाँ से हटा लेनी चाहिए।

अनुस्वार—मैं इससे सहमत हूँ।

अनुनासिक—तो ?

अनुस्वार—तो ?

अनुनासिक—तो इसे हटा देना चाहिए।

अनुस्वार—हाँ, अवश्य हटा देना चाहिए।

अनुनासिक—तो ?

अनुस्वार—तो ?

अनुनासिक—हटा दो।

अनुस्वार—मैं ?

अनुनासिक—हाँ।

अनुस्वार—तुम नहीं ?

अनुनासिक—नहीं।

अनुस्वार—क्यों ?

अनुस्वार—क्यों का कोई उत्तर नहीं।"

पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायता पहुँचाने वाले कथोपकथनों में मल्लिका और अम्बिका, मल्लिका और कालिदास, मल्लिका और विलोम, कालिदास और विलोम, मल्लिका और प्रियंगुमंजरी के पारस्परिक कथोपकथन अवलोकनीय हैं। विस्तार-भय से हम कुछ ही पात्रों के कुछ ऐसे संवाद दे रहे हैं जिनसे उनकी चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन होता है। अम्बिका और मल्लिका के निम्नांकित वार्तालाप से अम्बिका की कालिदास सम्बन्धी वितृष्णा और मल्लिका की तत्सम्बन्धी अनुराग-भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

मल्लिका—क्यों माँ ? क्यों तुम्हें इतना पूर्वाग्रह है ? क्यों तुम उनके सम्बन्ध में उदारतापूर्वक नहीं सोच पातीं ?

अम्बिका—मेरी वह अवस्था वीत चुकी है, जब यथार्थ से आँखें मूंद कर जिया जाता है।

मल्लिका—और तुम्हारी यथार्थ दृष्टि केवल दोष ही देखती है ?

अम्बिका—जहाँ दोष है, वहाँ अवश्य वह दोष ही देखती है ?

मल्लिका—उनमें तुम्हें क्या दोष दिखाई देता है ?

अम्बिका—वह व्यक्ति आत्मसीमित है। संसार में अपने अतिरिक्त उसे और किसी से मोह नहीं है।"

इसी प्रकार मल्लिका और कालिदास का निम्नांकित वार्तालाप अवलोकनीय है जिससे मल्लिका के चरित्र के कालिदास-सम्बन्धी निश्छल-प्रेम और कालिदास की तत्सम्बन्धी अपेक्षाकृत-उदासीनता पर प्रकाश पड़ता है—

"मल्लिका—फिर उदास हो गये ? देखो तुम मुझे वचन दे चुके हो।

कालिदास—तुम एक बार फिर सोचो मल्लिका! प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का नहीं है। उससे कहीं बड़ा प्रश्न मेरे सामने है।

मल्लिका—और वह प्रश्न मैं हूँ।......हूँ न ? यहाँ बैठो। तुम मुझे जानते हो। हो न ? तुम समझते हो कि तुम इस अवसर को ठुकरा कर यहां रह जाओगे तो मुझे सुख होगा ? (उमड़ते हुए आँसुओं को दबाने के लिए आँखें झपकाती है और ऊपर की ओर देखने लगती है) मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने पर मेरे अन्तर को एक रिक्तता छा लेगी, और बाहर भी संभवतः बहुत सूना प्रतीत होगा। फिर मैं अपने साथ छल नहीं कर रही।

(मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई उसकी ओर देखती है)

मैं हृदय से कहती हूँ कि तुम्हें जाना चाहिए।

कालिदास—मैं चाहता हूँ कि तुम इस समय अपनी आँखें देख सकतीं।

मल्लिका—मेरी आँखें इसलिए गीली हैं कि तुम मेरी बात नहीं समझते। × × × यहाँ ग्राम-प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा। × × × इसीलिए कहती हूँ कि तुम जाओ।

कालिदास—तुम मुझे पूरी तरह नहीं समझ रही हो मल्लिका! प्रश्न तुम्हारे घेरने का भी नहीं है। मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं। यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।"

कथानक का विकास करने की दृष्टि से भी आलोच्य नाटक के कई प्रसंगों में कथोपकथनों की सफल योजना की गयी है। मल्लिका और दन्तुल के वार्ता-

लाप से नाटककार इस तथ्य की सूचना प्रदान कर देता है कि कालिदास को उज्जयिनी में राजकवि के रूप में समादृत करने के उद्देश्य से आचार्य वररुचि उसे राजधानी को लिवा जाने के लिए ग्राम-प्रान्तर में आए हुए हैं—

"मल्लिका—ठहरो राजपुरुष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए अधिकार का प्रश्न है, उनके लिए संवेदना का। कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।

दन्तुल—कालिदास? तुम्हारा अभिप्राय यह है कि मैं जिनसे हरिणशावक के लिए तर्क कर रहा था, वे कवि कालिदास हैं?

मल्लिका—हाँ-हाँ! किन्तु तुम कैसे जानते हो कि कालिदास कवि हैं?

दन्तुल—कैसे जानता हूँ? उज्जयिनी की राज्य-सभा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति ऋतुसंहार के लेखक कवि कालिदास को जानता है।

मल्लिका—उज्जयिनी की राज्य-सभा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति उन्हें जानता है?

दन्तुल—सम्राट् ने स्वयं ऋतुसंहार पढ़ा और उसकी प्रशंसा की है। इसलिए आज उज्जयिनी का राज्य ऋतुसंहार के लेखक का सम्मान करना और उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है। आचार्य वररुचि आज इसी उद्देश्य से यहाँ आये हैं।"

निक्षेप, मल्लिका और अम्बिका के कथोपकथनों के माध्यम से नाटककार ने इस तथ्य का उद्घाटन कराया है कि कालिदास राजकवि बनना नहीं चाहते अतः जगदम्बा के मन्दिर में जा छिपे हैं और मात्र मल्लिका ही उनके हठ को छुड़ा सकती है—

'निक्षेप—मातुल का तीसरा नेत्र हर समय खुला रहता है।

मल्लिका—परन्तु कालिदास इस समय हैं कहाँ?

निक्षेप—कालिदास इस समय जगदम्बा के मन्दिर में हैं।

मल्लिका—आपने उन्हें देखा है?

निक्षेप—देखा है।

मल्लिका—परन्तु आपने मातुल से नहीं कहा?

निक्षेप—मैं नहीं चाहता था कि मातुल इस समय वहाँ जायें।

मल्लिका—क्यों? क्या आप भी नहीं चाहते कि कालिदास?

निक्षेप—मैं चाहता हूँ कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य जाएँ। इसीलिए मैंने मातुल का इस समय उनके पास जाना उचित नहीं समझा × × ×।"

अम्बिका—कैसी विचक्षणता है ?

निक्षेप—विचक्षणता ?

अम्बिका—विचक्षणता ही तो है।

निक्षेप—इसमें क्या विचक्षणता है अम्बिका ?

अम्बिका—राज्य कवि का सम्मान करना चाहता है। कवि सम्मान के प्रति उदासीन जगदम्बा के मन्दिर में साधना-निरत है। राज्य के प्रतिनिधि मन्दिर में जाकर कवि की अभ्यर्थना करते हैं। कवि धीरे-धीरे आँखें खोलता है।...इतना बड़ा नाटक खेलना विचक्षणता नहीं है ?

निक्षेप—कालिदास नाटक नहीं खेल रहे अम्बिका ! मुझे विश्वास है कि उन्हें राजकीय सम्मान का मोह नहीं है। वे सचमुच इस पर्वत-भूमि को छोड़कर नहीं जाना चाहते।

अम्बिका—नहीं चाहता ! हूँ !

निक्षेप—मातुल का या किसी का भी आग्रह उनका हठ नहीं छुड़ा सकता। (मल्लिका को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखता है। मल्लिका की आँखें झुक जाती हैं) केवल एक व्यक्ति है, जिसके अनुरोध से सम्भव है, वे यह हठ छोड़ दें।"

इसी प्रकार विलोम के कथनों से उज्जयिनी के विलासमय जीवन की, निक्षेप और मल्लिका के वार्तालाप के माध्यम से इस तथ्य की कि कालिदास ने नरेश-दुहिता से विवाह कर लिया है, अनुनासिक और अनुस्वार तथा मल्लिका के कथोपकथनों से इस घटना की कि कालिदास अब मातृगुप्त के नाम से काश्मीर के शासक होने जा रहे हैं, तथा मातुल और मल्लिका के वार्तालाप के माध्यम से नाटककार ने इस घटना का उद्घाटन किया है कि कालिदास काश्मीर का शासन त्यागकर कदाचित् संन्यासी हो गये हैं।

कथोपकथनों का पात्रों की सामाजिक स्थिति और मनःस्थिति के अनुकूल होना इस दृष्टि से अपेक्षित माना जाता है कि यदि कोई मौलवी धारा-प्रवाह संस्कृत और पंडित धारा-प्रवाह अरबी-फारसी बोलने लगे तो वह अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसी प्रकार यदि घर का नौकर तत्समबहुला शुद्ध हिन्दी बोलने लगे तो कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होगा। इसी प्रकार दुःखद परिस्थितियों

में पात्रों से उल्लासमय कथोपकथन कहलवाना और उल्लासमयी परिस्थिति में भी पात्रों के मुख से दुःख में डूबे उद्गार व्यक्त कराना अनुचित होता है। इस दृष्टि से जब हम आलोच्य नाटक के कथोपकथनों पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट होता है कि वे पात्रों का मनःस्थिति के अनुकूल हैं। वे पात्रों की सामाजिक स्थिति के विशेष अनुकूल तो नहीं हैं, किन्तु उसके प्रतिकूल भी नहीं हैं। पात्रों की मनःस्थिति की अनुकूलता की दृष्टि से नाटक के प्रथम अंक में अम्बिका और मल्लिका का वार्तालाप बड़ा सुष्ठु बन पड़ा है। मल्लिका स्वप्रेमी कालिदास के साथ वर्षा-विहार करके आई है जिसकी सुखद-स्मृति से अब भी उसके मन-प्राण खिल जाते हैं, उसके कंठ से फूटने वाले उद्गारों में कवित्व का समावेश है। इसके विपरीत अम्बिका मल्लिका से कुढ़ी बैठी है, क्योंकि उसे वही आशंका थी जो मल्लिका करके आई है। अतः वह मल्लिका के कथनों की पूर्ण उपेक्षा करना चाहती है—उसकी बातों के हाँ या ना में संक्षिप्त उत्तर देकर, उसकी बातों की ओर ध्यान न देकर अम्बिका यह सूचित करना चाहती है कि वह स्वपुत्री के प्रति बड़ी रुष्ट है :—

"मल्लिका—माँ आज के वे क्षण मैं कभी भूल नहीं सकती। सौंदर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पाई कि क्यों कोई पर्वत-शिखरों को सहलाती हुई मेघ-मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा काश के बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है।···क्या बात है माँ ? इस तरह चुप क्यों हो ?

अम्बिका—देख रही हो मैं काम कर रही हूँ।

मल्लिका—काम तो तुम हर समय करती हो माँ ! परन्तु हर समय इस तरह चुप नहीं रहतीं। मैं तुम्हें काम नहीं करने दूंगी। मुझसे बात करो।

अम्बिका—क्या बात करूं ?

मल्लिका—कुछ भी कहो। मुझे डाँटो कि भीगकर क्यों आई हूँ। या कहो कि तुम थक गई हो, इसलिए शेष धान मैं फटक दूं, या कहो कि तुम घर में अकेली थीं, इसलिए अच्छा नहीं लग रहा था।

अम्बिका—मुझे सब अच्छा लगता है। और मैं घर में अकेली कब होती हूँ ? तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती ?"

इस दृष्टि से विलोम, कालिदास और मल्लिका का वार्तालाप भी अवलोकनीय है जो प्रत्येक के मनोगत भावों की सुस्पष्ट झाँकी प्रस्तुत करता है—उसमें मल्लिका के कालिदास सम्बन्धी प्रेम, विलोम सम्बन्धी घृणा तथा कालिदास और विलोम की पारस्परिक ईर्ष्या-भावना पूर्णतया उभर उठी है। पात्रों की मनःस्थिति में आने वाले परिवर्तन की ओर कोष्ठकों में दी गई नाटककार की संक्षिप्त टिप्पणियों ने उन्हें और भी अधिक सुस्पष्ट कर दिया है।

"कालिदास—अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी विलोम।

(विलोम को देखते ही मल्लिका की आँखों में क्रोध और वितृष्णा का भाव उमड़ आता है और वह झरोखे की ओर चली जाती है। कालिदास विलोम के निकट आ जाता है ?)

मैं जानता हूँ कि तुम कहाँ, किस समय और क्यों मेरे साक्षात्कार के लिए उत्सुक होते हो।···कहो आजकल किसी नये छन्द का अभ्यास कर रहे हो ?

विलोम—छन्दों का अभ्यास मेरी वृत्ति नहीं है।

कालिदास—मैं जानता हूँ कि तुम्हारी वृत्ति दूसरी है।

(क्षण-भर उसकी आँखों में देखता रहता है)

इस वृत्ति ने संभवतः छन्दों का अभ्यास सर्वथा छुड़ा दिया है।

विलोम—आज निस्सन्देह तुम छन्दों के अभ्यास पर गर्व कर सकते हो। × × × सुना है राजधानी से निमंत्रण आया है।

कालिदास—सुना मैंने भी है। तुम्हें दुःख हुआ ?

विलोम—दुःख ? हाँ, हाँ, बहुत। एक मित्र के बिछुड़ने का किसे दुःख नहीं होता ?···कल ब्राह्म मुहूर्त में ही चले जाओगे ?

कालिदास—यह मैं नहीं जानता।

विलोम—मैं जानता हूँ। आचार्य कल ब्राह्म मुहूर्त में ही लौट जाना चाहते हैं। राजधानी के वैभव में जाकर ग्राम-प्रान्तर को भूल तो नहीं जाओगे ?

(एक दृष्टि मल्लिका पर डालकर फिर उसकी ओर देखता है)

सुना है, वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं···रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य विलास भूमियाँ।

(मल्लिका के मुख पर बहुत कठोरता आ जाती है)

मल्लिका—आर्य विलोम, यह समय और स्थान निस्सन्देह इन बातों के लिए नहीं है। मैं इस समय आपको यहाँ देखने की आशा नहीं कर रही थी।

विलोम—मैं जानता हूँ कि तुम इस समय मुझे यहाँ देखकर प्रसन्न नहीं हो। परन्तु मैं अम्बिका से मिलने आया था। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई। यह कोई ऐसी अप्रत्याशित बात नहीं है।

कालिदास—विलोम का कुछ भी करना अप्रत्याशित नहीं है। हाँ, कई कुछ न करना अप्रत्याशित हो सकता है।

विलोम—यह वास्तव में प्रसन्नता का विषय है कालिदास, कि हम दोनों एक-दूसरे को इतनी अच्छी तरह समझते हैं। निस्सन्देह मेरी प्रकृति में ऐसा कुछ नहीं है, जो तुमसे छिपा हो।

(क्षण-भर कालिदास की आँखों में देखता रहता है)

विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास...और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।"

नाटक के कथोपकथनों में विदग्धता और व्यंग्यात्मकता का पुट होना आवश्यक है, क्योंकि इनके माध्यम से जहाँ कोई पात्र किसी दूसरे पात्र के अन्तर्मन पर प्रहार करता है, वहाँ हमें वक्ता की विदग्धता और श्रोता (जिससे वह बात कही जा रही है) की चारित्रिक दुर्बलता का परिचय मिल जाता है। 'आषाढ़ का एक दिन' में ऐसे चुटीले कथन स्थल-स्थल पर मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ जब मल्लिका स्वमाता से यह कहती है कि तुम मुझे इस बात के लिए डाँटो कि तुम घर में अकेली थीं इसलिए तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा था, तो वह यह कहकर कि—

"और मैं घर में दुकेली कब होती हूँ ? तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती ?"

मल्लिका के विषय में यह रहस्योद्घाटन कर देती है कि वह अपने प्रेमी के खयालों में खोई रहती है—जिससे वह शारीरिक दृष्टि से घर में रहते हुए भी मानसिक दृष्टि से कहीं और ही होती है। इस प्रकार के कतिपय और भी व्यंग्यात्मक कथन अवलोकनीय हैं—

कालिदास के यह पूछने पर—

"कहो आजकल किसी नये छन्द का अभ्यास कर रहे हो ?" विलोम कहता

है—"छन्दों का अभ्यास मेरी वृत्ति नहीं है।" कालिदास को उस पर व्यंग्य कसने का अवसर मिल जाता है और वे कह उठते हैं—

"मैं जानता हूँ कि तुम्हारी वृत्ति दूसरी है। अर्थात् आजकल तुम छन्द-रचना के लिए इसलिए समय नहीं निकाल पाते क्योंकि सम्प्रति छिद्रान्वेषण में लगे रहते हो—तुम यह देखते-फिरते हो कि मैं और मल्लिका कहाँ क्या कर रहे हैं और उस विषय में ग्राम में अपवाद फैलाते रहते हो।"

विस्तारभय से हम विलोम और अम्बिका के ही कुछ अन्य व्यंग्यात्मक कथनों को देकर संदर्भगत तथ्य की इतिश्री कर रहे हैं। विलोम इस बात से मन-ही-मन प्रसन्न है कि कालिदास द्वारा ग्राम-प्रान्तर में आने पर भी मल्लिका से मिलने न आना उस प्रेम-गर्विता के लिए जो मुझसे घृणा करती है बड़ा उचित दंड है, किन्तु वह इस तथ्य को इस उपहास द्वारा व्यक्त करता है—

"विलोम—इस प्रकार क्षुब्ध क्यों हो अम्बिका ? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे सौभाग्य पर तुमसे स्पर्धा कर रहा है।

(अर्थपूर्ण दृष्टि से मल्लिका की ओर देखता है। मल्लिका आँखें बचाकर दूसरी ओर हट जाती है)

राजकीय पगधूलि घर में पड़ती है तो लोग गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर हर किसी के जीवन में कहाँ आता है।"

अम्बिका उसके कथन के मूल अभिप्राय को भली-भाँति समझती है किन्तु हत्प्रभ नहीं होती अपितु स्वयं भी अपने कथन में विदग्धता और व्यंग्य का पुट देती हुई कह उठती है—

"अम्बिका—यह अवसर देखने के लिए ही तो मैंने आज तक का जीवन जिया है। इतना बड़ा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है।

(सहसा उठ खड़ी होती है)

चलो मैं स्वयं चलकर ग्राम-भर में इस सौभाग्य की घोषणा करूँगी। हमारे वर्षों के अभाव और दुःख कितना बड़ा फल लाये हैं कि राज्य के स्थपित हमारे घर की भित्तियों का परिसंस्कार कर देंगे।"

नाटक के कथोपकथनों की अन्तिम विशेषता यह स्वीकार की जाती है कि उनमें स्वगत कथनों का बाहुल्य न हो और वे दीर्घ भी न हों। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक के कथोपकथनों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि इसमें स्वगत-कथनों की अधिकता नहीं है, और मात्र मल्लिका के संदर्भ में ही

दो-एक स्थलों पर स्वगत-कथनों की योजना की गई है। प्रथम अंक में मल्लिका ऋतुसंहार का श्लोक गुनगुनाती हुई जब भीगे वस्त्र बदलने जाती है तो वह उसका एक प्रकार से स्वगत कथन ही है, क्योंकि वह उसे अम्बिका को सुनाने की दृष्टि से नहीं उच्चारित करती। वास्तविक स्वगत कथन की योजना तृतीय अंक में की गई है। मातुल से यह समाचार पाकर कि कालिदास ने काश्मीर का राज्य त्याग दिया है और वह सम्भवतः संन्यासी हो गया है, मल्लिका अधीर होकर निम्नांकित स्वगत-कथन में निमग्न हो जाती है—

"मल्लिका—नहीं, तुम काशी नहीं गए। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था।...मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार सँभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं, यद्यपि प्रत्यक्षतः तुमने वे शुभकामनाएँ ग्रहण नहीं कीं।

(ग्रन्थ को हाथों में लिए हुए दोनों बाहें सीधी कर लेती है और अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है)

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा वर्तमान रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।

(ग्रन्थ को घुटनों पर रख लेती है)

और आज तुम मेरे जीवन को इस प्रकार सर्वथा निरर्थक कर दोगे?

(ग्रन्थ को आसन पर रखकर उद्विग्न भाव से उसकी ओर देखती है)

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती, तुम जीवन को मेरी दृष्टि से क्यों नहीं देखते? जानते हो मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं? मैंने क्या-क्या देखा है? क्या से क्या हुई हूँ?

(तीव्र गति से अन्दर के द्वार के पास जाकर किवाड़ खोल देती है। और पालने की ओर संकेत करती है)

इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो अब धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर मैं अब इसकी सेवा-सुश्रूषा करती हूँ। यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम

ये, वह कोई नहीं हो सका और अभाव के कोष्ठ में न जाने कौन-कौन आकृतियाँ हैं ? जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं नाम नहीं केवल विशेषण हूँ ?"

मल्लिका का यह स्वगत अभी और भी लम्बा है किन्तु इसकी उल्लेखनीय कलात्मकता यह है कि स्वगत-कथन न लगकर मल्लिका और कालिदास का ऐसा वार्तालाप प्रतीत होता है, जिसमें मल्लिका उनको अपने शिकवे-शिकायतें सुना रही है। इस कलात्मकता की उपलब्धि नाटककार द्वारा मल्लिका की आंगिक चेष्टाओं के निर्देश करते जाने से हुई है, जिसमें उसने कालिदास के ग्रंथ को कालिदास का स्थानापन्न बना दिया है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि कथोपकथन या संवाद-योजना की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' एक सफल नाट्य-कृत्ति है क्योंकि इसके कथोपकथन संक्षिप्त और सजीव हैं, वे पात्रों की मनः-स्थिति के अनुकूल और व्यंग्यात्मक हैं, उनमें पात्रों के चरित्रोद्घाटन तथा घटनाओं के विकास में योग मिलता है, तथा उनमें उबा देने वाले स्वगत-कथनों की योजना नहीं की गई है।

प्रश्न ८—'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा-शैली का विवेचन कीजिये।

उत्तर—रम्य-आकर्षक-भाषा-शैली किसी भी कृति की सजीवता और सरसता को अभिवृद्ध करने का प्रमुख माध्यम होती है। जिन कृत्तियों की भाषा में प्रवाह होता है, वह पाँचों की मनोदशा और उनकी स्थिति के अनुकूल होती है, जो स्वाभाविक अलंकारों से अलंकृत और मुहावरों एवं सूक्तियों से समृद्ध होती है, वह पाठकों को प्रभावित करती हुई, उन्हें कृति की ओर सहजतया ही आकृष्ट कर लेती है। भाषा-शैली के संदर्भ में उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द और नाटक-सम्राट् जयशंकर प्रसाद दो सर्वथा विरोधी ध्रुवों पर स्थित मिलते हैं। मुंशीजी का आग्रह रहता था कि विविध पात्रों की भाषा-शैली भी उनके प्रदेश, जाति, व्यवसाय आदि की दृष्टि से बदलती रहनी चाहिए, जबकि प्रसाद जी ने सभी पात्रों से प्रायः संस्कृत बहुला क्लिष्ट भाषा में भावाभिव्यक्त कराये हैं। प्रसादजी का अभिमत था—"भिन्न-भिन्न देश और वर्ग वालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग कराने से नाटक को भाषाओं का अजायबघर बनाना पड़ता है, जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है, और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असम्भव है। इसके अतिरिक्त इस विषय की अधिक आवश्यकता भी नहीं दिखाई पड़ती।

न जाने कितने विदेशियों को हम अपनी ही तरह हिन्दी बोलते-समझते पाते हैं। जहाँ अपनी भावुकता और कल्पना के बल पर हम इतने अभिनय को अभिनय और नकल न समझ कर सच्ची घटना मानते हैं और उसी के साथ हँसते-रोते, सुख-दुःख प्रकट करते हैं, वहाँ ऐसी बात यथार्थ है अथवा अयथार्थ, इसके विचार का अवसर कहाँ रह सकता है। जब हम सिल्युकस और कार्नेलिया को अपने सम्मुख खड़ा देखते हैं, तब वे यथार्थ मालूम पड़ते हैं और जब वे परिष्कृत भाषा का प्रयोग करने लगते हैं, तब अयथार्थ हो जाते हैं, यह भी कोई तर्क है ? अतएव भाषा-विविधता के लिए आग्रह करना ही हितकर है। स्वरूप भिन्नत्व केवल वेषभूषा में ही व्यक्त कर देना चाहिए।" श्री मोहन राकेश ने भी प्रसादजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का ही अनुगमन किया है, उनके विभिन्न पात्रों की भाषा में कोई अन्तर,नहीं है। हाँ, प्रसाद जी ने तत्सम बहुला गंभीर हिन्दी का प्रयोग किया है, जबकि मोहन राकेश की भाषा बड़ी सरल है और उसमें थोड़े-से ही कम प्रचलित तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा-शैली की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित मानी जाती हैं—

१—वह प्रवाहमयी हो।

२—वह सरल एवं सुबोध हो।

३—वह पात्रों की मनोदशा के अनुकूल एवं अभीष्ट भाव की अभिव्यक्ति में सूक्ष्म हो।

४—उसमें व्यंग्यात्मकता और अलंकारों का स्वाभाविक पुट हो।

५—उसमें कहावत और मुहावरों का प्रयोग किया गया हो।

उपर्युक्त कसौटियों पर आलोच्य-नाटक की भाषा सफल ही सिद्ध होती है।

प्रवाहमयता—भाषा के प्रवाहमयी होने का अभिप्राय यह है कि जैसे नदी का प्रवाह सहज गति से आगे को बढ़ता रहता है, उसी प्रकार भाषा में भावों का प्रवाह सहज गति से प्रवहमान हो। प्रवाहमयता की दृष्टि से आलोच्य कृति का अग्रलिखित अवतरण अवलोकनीय है जिसमें कालिदास द्वारा विवशभाव से राजसी जीवन व्यतीत करने की छटपटाहट के मनोभाव बड़ी सहज गति से उद्घाटित होते जाते हैं—"परन्तु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता। मैंने बार-बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि न्यूनता उस वातावरण में नहीं मुझ में है। मैं अपने को बदल लूँ तो सुखी हो सकता हूँ। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका और न सुखी हो सका।

अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश-भर में पहुँच गयीं, परन्तु मैं सुखी नहीं हुआ। किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता था कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह से उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है और जिस विशाल क्षेत्र में मुझे रहना चाहिए था उससे हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली हुई क्षितिज-रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभव मुझे चुभता कि मैं उस विशाल से दूर हो गया हूँ। मैं अपने को सहारा देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा, परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और प्रेरित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे-धीरे खंडित होता गया, होता गया। और एक दिन··· एक दिन मैंने अनुभव किया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ, मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उसका उस विशाल से कुछ सम्बन्ध था।"

सरलता और सुबोधता—सरलता एवं सुबोधता की दृष्टि से कहना होगा कि नाटककार ने अधिकांशतया ऐसी सरल एवं सुबोध भाषा शैली का प्रयोग किया है कि उससे किन्हीं अंशों में कृति की कलात्मकता को क्षति तक पहुँची है। 'आषाढ का एक दिन' की भाषा शैली बहुत से प्रसंगों में साहित्यिक के स्थान पर जन-भाषा के अधिक निकट है। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण के रेखांकित शब्द देखिए—

मल्लिका—माँ, आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है। आगे भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती।

(ड्योढ़ी के बाहर से मातुल के शब्द सुनाई देने लगते हैं)

मातुल—अम्बिका। अम्बिका······घर में हो कि नहीं ?

(अम्बिका और मल्लिका ड्योढ़ी की ओर देखने लगती हैं

मातुल अस्त-व्यस्त-सा आता है)

मातुल—हो, हो, हो, घर में ही हो। मैं आज सारे ग्राम में घोषणा करने जा रहा हूँ कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मल्लिका—क्या हुआ आर्य मातुल ?

मातुल—मैंने इसे पाला-पोसा, बड़ा किया। क्या इस दिन के लिए ? कि यह कुलद्रोही बने ?

हाँ 'बीता', 'पाला-पोसा' मूंदा, औटा आदि तद्भव शब्दों का नाटककार ने कम ही प्रयोग किया है। जबकि अधिकतया सरल-सुबोध और प्रवाहमयी भाषा-शैली का आश्रय लिया है, तथा वाक्य भी प्रायः छोटे-छोटे हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित अवतरण अवलोकनीय है।

"मातुल—नहीं ! उज्जयिनी नहीं गया। वहाँ के लोगों का तो विश्वास है कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है। परन्तु मुझे विश्वास नहीं आता। उसका राजधानी में इतना मान है—यदि काश्मीर में रहना संभव नहीं था तो उसे सीधे राजधानी में चले जाना चाहिये था। परन्तु असंभव भी नहीं है। एक राजनीतिक जीवन दूसरे कालिदास। मैं आज तक इन दोनों में से किसी एक की धुरी को नहीं पहचान सका। मैं तो समझता हूँ कि जो कुछ मैं समझ पाता हूँ सत्य सदा उसके विपरीत होता है। और मैं जब उस विपरीत तक पहुंचने लगता हूँ तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं जो कुछ समझ पाता हूँ, वह सदा मिथ्या होता है। इससे अब तुम यह निष्कर्ष निकाल लो कि क्या सत्य हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया है या नहीं लिया। मैं तो यही समझता हूँ कि उसने संन्यास नहीं लिया, इसलिये सत्य यही होना चाहिये कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है।"

वातावरण में प्राचीनता का अभिनिवेश करने के लिये नाटककार ने संस्कृत के सम्प्रति अपेक्षाकृत कम प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे—आस्तरण, उल्मुक, तल्प, शिखान्यस्तहस्त, ससाध्वस, सोत्प्रास आदि किन्तु ऐसे शब्दों का अधिकतर रंगसंकेतों में ही प्रयोग किया गया है, वे पात्रों के कथोपकथनों के अंग नहीं हैं।

पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल एवं अभीष्ट भावाभिव्यक्ति में सक्षमता की दृष्टि से भी आलोच्य नाटक की भाषा-शैली सफल है। उसमें कहीं भावातिरेकमयी भाषाशैली का विनियोजन किया गया है तो कहीं पात्र की मनोदशा के अनुकूल ही तार्किकता की प्रधानता है। मल्लिका जब अपने प्रेमी कालिदास के साहचर्य में वर्षा-विहार करके लौटती है तो उसकी मनोदशा अत्यधिक

उल्लसित-उन्मादित है। उसके कंठ से शब्द नहीं निकलते अपितु कविता ही फूटती जान पड़ती है। मल्लिका की मनोदशा के अनुकूल ही नाटककार ने कवित्वमयी भाषा-शैली का प्रयोग किया है—

"वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत। नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूं और आँखें मूंद लूं। मेरा तो शरीर भी निचुड़ रहा है माँ। कितना पानी इन वस्त्रों ने पिया है!...ओह! शीत की चुभन के बाद उष्णता का यह स्पर्श!

(गुनगुनाने लगती है)

कुवलय दलनीलैरुन्नतैस्तोस्तोयनम्रैः...गीले वस्त्र कहाँ डाल दूं माँ? यहीं रहने दूं?

मृदुपवन विधूतैर्मन्दमन्द चलद्भि :...अपहृतमिठ चेतस्तोयदै :
सेन्द्रचापै : पथिकजनवधूनां तद्वियोगाकुलानाम्।"

इसी प्रकार अंबिका का वह तार्किक कथन अवलोकनीय है—"तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है।...भावना में भावना का वरण किया है।...मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं? भावना में भावना का वरण! हुँ!"

अम्बिका का ऐसा ही एक अन्य कथन देखिये जिसमें वह प्रश्नों की झड़ी लगा देती है—"मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबन्ध है तुम एक उपादान हो जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु क्या तुम सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी न होगी तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?"

पात्रों की मनोदशा के अनुकूल भाषा-शैली का प्रयोग करने के संदर्भ में हम एक और उदाहरण देना चाहेंगे और वह है आहत हरिणशावक को देखकर कालिदास का करुणा-विगलित होकर ऐसी उक्तियाँ कहना मानों वे और वह हरिणशावक एक-प्राण दो गात हैं—

"अब हम पहले से सुखी हैं। हमारी पीड़ा धीरे-धीरे दूर हो रही है।

हम स्वस्थ हो रहे हैं।" तथा "हम जियेंगे हरिणशावक ! जियेंगे न ! एक वाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। × × × हमें नये प्राण मिल जायेंगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल फिर हम वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खायेंगे। खायेंगे न ? × × × हम सोयेंगे ? हाँ, हम थोड़ी देर सो लेंगे तो हमारी पीड़ा दूर हो जायेगी। परन्तु उससे पूर्व हमें थोड़ा दूध पी लेना है।"

अभीष्ट भावाभिव्यक्ति में सक्षमता की दृष्टि से कालिदास का अग्रलिखित कथन द्रष्टव्य है, जो कितना सरस और मार्मिक भी है—"स्थान स्थान पर इन पर पानी की बूंदें पड़ी हैं जो निस्सन्देह वर्षा की बूंदें नहीं हैं। लगता है तुमने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और आँखों से ही नहीं, स्थान-स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद-कणों से मैले हुए हैं। स्थान-स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दांतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ग्रीष्म की धूप के हल्के-गहरे रंग, हेमन्त की पत्रधूलि और इस घर की सीलन···ये पृष्ठ अब कोरे कहाँ हैं मल्लिका ! इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है···अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की।"

व्यंग्यात्मकता एवं अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से भी आलोच्य नाटक की भाषा-शैली सफल है। वाग्विदग्धता पूर्ण व्यंग्यात्मक उक्तियों के तो उसमें स्थल-स्थल पर दर्शन होते हैं। इस नाटक के पात्रों में से अम्बिका और विलोम की उक्तियों में यह गुण अधिक मात्रा में है। अम्बिका स्वपुत्री मल्लिका से इस कारण बड़ी विक्षुब्ध रहती है कि वह भावना-सागर में निमग्न रहती हुई जगत् की कुरूप वास्तविकताओं के प्रति आंखें बन्द किये रहती है। उसका प्रेमी कालिदास बड़ी अहंमन्य प्रवृत्ति का जीव है और इससे विवाह करने से कतराता है जबकि यह पगली इस स्वप्न में मग्न रहती है कि मैंने भावना में भावना का वरण किया है, मानो इसके इस भावना के वरण से ही जीवन की स्थूल आवश्यकताओं की परिपूर्ति हो जायेगी। इसी आक्रोश के कारण अम्बिका अपनी हृदयगत कुढ़न को मल्लिका से आक्षेपमयी व्यंग्यात्मक उक्तियां कह-कह कर प्रकट करती रहती है। उसकी कुछ उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(क) "और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल, अनश्वर ! हुँ।"

(ख) "तुम न कहो, मैं तो कह रही हूँ। आज तुम्हारा जीवन तुम्हारी सम्पत्ति है। मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है।"

(ग) "मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना अधिकार भी नहीं है।"

(घ) "और मैं घर में दुकेली कब होती हूँ। तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती ?"

(ङ) "तुम्हारी अपेक्षा मैं फिर भी अधिक स्वस्थ हूँ।"

(च) "लो मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थीं कि उसके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है···? आज उस कोमलता का और भी साकार रूप देख लिया ?"

(छ) "यह अवसर देखने के लिए ही तो मैंने आज तक का जीवन जिया है ··। इतना बड़ा सौभाग्य हमारे जीवन में कहाँ समा सकता है ?"

कहना न होगा कि अम्बिका की ये व्यंग्यात्मक उक्तियाँ आलोच्य नाटक की भाषा-शैली की रम्यता को अभिवृद्धि करने में बहुत ही सहायक सिद्ध हुई हैं। इस संदर्भ में मातुल का कथन भी उद्धरणीय है—"मैंने कहा, कविवर्य, आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने के लिए आये हैं। राज्य की ओर से आपका सम्मान होगा। (रुक जाता है) सुनकर रुके। रुक कर जलते अंगारे की-सी दृष्टि से मुझे देखा—'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिये नहीं हूँ' —ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जाती हों, और चल दिये।···मेरे लिए धर्म संकट खड़ा हो गया कि अनुनय करता हुआ आपके पीछे-पीछे जाऊँ या अभ्यागतों को देखूं।"

'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा में यत्र-तत्र अलंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग मिलता है, जिनसे उसकी आकर्षणशक्ति और सजीवता में वृद्धि हुई है। कुछ आलंकारिक प्रयोग आगे दिये जा रहे हैं—

उपमा—इस निक्षेप से आचार्य के पास बैठने को कहकर आया था और यह धुरीहीन चक्र की तरह मेरे पीछे चला आया है।

मालोपमा—यह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत। नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र-वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय।

श्लेष—क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है।

उत्प्रेक्षा--मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ—ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जाती हों।

स्मरण—"वही अषाढ़ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गरज रहे हैं। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ, परन्तु फिर भी···।"

सन्देह—"आश्चर्य ? मुझे यह विश्वास ही नहीं होता कि तुम तुम हो और मैं जो तुम्हें देख रही हूँ वास्तव में मैं ही हूँ ?"

वक्रोक्ति—"परन्तु तुमने वारांगना का यह रूप भी देखा है ? आज तुम मुझे पहचान सकते हो ?"

श्लेष—कल ये मेघ उज्जयिनी की ओर उड़ जायेंगे।

मुहावरे, लोकोक्तियों और सूक्तियों का आलोच्य नाटक में अभाव तो नहीं है, हाँ, कुछ कम मात्रा में ही प्रयोग मिलता है। उसमें तिल-तिल कर गलना, तीसरा नेत्र खुला रहना, आँखें गीली होना, शरीर भी निचुड़ने लगना, ओठ फड़फड़ाने लगना, स्वयं पर अपना भी अधिकार न रहना, अपवाद फैलाना, धर्मसंकट में पड़ना, रस प्राप्त होना, नाटक रचना आदि मुहावरों का यथा-स्थान प्रयोग हुआ है। कुछ मार्मिक सूक्तियाँ भी मिलती है—जैसे (क) "सभी विपरीत एक-दूसरे के वहुत निकट पड़ते हैं।" (ख) "किसी सम्बन्ध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण वन जाती है।"

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा-शैली सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। उसमें पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल ही भावुकता, व्यंग्यात्मकता और तार्किकता का निर्वाह किया गया है। इसके साथ ही वह स्वाभाविक अलंकारों से अलंकृत तथा मुहावरों के लाक्षणिक प्रयोग से भी समृद्ध है। भाषा-शैली की दृष्टि से चाहे आलोच्य नाटक की विशेष प्रशंसा न भी की जाए, किन्तु वह अपने लक्ष्य में इस तथ्य के अतिरिक्त कि उससे प्राचीनकालीन वातावरण की सम्यक् अवतरणा नहीं हो पाती—सफल ही है।

प्रश्न ९—'आषाढ़ का एक दिन' के प्रतिपाद्य या उद्देश्य पर प्रकाश डालिये। अथवा

''आषाढ़ का एक दिन' की रचना पुरुष की अहंवृत्ति की शिकार बनी नारी की दयनीय दशा के उद्‌घाटन के लिये की गयी है।' इस उक्ति का युक्ति-युक्त विवेचन कीजिये। अथवा

''आषाढ़ का एक दिन' की रचना का मूलोद्देश्य कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से इस तथ्य का उद्‌घाटन करने के लिये की गयी है कि राज्याश्रय साहित्यकार की प्रतिभा को कुंठित कर देता है'—इस उक्ति के पक्ष अथवा विपक्ष का युक्तिपूर्ण प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर—काव्यप्रकाश-कार मम्मट ने काव्य के मूल प्रयोजन या उद्देश्य यह बताते हुए कहा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृतेव्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे॥

अर्थात् साहित्य की रचना यश की उपलब्धि, धन प्राप्ति, व्यवहार-ज्ञान, अमंगलकर तथ्यों के विनाश, तात्कालिक आनन्द प्राप्ति तथा कान्ता (पत्नी) सम्मित उपदेश देने के प्रयोजन से की जाती है। आज से लगभग आठ-नौ सौ वर्ष पूर्व व्यक्त किया गया मम्मट का यह अभिमत साहित्यिक रचनाओं के उद्देश्य के संदर्भ में आजकल भी प्रायः उतना ही सत्य है जितना कि वह मम्मट-काल में था। रचयिता यश और धन की प्राप्ति के लिए तो रचनाओं का प्रणयन करते ही हैं, वे अपनी कृतियों से पाठकों को रसास्वाद कराने के साथ-साथ उन्हें प्रच्छन्न रूप में ऐसा उपदेश देने की भी चेष्टा करते हैं, जो उन्हें अमंगलकर तथ्यों से दूर रख सकें। जहाँ तक पाठक-प्रेक्षकों को प्रभावित करने का प्रश्न है नाटक एक ऐसी साहित्य-विधा है, जिसका प्रभाव उपन्यास और कहानी आदि साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक पड़ता और स्थायी हुआ करता है। यह एक अनुभूत और मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस वस्तु का अनुभव करने में हमारी जितनी अधिक इन्द्रियाँ क्रियाशील होती हैं, उसका प्रभाव हमारे मन पर उतना ही अधिक गहरा पड़ता है और स्थायी रहा करता है। नाटकों के प्रेक्षप के समय हमारी चक्षुरिन्द्रिय के साथ-साथ कर्णेन्द्रिय भी आप्यायित होती हैं, इसलिए पात्रों की सुख-दुखात्मक अनुभूतियों का भी हम पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इसीलिए नाटकों को लोगों का मनोरंजन करने और उन्हें प्रभावित करने का सर्वाधिक

सफल माध्यम स्वीकार किया जाता है। 'आषाढ़ का एक दिन' के माध्यम से श्री मोहन राकेश ने भी मुख्यतया दो लक्ष्यों की सिद्धि करनी चाही है—(१) पुरुष की अहंवादिता की शिकार बनी भावनामयी नारी की दयनीय दशा के प्रति करुणोद्रेक करना। तथा (२) 'राज्याश्रय सर्जक कलाकार की प्रतिभा को कुंठित कर देता है'—इस तथ्य का उद्घाटन करना। इनमें से प्रथम उद्देश्य का नाटककार सम्यक् निर्वाह कर सका है जबकि द्वितीय उद्देश्य के पक्ष और विपक्ष में आलोच्य नाटक में इतने तथ्य उपलब्ध होते हैं कि उसकी निर्भ्रान्त प्रतिष्ठापना नहीं हो सकी है। इन दोनों उद्देश्यों पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

पुरुष की अहंवादिता की शिकार बनी भावनामयी नारी की दयनीय दशा के प्रति करुणोद्रेक करना ही हमारे अभिमत में आलोच्य नाटक का मूल उद्देश्य है। इस समस्या का बीज-वय नाटक के आरंभ में ही हो जाता है, जब अम्बिका अपनी भावनाओं के संसार में खोयी रहने वाली पुत्री की भर्त्सना करती हुई उसे जीवन की स्थूल आवश्यकताओं के प्रति प्रबोधित करना चाहती है। मल्लिका के इस कथन को सुनकर—"मैं जानती हूँ माँ, कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है···।"—अम्बिका उत्तेजित होकर कह उठती है— "और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर ! हुँ! × × × तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। भावना में भावना का वरण किया है।···मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं? भावना में भावना का वरण ! हुँ !"

अम्बिका द्वारा मल्लिका के इस भावना के वरण का विरोध करने का मूल कारण यह है कि अनुभवी अम्बिका इस तथ्य से परिचित है कि कालिदास एक बड़ा ही आत्मकेन्द्रित और अहंवादी जीव है—वह मल्लिका से वास्तविक प्रेम नहीं करता, अपितु उसने उसको अपनी अहंतुष्टि का माध्यम बना रखा है, उसके माध्यम से वह स्वयं को ही प्रेम करने का आत्म-तोष प्राप्त करता है, वह उसके प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझता— "मैं ऐसे

व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?" किन्तु भावना-सागर में निमग्न मल्लिका पर स्व-माता की सीख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह इस विकट प्रश्न को कि कालिदास उज्जयिनी जाने से पूर्व उससे विवाह कर लें, यह कह कर हवा में उड़ा देती है—"माँ, आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है। आगे भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती।"

मल्लिका के विषय में विलोम द्वारा कहे गए ये उद्गार शतशः सत्य हैं कि वह बहुत भोली है और लोकजीवन के विषय में कुछ नहीं जानती। विलोम का यह परामर्श लोक-दृष्टि से पूर्णतया उचित है कि कालिदास के उज्जयिनी जाने से पूर्व मल्लिका और कालिदास का परिणयन हो जाना चाहिए, अन्यथा उनके संबंधों का अपवाद जिस रूप में व्याप्त है उसे देखते हुए मल्लिका को किसी वंश द्वारा कुलवधू के रूप में अपनाना कठिन ही होगा। नाटक के आरंभ में अम्बिका द्वारा इसी हेतु भेजा गया अग्निमित्र विवाह की अस्वीकृति का जो संदेश लाता है उसका मूल कारण निस्सन्देह यह लोकापवाद ही रहा होगा। विलोम कालिदास की उपस्थिति में भी यह बड़ा उपयुक्त प्रश्न प्रस्तुत करता है—"कल तक ग्राम-प्रान्तर में कालिदास और मल्लिका के सम्बन्ध को लेकर बहुत कुछ सुना जाता रहा है। × × × उस आधार को दृष्टि में रखते हुए क्या यह उचित नहीं है कि कालिदास यह स्पष्ट कर दे कि उसे उज्जयिनी अकेले ही जाना है या...। (वह मल्लिका को भी विवाह करके अपने साथ ले जाएगा?)" वह यह प्रश्न भी करता है कि कालिदास ग्राम-प्रान्तर को भूल तो नहीं जाएगा, क्योंकि नगर में जाकर व्यक्ति का जीवन बड़ा व्यस्त हो जाता है। वहाँ रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्यान्य प्रकार की इतनी विलास-भूमियाँ होती हैं कि मनुष्य के उन्हीं में

निमग्न हो जाने की संभावना रहती है। विलोम इन तथ्यों के द्वारा मल्लिका को चेताना चाहता है, किन्तु उसके हृदय में तो कालिदास के प्रति इतना अगाध प्रेम, श्रद्धा और विश्वास है कि वह इन बातों के लिए विलोम के प्रति उपकृत होने के स्थान पर उसे भला-बुरा कहने लगती है। वह विनीत शब्दों में किन्तु दृढ़तापूर्वक विलोम को फटकार देती है कि वह वहाँ से चला जाए, कि वह समय और स्थान इस प्रकार की बातों के उपयुक्त नहीं है—कि मेरे प्राण-प्रिय भावी जीवन-सहचर के प्रति इस प्रकार की आशंकाएँ करना सर्वथा निरर्थक है।

मल्लिका उन भारतीय नारियों में से है जो अपने जीवन को अपने प्रियजनों की खुशियों के लिए उत्सर्ग कर देती हैं, जिनके प्रेम में स्वार्थ के स्थान पर उनकी हितकामना प्रमुख होती है, जिनका विश्वासी हृदय अपनी तरह स्व-प्रेमियों के भी हृदय को निश्छल-विश्वासमय समझता है। इसीलिए मल्लिका अपनी चिन्ता नहीं करती, अपितु अनेकानेक तर्क देकर कालिदास को इस हेतु विवश कर देती है कि वह अविलम्ब उज्जयिनी जाकर राजकवि का आसन ग्रहण कर ले जिससे उसकी काव्य-प्रतिभा उत्कर्षोन्मुखी हो सके, जिससे उसकी काव्य-मणियों की प्रभा उस संकुचित ग्राम-प्रान्तर में ही परि-सीमित न रह जाए अपितु उसकी प्रभा समस्त देश में विकीर्ण हो सके, कि जिससे उसके कवि-व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। भावनामयी मल्लिका के भावी जीवन की दुर्गति का स्मरण करके तब हमारी आँखें डवडवा उठतीं हैं, जब हम उसे कालिदास से यह आग्रहमयी अनुनय-विनय करके उन्हें उज्जयिनी जाने के लिये विवश करते देखते हैं—मेरी ओर देखो (कुछ क्षण कालिदास उसकी आँखों में देखता रहता है) अब भी उत्साह का अनुभव नहीं होता···? विश्वास करो तुम यहाँ से जाकर भी यहाँ से विच्छिन्न नहीं होओगे। यहाँ की वायु, यहां के मेघ, यहाँ के हरिण, इन सबको तुम साथ ले जाओगे···। और मैं भी तुमसे दूर नहीं रहूँगी। जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत-शिखर पर चली जाऊँगी और उड़ कर आते हुए मेघों में फिर जाया करूँगी।" अभागी मल्लिका कालिदास के उज्जयिनी गमन से पूर्व जो बातें भावावेश में कहती है, उसके परवर्ती जीवन में उसे कालिदास से मिलन के लिए उन्हीं का आश्रय लेना पड़ता है— अहंवादी कालिदास मल्लिका से पूर्णतया विमुख हो बैठते हैं—उन्हें यह याद ही नहीं रहता कि

मैं ग्राम-प्रान्तर में अपनी उस बाल-सहचरी को सिसकियाँ दबाती छोड़ आया हूँ जिसके मन-प्राण में मात्र मैं ही समाया हुआ हूँ, जो मेरे प्रेम के लिए अपनी माता, विलोम और समाज के विरोध का सामना करने के लिए कटिबद्ध है। उसे मेरे आश्रय की आवश्यकता है, उसके जीवन-दीप को मेरे स्नेह की नितान्त आवश्यकता है, वह अबोध किशोरी अनुपल मेरी बाट जोह रही होगी।

मल्लिका की उदात्त प्रेम-भावना जितनी ही अधिक प्रशंसनीय है कालिदास की अहंप्रियता और स्वार्थान्धता उतनी ही अधिक गर्हणीय है। बेचारी मल्लिका पलक-पाँवड़े बिछाए स्व-प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है और यह समाचार पाकर कि वह ग्राम-प्रान्तर में आया हुआ है उसके आगमन की प्रतिक्षण पर संभावना करती हुई सिहर रही है, जबकि आत्मकेन्द्रित प्रेमी-महाशय को अपनी प्रेमिका की भावनाओं की रंचमात्र भी चिन्ता नहीं है। इसके लिए किसे दोषी ठहराया जाए? हम कहेंगे कि तदर्थ अभागिनी मल्लिका ही दोषी है। उसके प्रेमी महाशय तो उज्जयिनी जाने से पूर्व ही यह घोषणा कर चुके थे कि उनकी दृष्टि में उस ग्राम-प्रान्तर के पशु-पक्षी और प्राकृतिक दृश्यावली की भी उतनी ही महत्ता है, जितनी कि मल्लिका की—"मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।" अतः यदि फिर भी मल्लिका यह अपेक्षा कर रही थी कि उसका प्रेमी उससे साक्षात्कार के लिए आएगा, उसके टूटते मन-प्राण को जुड़ाने का प्रयास करेगा, उसके समक्ष विनयावत् होकर अपने इस अपराध की क्षमा-याचना करेगा कि वह राजधानी जाकर उसे भुला बैठा था, अपनी भूल का परिमार्जन करते हुए उसे अपनी जीवन-सहचरी के रूप में अपना लेगा—तो इसे अत्यधिक भावुक एवं त्यागमयी मल्लिका के अतिरिक्त और किसकी भूल स्वीकार किया जा सकता है?

और हाँ, ग्राम-प्रान्तर में आकर भी मल्लिका से मिलकर न जाने का नाटककार ने कालिदास के मुख से जो कारण दिलाया है, उसमें भी पुरुष की अहं-भावना की परितुष्टि कूट-कूट कर भरी हुई है। इस कारण के अनुसार कालिदास मल्लिका से मिलना इस दृष्टि से अनुपयुक्त समझते हैं कि कहीं उसकी कातर आँखें उन्हें उनके उस साधना-मार्ग से विचलित न कर दें,

जिसमें वे अपने विरोधियों के दर्प को चूर करने के लिये राजदंड संभालने जा रहे थे—"तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन संभालने जा रहा हूँ ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परन्तु मुझे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। संभवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी, जिन्होंने जब तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।"

कालिदास की यह धारणा पुरुषवर्ग की अहंवादिता का कैसा सुष्ठु निदर्शन करती है कि वे राजधानी में रंगरेलियाँ मनाते रहते हैं—नरेश-दुहिता से विवाह हो जाने पर भी अपना अधिकांश समय वारांगनाओं के सहचर्य में व्यतीत करते हैं, काश्मीर के शासक होकर नरेशोचित वैभव-विलास का उपभोग करते रहते हैं, तथापि मल्लिका के विषय में यही सोचते रहते हैं कि वह पितृहीना किशोरी अब भी अपनी पूर्ववर्ती कौमार्यावस्था का अर्घ्य लेकर, अपनी प्रेममयी भावनाओं के दीप सजाकर मेरी आरती उतारने को गृहद्वार पर प्रतीक्षारत होगी—"कुंभ, बाघ-छाल, कुशा, दीपक, गेरू की आकृतियाँ ··और तुम्हारी आँखें। जाने के दिन तुम्हारी आँखों का जो रूप मैंने देखा था, वह आज तक मेरी स्मृति में अंकित है (मल्लिका की ओर से हम उन्हें इस तथ्य के लिए साधुवाद दिए देते हैं कि आपने मल्लिका पर बड़ी अनुकम्पा की है !)। मैं अपने को विश्वास दिलाता रहा हूँ कि कभी भी मैं यहाँ से लौटकर आऊँ सब कुछ वैसा ही होगा।"

जहाँ तक मल्लिका का प्रश्न है भावनामयी अपनी भावना के वरण की प्रा[illegible] पण से रक्षा करती रहती है। वह अपने प्रेमी को असाधारण मानकर उसके दोषों को भी गुण नहीं तो क्षम्य मानती रहती है, उसके द्वारा विश्वासघात करने पर भी वह स्वमाता से प्रार्थना करती है—"उनके सम्बन्ध में कुछ मत कहो माँ, कुछ मत कहो।" वह नाना प्रकार की पीड़ाएँ सहते हुए भी अपने प्रेमी के सान्निध्य में जिन पर्वत-शिखरों पर घूमी थी, उन पर जा-जाकर मेघ-मालाओं को देखती, ऋतुसंहार और मेघदूत की पंक्तियों को पढ़ती हुई अपने भावना-कोष को रिक्त नहीं होने देती। अत्यधिक आर्थिक अभाव की दशा में भी व्यवसायियों से स्वप्रेमी की काव्यकृतियों की प्रतिलिपियाँ मँगाकर पढ़ती रहती है, और यदि मन व्यग्र होता है तो उन कृतियों को ही स्व-प्रेमी मानकर यदा-कदा उपालम्भ दे लेती है। उसका प्रेमी लम्बे अन्तराल के पश्चात जब राज्याच्युत हो

हताश-निराश मनःस्थिति में उसके प्रेम की सुखद चाँदनी का पुनः आस्वाद लेने की कामना से उसके समीप लौटता है तो उसका अंग-प्रत्यंग हुलसने लगता है, उसके मन-प्राण खिल उठते हैं। उसे यह सुनकर अपना जीवन धन्य एवं सार्थक प्रतीत होने लगता है कि कालिदास की सभी कृतियों की मूल प्रेरणा वह ही रही है— कुमारसंभव की उमा, अभिज्ञान शाकुन्तल की शकुन्तला, मेघदूत की विरह-विमर्दिता यक्षिणी वही है। स्व-प्रेमी का यह प्रस्ताव सुनकर कि हम जीवन को पुनः अथ से आरंभ कर सकते हैं, उसके हर्षोल्लास का पारावार नहीं रहता। किन्तु उसके भाग्य में सुख तो लिखा ही नहीं था। अपनी उदर-पूर्ति के लिए उसे विलोम की प्रतिहिंसात्मक वासना का शिकार होना पड़ता है, और उससे जो पुत्री उत्पन्न होती है, उसके रोने की आवाज उसके तथाकथित प्रेमी के प्रेम की पोल खोल देती है। प्रेमी पुरुष था अतः उसे यह अधिकार था कि वह नरेश-पुत्री प्रियंगुमंजरी से ही विवाह न कर ले अपितु वारांगनाओं के सहवास का भी लाभ उठाए। जबकि मल्लिका नारी है अतः उससे उसका अहम्मन्य प्रेमी यही अपेक्षा करता है कि वह अपने कौमार्य को अक्षत रखती हुई उसके पुनरागमन की प्रतीक्षा करती रहती। कहना न होगा कि नाटककार ने आलोच्य नाटक की घटनाओं का विनियोजन ऐसे रूप में किया है कि हमारे हृदय में मल्लिका के प्रति करुणा और सहानुभूति की भावनाएँ जाग्रत हो उठती हैं, जबकि हम कालिदास के रूप में पुरुष-वर्ग की स्वार्थान्ध और अहंवादी मनोवृत्ति से घृणा करने लगते हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका के चरित्र का अवलोकन करके हमारी स्मृति में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' का चरित्र उभर उठता है। गौतम बुद्ध द्वारा भी सिद्धि-प्राप्त के पश्चात् यशोधरा की महत्त्व-स्वीकृति ठीक उसी प्रकार की जाती है, जैसे कालिदास अपनी सभी कृतियों की प्रेरणा का मूलाधार मल्लिका को बताते हैं। यशोधरा की ये पंक्तियाँ मल्लिका के संदर्भ में भी पूर्णतया सटीक प्रतीत होती हैं—

"अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और नयनों में पानी ॥"

'लहरों के राजहंस' की भूमिका में श्री मोहन राकेश ने कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के विषय में जो उद्गार व्यक्त किए हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि सर्जक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व को उद्घाटित करना भी इस नाटक का एक उद्देश्य रहा

है। उनके शब्दों में—'कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में यह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व में से गुजरना पड़ा या नहीं, यह बात गौण है, मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं। हो सकता है व्यक्ति कालिदास का यह नाम भी वास्तविक न हो। पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा दूसरा नाम, दूसरा संकेत मुझे नहीं मिला।" नाटककार के इस कथन के विषय में डॉ० कृष्णदेव झारी ने लिखा है—"सर्जक कलाकार या कवि के अन्तर्द्वन्द्व का प्रकाशन कालिदास के चरित्र द्वारा मोहन राकेश ने अच्छा किया है। कालिदास को राजकवि का उच्चासन पाने के लिए सम्राट् का बुलावा आता है। उसके मन में द्वन्द्व मच जाता है। एक ओर ऐश्वर्य-विलास, धन-सम्पत्ति, राजकीय जीवन का ठाठ-बाट है, राज्याश्रय है, सुख-मौज है, दूसरी ओर अपनी स्वतंत्रता खो बैठने, अपने प्राकृतिक वातावरण के छूट जाने का भय है, आत्मसम्मान को ठेस पहुँचने की आशंका है, किसी सम्राट् या राजा के धन पर बिक जाने का डर है।"

इस संदर्भ में हम यह कहना चाहेंगे कि आधुनिक काल में तो इस प्रकार का अंतर्द्वन्द्व स्वाभाविक है और हमें बहुत से आधुनिक साहित्यकारों के व्यक्तिगत जीवन में ऐसा अन्तर्द्वन्द्व घटित होने के प्रमाण भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द ने सन् १९२४ में जबकि वे सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे देने के कारण आर्थिक विपन्नता की स्थिति में थे, अलवर-नरेश के उस आकर्षक प्रस्ताव को सविनय अस्वीकार कर दिया था कि वे बंगला और मोटर के साथ-साथ ४००) मासिक वेतन पर उनके यहाँ आकर रहें। उन्होंने लिखा था—"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे याद किया। मैंने अपना जीवन साहित्य-सेवा के लिए लगा दिया है। मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसे आप पढ़ते हैं, इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। आप जो पद मुझे दे रहे हैं, मैं उसके योग्य नहीं हूँ। मैं इतने में ही अपना सौभाग्य समझता हूँ कि आप मेरे लिखे को ध्यान से पढ़ते हैं।" इस निमंत्रण को ठुकराने का जो मूल कारण था, उसे प्रेमचन्द ने मंगल-सूत्र के देवकुमार से इन शब्दों में व्यक्त करा दिया है—"साहित्य-रसिकों में जो एक अकड़ होती है, चाहे उसे शेखी ही क्यों न कह

लो, वह उनमें भी थी। कितने ही रईस और राजे इच्छुक थे कि वह उनके दरबार में जाएँ, अपनी रचनाएँ सुनाएं, उनको भेंट करें लेकिन उन्होंने आत्म-सम्मान को कभी हाथ से नहीं जाने दिया। किसी ने बुलाया भी तो धन्यवाद देकर टाल गये।" मुंशी प्रेमचन्द के जीवन की ऐसी ही एक अन्य घटना भी उल्लेखनीय है। सन् १९२९ में उत्तर-प्रदेश के गवर्नर सर माल्कम हेली ने उन्हें रायसाहबी का खिताब देने की इच्छा से उनके एक मित्र के माध्यम से तद्विषयक सूचना भिजवाई थी। प्रेमचन्द्र ने उत्तर दिया था—"तब मैं जनता का आदमी न रहकर एक पिट्ठू रह जाऊँगा···उसी तरह जैसे अन्य लोग हैं। अभी तक मेरा सारा काम जनता के लिए हुआ है। तब गवर्नमेण्ट मुझसे जो लिखवायेगी लिखना पड़ेगा।······उनको धन्यवाद लिख दूंगा और लिख दूंगा कि जनता का तुच्छ सेवक हूँ, अगर जनता की रायसाहबी मिली तो सिर-आँखों पर, गवर्नमेण्ट की रायसाहबी की इच्छा नहीं।" निराला, यशपाल आदि आधुनिक साहित्यकारों के विषय में भी ऐसे अन्तर्द्वन्द्व की घटनाएँ घटित हुई हैं, किन्तु कालिदास के काल में जबकि साहित्यकार मुख्यतया या तो मठ-मन्दिरों के आश्रय में रहने वाले साधू-सन्त हुआ करते थे अथवा राजा-महाराजा या उनके आश्रय में पलने वाले कविगण। अतः कालिदास के मानस में उठने वाला अन्तर्द्वन्द्व विशेष युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। श्री मोहन राकेश ने यह स्वीकार करते हुए भी कि 'कालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व में से गुजरना पड़ा या नहीं, यह बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं'—'आषाढ़ का एक दिन' में इस प्रतीक का निर्वाह करने की चेष्टा की है, अतः इसका उद्घाटन भी निश्चय ही इस कृति का प्रतिपाद्य रहा है। इस अन्तर्द्वन्द्व की नाटककार ने जिस रूप में योजना की है, उस पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

कालिदास को मातुल से जैसे ही यह तथ्य विदित होता है कि उन्हें राजकवि के रूप में सम्मानित करने के लिए उज्जयिनी से आचार्य वररुचि आए हैं, उनकी पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि मैं इस सम्मान को स्वीकार नहीं करूंगा, क्योंकि राजकवि के पद को स्वीकार करना, कुछ मुद्राओं के बदले अपनी आत्मा को नरेश के हाथों बेच देना है—तब मुझे स्वेच्छानुसार काव्य-प्रणयन की स्वतंत्रता नहीं रहेगी। वे कह उठते हैं—"मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ"—और जगदम्बा के मन्दिर में जा छिपते हैं।

मातुल को यह कथन बड़ा अटपटा प्रतीत होता है। उसका विचार है कि—"मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है? सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं, कविता का मूल्य ही क्या है?" मल्लिका आरंभ में तो कालिदास का पक्ष लेती हुई यह भाव व्यक्त करती है—"कविता का कुछ मूल्य है आर्य मातुल, तभी तो सम्मान का भी मूल्य है।......मैं समझ सकती हूँ कि उनके हृदय में यह सम्मान कहाँ चुभता है?" किन्तु निक्षेप की इस सारगर्भित उक्ति को सुनकर कि—"कालिदास अपनी भावुकता में यह भूल रहे हैं कि इस अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेंगे। योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। कालिदास को राजधानी अवश्य जाना चाहिए। × × × अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं तो राज्य की कोई हानि न होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज हैं, जीवन भर वहीं रहेंगे—केवल एक स्थानीय कवि। जो लोग आज ऋतुसंहार की प्रशंसा कर रहे हैं वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जायेंगे।"—वह भी अपना यह विचार बना लेती है कि कालिदास को अवश्य ही उज्जयिनी जाना चाहिए।

कालिदास ग्राम-प्रान्तर त्यागकर उज्जयिनी न जाने के विषय में मल्लिका के समक्ष भी कई तर्क प्रस्तुत करते हैं, किन्तु मल्लिका उनकी एक नहीं चलने देती। वे कहते हैं—"मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम-प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं, यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।" मल्लिका उन्हें समझाने लगती है—"यह क्यों नहीं सोचते हो कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वर मिलेगी। इस भूमि से तुम जो ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।" जब कालिदास यह कहते हैं कि 'नयी भूमि सुखा भी तो दे सकती है?' तो वह उत्तर देती है—"कोई भूमि ऐसी नहीं जिसके अन्तर में कहीं कोमलता न हो। तुम्हारी प्रतिभा उस कोमलता का स्पर्श अवश्य पा लेगी।" निदान कालिदास राजकवि बनना स्वीकार कर लेते हैं।

राजकवि ही नहीं काश्मीर के शासक का पद स्वीकार कर लेने पर भी

कालिदास की काव्य-प्रतिभा कुंठित नहीं होती—उस पर राज्याश्रय या परिवर्तित परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। यह तथ्य नाटककार के इस मंतव्य के प्रतिकूल पड़ सकता था कि राज्याश्रय साहित्यकार के व्यक्तित्व का ह्रास करता है, किन्तु उसने कालिदास के मुख से यह भाव व्यक्त कराकर कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसकी प्रेरणा मल्लिका और ग्राम-प्रान्तर का प्राकृतिक परिवेश ही रहा है अपने मंतव्य की औचित्य-सिद्धि कर दी है। इस संदर्भ में कालिदास के ये उद्‌गार अवलोकनीय हैं—"किसी और के लिए वही वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था। मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता था कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह से उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है और जिस विशाल क्षेत्र में मुझे रहना चाहिए था, उससे हट आया हूँ।" तथा—"लोग सोचते हैं कि मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था। कुमारसंभव की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। 'रघुवंश' में अज का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी, और···।" कालिदास की यह स्वीकारोक्ति भी कि मेरे मन को इस ग्राम-प्रान्तर की एक-एक वस्तु की स्मृति सदैव मिलती रही है, और मैंने प्रभुता और सत्ता को इसलिए छोड़ा है, जिससे मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त होकर पुनः कालिदास के कलेवर में जी सकूँ—भी इसी तथ्य का उद्‌घाटन करती है कि साहित्यकार जब अपने परिवेश से टूटकर राजाश्रय के लोभ में अन्यत्र चला जाता है तो उसकी 'सर्जना-शक्ति' परिक्षीण होने लगती है। अतः जहाँ तक बन पड़े साहित्यकारों को साहित्यिक मठाधीशों या सरकारी प्रश्रय की शरण नहीं लेनी चाहिए—इससे उनकी प्रतिभा विकसित-समृद्ध होने के स्थान पर कुंठित ही होगी।

संक्षेप में, आलोच्य नाटक की रचना के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं। प्रथम है पुरुष की अहंवृत्ति की शिकार बनी नारी जाति के प्रति पाठक-प्रेक्षकों में करुणा और समवेदना का उद्रेक करके उन्हें इस तथ्य के प्रति सचेत करना कि भावनामयी नारियों का ऐसा शोषण स्थगित होना चाहिए अथवा नवयौवनाओं को भावना-सागर मे निमग्न रहने के स्थान पर जीवन में फूंक-फूंक कर कदम उठाने चाहिएँ—भावनाओं के पीछे जीवन के स्थूल किन्तु शाश्वत प्रश्नों को नहीं भुलाना चाहिए। इसका दूसरा उद्देश्य इस तथ्य का प्रतिपादन करना है कि किसी भी प्रकार के राजकीय या सरकारी आश्रय में रहते हुए साहित्यकारों की सर्जना-शक्ति का सम्यक् विकास नहीं हो पाता।

प्रश्न १०—"प्रस्तुत नाटक का नामकरण बड़ा कलात्मक है", इस उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर—जिस प्रकार नर-नारियों के नामकरण और उनकी आकृति या गुणों में वैषम्य को लेकर ऐसी लोकोक्तियाँ प्रचलित हो गई हैं—'आँखों के अन्धे नाम नैनसुख', 'पास कानी कौड़ी नहीं और नाम करोड़ीमल,' उसी प्रकार साहित्य-जगत् में भी कृति के वर्ण्य-विषय और उसके नामकरण में संगति होनी अत्यावश्यक है, अन्यथा पाठक उस कृति के रचयिता की बुद्धि पर तरस खाने लगते हैं। कृति के नामकरण में कृतिकार को बड़ी जागरूकता रखनी पड़ती है क्योंकि आकर्षक शीर्षकों वाली रचनाएं पाठकों को बलात् आकृष्ट कर लेती हैं चाहे साहित्यिक दृष्टि से वे हीन स्तर की ही क्यों न हों, जबकि ऐसी उत्तम कृतियाँ भी जिनके शीर्षक अनाकर्षक होते है, उपेक्षित रह जाती हैं। 'नाटक' का आकर्षक नामकरण करना तो इस दृष्टि से और भी अधिक आवश्यक होता है कि प्रेक्षक उसके आधार पर ही नाटक को देखने या न देखने का निश्चय करते हैं। किन्तु यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कृति का नामकरण उसके वर्ण्य-विषय से असम्बद्ध न हो, वह उसके किसी पात्र अर्थात् नायक या नायिका के नाम, किसी घटना या दृश्य आदि से अवश्य सम्बन्धित हो। कृतियों के नामकरण में साधारणतया निम्नांकित आधारों का आश्रय लिया जा सकता है—

(क) नायक या नायिका के नाम के आधार पर।

(ख) कृति के उद्देश्य के आधार पर।

(ग) मुख्य घटना के आधार पर।
(घ) किसी घटना के घटित होने के स्थान के नाम पर।

उपर्युक्त प्रणालियों में से प्रथम पद्धति का अधिक अनुसरण किया गया है—चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, उर्वशी, कामायनी, निर्मला, सुनीता, स्कंदगुप्त, रामायण, रामचरित-मानस आदि कृतियों का नामकरण नायक या नायिका के नाम पर किया गया है। कृति के मूल उद्देश्य के आधार पर नामकरण की गयी कृतियों में उल्लेखनीय हैं—सेवासदन, भारत-दुर्दशा, 'विषस्यविषमौषधम्' आदि। मुख्य घटना के आधार पर जिन कृतियों का नामकरण किया गया है उनमें से उल्लेखनीय हैं—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, हल्दीघाटी का युद्ध, सिन्दूर की होली, शक-विजय आदि। किसी घटना के घटित होने वाले स्थान के नाम पर नामकरण की गयी कृतियों में कुरुक्षेत्र और साकेत, उल्लेखनीय हैं। श्री मोहन राकेश ने उपर्युक्त पद्धतियों से भिन्न एक दिन विशेष की घटित होने वाली घटना के आधार पर आलोच्य नाटक का नामकरण किया है। उनका यह प्रयास किस सीमा तक उचित रहा है, इस तथ्य पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

आलोच्य नाटक के नामकरण के विषय में कहा जा सकता है कि यदि उसका नामकरण नाटक के नायक के नाम पर किया जाता तो वह एक प्रकार से अनुपयुक्त ही रहता। वे नाटक के आरम्भिक भाग में ही हमें प्रभावित करते हैं तथा अंशतया नाटक के उत्तरार्द्ध में भी जहाँ वे मल्लिका को अपनी विवशता का ब्यौरा सुनाते हुए यह स्वीकार करते मिलते हैं कि वे राजसी वातावरण में बड़े दुःखी रहे हैं, तथा उनकी समस्त कृतियों की मूल प्रेरणा-शक्ति मल्लिका ही रही है। द्वितीय अंक में उनका कोई योगदान ही नहीं है तथा नाटक के अन्त में उनके द्वारा मल्लिका को छोड़कर चल देने से हमारे हृदय को पुनः आघात पहुँचता है। ऐसी दशा में इस नाटक का शीर्षक 'कालिदास' या 'मातृगुप्त' रखना सर्वथा अनुपयुक्त रहता—चाहे मोहन राकेश इस तथ्य को स्वीकार न करें किन्तु इस नाटक में कालिदास का चरित्र महिमान्वित नहीं हुआ है। वह ऐसे रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इसका नामकरण 'कालिदास' करना सर्वथा अनुपयुक्त रहता।

नायक तो नहीं हाँ, इस नाटक की नायिका मल्लिका के नाम के आधार पर इसका नामकरण अवश्य उपयुक्त रहता। मल्लिका ही इस नाटक की

धुरी है और नाटक में आद्यन्त छाई रहती है। उसकी चारित्रिक गरिमा पाठक-प्रेक्षकों को अभिभूत किए रहती है। वे उसके भोलेपन पर रीझते हुए उसकी दुरवस्था पर दयार्द्र हो उठते हैं। किन्तु मल्लिका एक कल्पित पात्र है, उसके विषय में सामाजिकों को कुछ भी परम्परागत तथ्यों का ज्ञान नहीं है। अतः एक सर्वथा कल्पित पात्र के नाम के आधार पर इस नाटक का नामकरण 'मल्लिका' करना भी इस दृष्टि से विशेष उपादेय न रहता कि पाठक-प्रेक्षक उसे पढ़ने-देखने को लालायित नही होते। इस नाटक में कोई ऐसी घटना-विशेष या उस घटना के घटित होने का स्थान-विशेष भी नहीं है जिसके आधार पर इसका नामकरण किया जा सकता। उस ग्राम-प्रान्तर का तो नाटककार ने नाम तक नहीं दिया है, जहाँ मल्लिका और कालिदास का यह प्रेम-व्यापार घटित होता है। अतः नाटककार के समक्ष किसी अन्य परिपाटी को अपनाते हुए नामकरण करने की समस्या थी, और उसको उसने अपनी सूझ-बूझ द्वारा भली प्रकार सुलझा लिया है। उसने उस दिन-विशेष को नामकरण का मूलाधार बनाया है जिस दिन यह घटना घटित होती है और इस दिन विशेष का भी उसने ऐसा चयन किया है जो नाटक की मूल संवेदना को और भी अधिक प्रभावशाली बना देता है। इस नाटक की मूल-संवेदना है भावनामयी नारी का पुरुष की अहंवादी प्रवृत्ति का शिकार होकर पीड़ा-सागर में छटपटाना और तदर्थ उस वर्षा ऋतु के प्रथम दिन का चयन करना सर्वथा उपयुक्त है जो काव्य जगत् में विरहिणी नारियों के लिए अत्यधिक दुःखदायी चित्रित की गयी है। नाटक के आरम्भ में आषाढ़ का प्रथम दिन मल्लिका पर सुखों की वर्षा करता है, उसके मध्य में वह उसकी आकांक्षा में व्यग्र है जबकि नाटक के अन्त में आषाढ़ का वही प्रथम दिन उस पर अपार दुःखों की वर्षा करते दृष्टिगत होता है।

नाटक के आरम्भ में पर्दा उठने से पूर्व हल्का-हल्का मेघ-गर्जन और वर्षा का शब्द सुनाई देता है। पर्दा उठने पर मल्लिका गीले वस्त्रों में काँपती-सिमटती-सी रंगमंच पर प्रवेश करती है और अपनी माता के निकट आकर कहती है— "आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ! ··· ऐसी धारासार वर्षा! दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयीं।···और मैं भी तो! देखो न माँ, कैसे भीग गयी हूँ।" मल्लिका वर्षा में भीगने के साथ-साथ स्व-प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा-विहार करने की आनन्दानुभूति में भी भीगी हुई है, यही कारण

है कि उस दिन उसे विचित्र ही सुखानुभूतियाँ होती हैं, वह समझ नहीं पाती कि उस उल्लास को अपने हृदय में किस प्रकार समाए रखे। वह कहने लगती है—"वह बहुत अद्भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्भुत। नील-कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय। मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूंद लूँ।...मेरा तो शरीर भी निचुड़ रहा है माँ! कितना पानी इन वस्त्रों ने पिया है।...ओह!" उस दिन उसे जो सुखानुभूति होती है उसे मल्लिका अभूतपूर्व और अविस्मरणीय बताते हुए कहती है—"माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती (जैसा कि नाटक की घटनाओं से स्पष्ट है वह भूल भी नहीं पाती)। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है।"

आषाढ़ के इस प्रथम दिवस को ही मल्लिका अपने जीवन-धन कालिदास को इस हेतु विवश करती है कि वे उज्जयिनी जाकर राजकवि का पद स्वीकार कर लें। दूसरे दिन उन्हें ब्राह्म-मुहूर्त में ही चला जाना है, अतः मल्लिका उन्हें आषाढ़ के इस प्रथम दिन की संध्या को ही विदा कर देती है, यद्यपि वह कहती यह है कि—'नहीं। विदा तुम्हें नहीं दूंगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो (उसके हाथ छोड़ देती है) जाओ।" कुछ क्षणों के उपरान्त वह सिसकती हुई स्वमाता से यह कहती दृष्टिगोचर होती है—"देखो माँ! चारों ओर कितने गहरे मेघ घिरे हैं। कल ये मेघ उज्जयिनी की ओर उड़ जाएंगे। मैं रो नहीं रही हूँ माँ! मेरी आँखों से जो बरस रहा है, यह दुःख नहीं है। यह सुख है माँ, सुख!" मेघगर्जन और तीव्र वर्षा के शब्द के साथ प्रथम अंक समाप्त हो जाता है—अभिप्राय यह कि आषाढ़ के उस विशेष दिवस अर्थात् प्रथम दिन मल्लिका को आरम्भ में नूतन सुखानुभूति भी होती है और अन्ततः यह सुख-दुःखात्मक अनुभूति भी कि उसका प्रेमी उससे बिछुड़ रहा है। हाँ, उसका उद्देश्य भव्य होने के कारण मल्लिका उस दुःख को भी सुख ही समझती है।

द्वितीय अंक में मल्लिका उस प्रथम अंक वाले दिवस की जैसी ही सुखानुभूति की पुनरावृत्ति के लिए व्यग्र दृष्टिगोचर होती है—"आज वर्षों के अनन्तर तुम लौटकर आए हो! सोचती थी कि तुम आओगे तो उसी तरह

मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अँधेरा-सा दिन होगा, वैसे ही एक बार मैं वर्षा में भीगूंगी और फिर तुमसे कहूंगी कि देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं। × × × परन्तु आज तुम आए हो तो सारा वातावरण और है। और...और नहीं सोच पाती कि तुम भी वही हो या...।" और मल्लिका बिलखती रह जाती है किन्तु न तो आषाढ़ के प्रथम दिवस जैसी वर्षा ही होती है और न उसे स्व-प्रेमी का साहचर्य ही उपलब्ध होता है।

तृतीय अंक के आरम्भ में पुनः प्रथम अंक के समान पर्दा उठने से पूर्व मेघ-गर्जन और वर्षा का शब्द सुनाई देता है। और मल्लिका इस विचार में मग्न दृष्टिगत होती है—"वही आषाढ़ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गरज रहे हैं। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। परन्तु फिर भी...!" कि तभी भीगे वस्त्रों में वहाँ कालिदास प्रविष्ट होते हैं। वस्त्र बदलने के लिए कहने पर वे कह उठते हैं—"मेरे भीगने की चिन्ता न करो।... जानती हो, इस तरह भीगना भी जीवन की महत्त्वाकांक्षा हो सकती है? बहुत वर्षों के बाद भीगा हूँ, अभी सूखना नहीं चाहता।" इस प्रकार भीगने की तो मल्लिका की भी कितनी बलवती इच्छा थी, किन्तु उस अभागी की यह महत्त्वाकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकी। उसकी कुछ आशा अवश्य बँधती है जब कालिदास मल्लिका के साथ जीवन को पुनः अथ से आरम्भ करने की इच्छा व्यक्त करते हैं, किन्तु मल्लिका की बच्ची के रोने का शब्द सुनकर तथा विलोम से यह ज्ञात होने पर कि यह उसकी पुत्री है, कालिदास की इच्छा-लता मगरे नहीं चढ़ पाती। बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की चमक और वर्षा की झड़ी में कालिदास मल्लिका को छोड़कर चले जाते हैं। अपनी बच्ची को छाती से लगाकर चूमती हुई मल्लिका के दृश्य के साथ पर्दा गिर जाता है और प्रेक्षकों को बिजली की चमक तथा मेघ-गर्जन सुनाई देता रहता है। अतः नाटक की मूल संवेदना की दृष्टि से इस नाटक का नामकरण सर्वथा उपयुक्त और कलात्मक सिद्ध होता है।

प्रश्न ११—'आषाढ़ का एक दिन' को नाटकीय तत्त्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।

अथवा

'आषाढ़ का एक दिन' की नाटकीय तत्त्वों के आधार पर सफलता-असफलता की विवेचना कीजिए।

उत्तर—आलोच्य नाटक की नाटकीय तत्त्वों के आधार पर सफलता-असफलता का विवेचन करने से पूर्व नाटकीय तत्त्वों का परिज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। भारतीय आचार्यों ने 'वस्तुनेतारसतेषाम् भेदकः' के अनुसार नाटक के मुख्य तत्त्व तीन स्वीकार किए हैं—

(१) वस्तु
(२) नेता
तथा (३) रस

इन तत्त्वों के अतिरिक्त भारतीय काव्य-शास्त्र में चतुर्वर्ग में से किसी एक की फल (उद्देश्य) के रूप में प्राप्ति तथा 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम' के अनुसार नाटक की अभिनेयता को भी उसके गुण या तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है, जिससे भारतीय दृष्टि से नाटक के मुख्य अंग या तत्त्व पांच माने जा सकते हैं—

(१) वस्तु
(२) नेता
(३) रस
(४) अभिनय
तथा (५) उद्देश्य

पाश्चात्य काव्यशास्त्र रस की सत्ता से अनभिज्ञ रहा है। आध्यात्मिकता-प्रधान भारतीय जीवन में रस या आनन्द की महत्ता रही है जबकि भौतिकता-प्रधान पाश्चात्य जीवन में संघर्ष या द्वन्द्व को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका परिणाम यह निकला है कि वे संघर्ष या द्वन्द्व को त्रासदी का एक अनिवार्य तत्त्व स्वीकार करते हैं। इसीलिए भारत में जहाँ सुखान्त नाटकों की बहुलता है, वहीं पाश्चात्य जगत् में दुःखान्त नाटकों का बाहुल्य मिलता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने नाटक के निम्नांकित तत्त्व निर्धारित किए हैं—

(१) Plot अर्थात् कथावस्तु
(२) Characters अर्थात् पात्र और उनका चरित्रांकन
(३) Dialogue अर्थात् कथोपकथन
(४) Environment अर्थात देशकाल या वातावरण
(५) Diction अर्थात् भाषा-शैली
(६) Theme अर्थात् उद्देश्य
(७) Stage acting अर्थात् अभिनय

भारतीय और पाश्चात्य नाटकीय प्रतिमानों में विशेष अन्तर नहीं है। इन पाश्चात्य तत्त्वों में भारतीय काव्यशास्त्र के रस-तत्त्व का समन्वय कर लेने पर उनकी संख्या आठ हो जाती है। इन्हीं तत्त्वों की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' की आगे समीक्षा की जा रही है।

कथावस्तु—कथावस्तु नाटक का सर्वप्रमुख तत्त्व कहा जा सकता है, क्योंकि यही वह मूलाधार है जिसके माध्यम से घटनाओं का विकास, पात्रों का चरित्रांकन तथा उद्देश्य की प्राप्ति आदि तत्त्वों की योजना सम्भव होती है। कथानक के आधिकारिक और प्रासंगिक नामक दो भेद किए जाते हैं। आधिकारिक कथा का सम्बन्ध नायक और नायिका अर्थात् फल-प्राप्ति के अधिकारियों से होता है जबकि प्रासंगिक कथाएँ उस फल-प्राप्ति में सहायता पहुँचाती हैं। प्रासंगिक कथाओं के दो मुख्य भेद हैं- पताका और प्रकरी। पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक के मध्यवर्ती भाग से आरम्भ होकर कृति के अन्त तक चलती है तथा प्रकरी आधिकारिक कथा में सहयोग देकर पहले ही समाप्त हो जाती है। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक में मल्लिका और कालिदास सम्बन्धी कथा आधिकारिक कथा है। पताका और प्रकरी की इस नाटक में योजना नहीं की गई है और नाटक के सभी पात्रों का सम्बन्ध आधिकारिक कथा से ही जुड़ा हुआ है। हाँ, कहने के लिए दन्तुल और कालिदास, अनुस्वार और अनुनासिक, प्रियंगुमंजरी और मल्लिका, रंगिणी और संगिनी सम्बन्धी प्रसंग प्रकरी कहे जा सकते हैं तथा मातुल सम्बन्धी इतिवृत्ति को पताका कहा जा सकता है, किन्तु उनका आधिकारिक कथा से स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे आधिकारिक कथा से इस प्रकार जुड़ी हुई हैं कि उसी का अंश बन गई हैं।

स्रोत की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभेद किए जाते हैं—(१) प्रख्यात, (२) उत्पाद्य और मिश्रित। जिन नाटकों की कथावस्तु का मूलाधार ऐतिहासिक सामग्री, पुराण अथवा जनश्रुति होती है, उनकी कथावस्तु प्रख्यात कही जाती है। लेखक द्वारा अपनी कल्पनाशक्ति से निर्मित कथावस्तु उत्पाद्य कही जाती है जबकि मिश्रित में कल्पना और इतिहास पुराणादि की घटनाओं का समन्वय होता है। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक की कथावस्तु मिश्रित-कथावस्तु के वर्ग में परिगणित की जा सकती है, क्योंकि इसमें कालिदास के परम्परागत या प्रख्यात कथा को अपनाते हुए भी मल्लिका आदि पात्रों के सन्दर्भ में कल्पना का खुलकर प्रयोग किया गया है।

हाँ, उन्होंने इतिहास में कल्पना का संतुलित प्रयोग करके उसकी रम्यता को अभिवृद्ध कर दिया। इस विषय में स्वयं नाटककार के ही ये शब्द अवलोकनीय हैं—"इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता है, उन्हें एक समयतालिका में प्रस्तुत करता है। साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं (?)। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धि क्षेत्र नहीं है। × × × इस तरह साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता; घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है।" अभिप्राय यह कि मोहन राकेश ने प्रस्तुत कृति की कथावस्तु के स्वरूप-निर्धारण में अपनी कल्पना-शक्ति का ही अधिक आश्रय लिया है और ऐतिहासिक तथ्यों जैसे उज्जयिनी के गुप्त सम्राट् की पुत्री से कालिदास का विवाह, उनका काश्मीर का शासक नियुक्त होना आदि घटनाओं का उपयोग उस कल्पना-प्रसूत कथानक में विश्वसनीयता, स्वाभाविकता और सजीवता लाने के उद्देश्य से अभिनिवेश किया है।

चाहे किसी भी प्रकार की कथावस्तु क्यों न हो उसके विषय में इस तथ्य को ध्यान में रखना अनिवार्य होता है कि उसकी संभाव्यता को क्षति न पहुँचे, उसमें घटनाओं का विनियोजन इस रूप में किया गया हो, उनमें कार्य-कारण की ऐसी श्रृंखला विद्यमान हो कि अपने समग्र रूप में वह अविश्वसनीय न प्रतीत हो। इस दृष्टि से आलोच्य नाटक की कथावस्तु दोषमुक्त ही है। मल्लिका और कालिदास की प्रीति उनके नित्य-प्रति के साहचर्य का परिणाम है। भावनामयी मल्लिका यह निश्चय कर लेती है कि वह विवाह करेगी तो मात्र कालिदास से ही अन्यथा आजीवन कुंवारी रहेगी। वह कालिदास का मनसा वरण कर लेती है। कालिदास भी उसके प्रति आकृष्ट हैं किन्तु उनकी मल्लिका-सम्बन्धी प्रेम-भावना उनके आत्मकेन्द्रित और अहंवादी दृष्टिकोण के कारण उस रूप में मानसिक रोग नहीं बन पाती, जिस रूप में मल्लिका अपने तन-मन को उन पर न्यौछावर कर चुकी है। मल्लिका की माता अम्बिका उसे समझाती है कि 'भावना में भावना का वरण' आत्मवंचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है, कि कालिदास जैसा आत्मकेन्द्रित व्यक्ति उससे वास्तविक प्रेम न करके, उसके प्रेम के बहाने से अपनी अहं-तुष्टि ही कर रहा है, कि वह उससे विवाह

करने को प्रस्तुत नहीं होगा, किन्तु मल्लिका के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। कालिदास के ऋतुसंहार को पढ़कर उज्जयिनी-नरेश बड़े प्रसन्न होते हैं, और उन्हें अपना राजकवि नियुक्त करने की दृष्टि से आचार्य वररुचि को इस हेतु ग्राम-प्रान्तर को प्रेषित करते हैं कि वे उन्हें राजधानी लिवा लाएँ। कालिदास के उज्जयिनी जाने से पूर्व उनका मल्लिका के साथ विवाह करने की बात जोर पकड़ती है। विलोम यद्यपि स्वयं भी मल्लिका से प्रेम करता है किन्तु मल्लिका से इस दिशा में उपेक्षा और घृणा का व्यवहार पाकर चाहता है कि उसका कालिदास से ही विवाह हो जाए तो उत्तम है। वह अम्बिका से इस बात पर बल देता है मल्लिका और कालिदास के सम्बन्ध में जैसा लोकापवाद प्रसारित है, उसे दृष्टिगत करते हुए कालिदास के उज्जयिनी जाने से पूर्व ही उसके साथ मल्लिका का विवाह हो जाना चाहिए।

कालिदास राजकवि का पद स्वीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में राज्याश्रय में पहुँचना कुछ मुद्राओं के बदले अपनी कवि-प्रतिभा को बेच देना है। यह सोचकर वे जगदम्बा के मन्दिर में जा छिपे थे। निक्षेप के इस परामर्श को सुनकर कि यदि भावुकतावश कालिदास स्वर्णावसर से लाभ नहीं उठाते तो उनकी कवि-प्रतिभा को उत्कर्ष का अवसर नहीं मिलेगा और वे स्थानीय कवि मात्र रह जाएँगे, अतः मल्लिका को उन्हें राजधानी जाने के लिए विवश करना चाहिए—मल्लिका उन्हें समझा-बुझाकर अपने घर लिवा लाती है। विलोम उनके विवाह की बात करता है जिसे कालिदास यह कहकर टाल जाते हैं कि तुम दूसरों के जीवन में अनधिकार प्रवेश की चेष्टा कर रहे हो। मल्लिका स्वमाता से कह देती है कि इस अवसर पर मैं अपने विवाह की बात चलाकर अपनी स्वार्थ-वृत्ति का परिचय नहीं देना चाहती और वह नाना प्रकार के तर्क देकर कालिदास को राजधानी जाने के लिए विवश कर देती है।

जैसी कि संभावना थी कालिदास उज्जयिनी जाकर मल्लिका को सर्वथा भुला बैठते हैं। वे नरेश-दुहिता के साथ विवाह कर लेते हैं और नगर-जीवन की रंगीनियों में निमग्न हो जाते हैं। उन्हें जब काश्मीर का शासक नियुक्त किया जाता है, तो काश्मीर जाते हुए उनकी पत्नी प्रियंगुमंजरी इस उद्देश्य से कि वह उस ग्राम-प्रान्तर का कुछ वातावरण अपने साथ काश्मीर ले जा सकें, जहाँ की स्मृति आने पर कालिदास कई-कई दिवस तक उदासीन बने रहते हैं,

कालिदास के साथ ग्राम-प्रान्तर में आती है। मल्लिका और विलोम को यह आशा थी कि कालिदास मल्लिका से मिलने अवश्य आएँगे किन्तु वे ग्राम-प्रान्तर में आकर भी मल्लिका से मिलने नहीं आते। बेचारी मल्लिका तदर्थ छटपटाती ही रह जाती है। हाँ, उससे मिलने के लिए नरेश-पुत्री प्रियंगुमंजरी अर्थात् कालिदास की पत्नी अवश्य आती है और यह प्रस्ताव भी रखती है कि वह किसी राज्याधिकारी के साथ विवाह करके उनके साथ काश्मीर चले किन्तु मल्लिका इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वह इस प्रस्ताव को भी स्वीकार नहीं करती कि उसके घर का परिसंस्कार करा दिया जाए।

वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते जाते हैं। पुत्री के दुःख में घुल-घुल कर अम्बिका की जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। निराश्रिता मल्लिका को विवश होकर यह स्वीकृति देनी पड़ती है कि विलोम उसके यहाँ आए-जाए और उसके विलोम से एक पुत्री भी उत्पन्न हो जाती है। हाँ, वह कालिदास को अब भी नहीं भूली है। अपनी विपन्नावस्था में भी व्यवसायियों से उनकी रचनाएँ मँगा-मँगाकर पढ़ती रहती है और मन के व्याकुल होने पर उन ग्रंथों को ही उपालम्भ दे लेती है। उधर राजनीतिक स्थिति बिगड़ने पर कालिदास को राज्याच्युत होकर काश्मीर त्यागना पड़ता है। अपनी असहायावस्था में वे पुनः मल्लिका की ओर उन्मुख होते हैं और उसके साथ जीवन को अथ से आरंभ करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। तभी मल्लिका की पुत्री के रोने की आवाज आने लगती है। विलोम आकर स्पष्ट कर देता है कि यह मुझ से उत्पन्न कन्या है। कालिदास की अहंवादिता इस तथ्य को सहन नहीं कर पाती और वे मल्लिका को छोड़कर चले जाते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' की ऊपर जो कथासार दिया गया है उस पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि वह पूर्णतया संभाव्य और स्वाभाविक है, तथा उसकी सभी घटनाएँ कार्य-कारण शृंखला में आबद्ध हैं।

नाटक की कथावस्तु के अन्य उपेक्षित गुण हैं कि वह अधिक लम्बी न हो तथा रोचक हो। संक्षिप्ति की दृष्टि से आलोच्य नाटक की कथावस्तु पूर्णतया सफल है। उसमें मात्र तीन छोटे-छोटे ऐसे अंक हैं, जिनमें एक ही दृश्य है। इस तथ्य पर इसीलिये बल दिया जाया करता है कि लम्बी कथावस्तु के अभिनयीकरण में, अधिक समय लग सकता है जिसे प्रेक्षक देखते हुए ऊब उठेंगे, किन्तु 'आषाढ़ का एक दिन' के विषय में यह दोषारोपण नहीं किया

जा सकता। जहाँ तक रोचकता का प्रश्न है, इस नाटक में पाठक-प्रेक्षक बार-बार इस जिज्ञासा में तो नहीं पड़ते कि तदनन्तर क्या हुआ ? किन्तु प्रथम अंक में मल्लिका को छोड़कर कालिदास के चले जाने के अनन्तर हमें यह जानने की जिज्ञासा अवश्य रहती है कि उनका विवाह होता है अथवा नहीं। या कालिदास मल्लिका की स्मृति रखते भी हैं या जैसा कि विलोम का कहना है, राजधानी के व्यस्त जीवन की रंगरेलियों में ग्रस्त हो जाते हैं ? द्वितीय अंक के पश्चात् हम यह जानने को उत्कंठित रहते हैं कि मल्लिका के जीवन की अन्तिम परिणति क्या होती है ? अभिप्राय यह कि आलोच्य नाटक की कथावस्तु में रोचकता का भी अभाव नहीं है। जहाँ तक संघर्ष का प्रश्न है इस नाटक में वाह्य संघर्ष तो नहीं, हाँ पात्रों के हृदय में अंतर्द्वन्द्व या संघर्ष की स्थिति पर्याप्त मात्रा में मिलती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक की कथावस्तु में मौलिकता, रोचकता, संभाव्यता, संक्षिप्ति, सुसम्वद्धता आदि कथावस्तु के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान हैं और वह स्रोत की दृष्टि से मिश्रित कथावस्तु की श्रेणी में आती है।

पात्र और उनका चरित्रांकन—कुछ आलोचकों के मत में यह नाटक का सर्वप्रमुख तत्त्व होता है क्योंकि नाटक के माध्यम से पात्रों के सुष्ठु चरित्रांकन का ही प्रयास किया जाता है और उसमें कथावस्तु का उतना महत्त्व नहीं होता जितना पात्रों के चयन और उनके सम्यक् चरित्र-विकास का होता है। यदि इस तत्त्व को नाटक का सर्वप्रमुख तत्त्व न भी माना जाए, तो वह प्रमुख तत्त्व अवश्य है। पात्र और उनके चरित्रांकन के अपेक्षित गुण निम्नांकित हैं—

(क) पात्रों की संख्या कम हो।

(ख) नायक और नायिका का चरित्रांकन अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्ट हो।

(ग) पात्रों का चरित्र गतिशील हो।

(घ) पात्रों के चरित्र में असंभव मोड़ न दिखाया जाए।

(ङ) उनके चरित्र से हमारी विवेक-बुद्धि को आघात न पहुँचता हो।

इन दृष्टिकोणों से जब हम आलोच्य नाटक के पात्रों के चयन और उनके चरित्रांकन पर दृष्टिपात करते हैं तो नाटककार की कतिपय न्यूनताओं के होते हुए भी, चरित्रांकन की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक सफल ही सिद्ध होता है।

पात्रों की न्यूनता पर बल देने का कारण यह है कि पात्रों की संख्या अधिक होने पर प्रेक्षक उनके नाम और स्वरूप को याद नहीं रख पाते। जिन नाटकों में पात्रों की रेलमपेल रहती है, रंगमंच पर एक पात्र आता और एक पात्र जाता रहता है तो बेचारे प्रेक्षक यह समझने में असमर्थ हो जाते हैं कि सम्प्रति कौन पात्र रंगमंच पर आया हुआ है तथा नाटक की कथावस्तु में उसका क्या स्थान है। इस दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' में पात्रों की संख्या उचित ही है। मल्लिका, कालिदास, अम्बिका, विलोम और मातुल की गणना प्रमुख पात्रों में की जा सकती है जबकि निक्षेप, दन्तुल, प्रियंगुमंजरी, अनुस्वार और अनुनासिक, रंगिणी और संगिनी इसके गौण पात्र हैं। इन पात्रों में से अन्तिम छः पात्र तो मात्र एक बार ही रंगमंच पर आते हैं। मल्लिका ही इस नाटक का ऐसा पात्र है जो उसके तीनों अंकों के अधिकांश भाग में रंगमंच पर रहती है। मातुल और विलोम भी हमें तीनों अंकों में विद्यमान मिलते हैं, जबकि अम्बिका, कालिदास (द्वितीय अंक में घोड़े पर चढ़कर जाते हुए कालिदास की पीठ मात्र दिखाई देती है) और निक्षेप का अस्तित्व दो अंकों में मिलता है। अभिप्राय यह कि पात्रों की न्यून संख्या के कारण प्रेक्षकों के समक्ष उनको पहचानने या उनके नाम याद न रख पाने की समस्या नहीं उठ सकती।

वैसे तो नाटककार को नाटक के प्रत्येक पात्र के ही स्पष्ट चरित्रांकन का प्रयास करना चाहिये, किन्तु स्थानाभाव के कारण गौण पात्रों के चरित्र की रेखाएँ स्पष्टतया नहीं उभर पातीं। ऐसी दशा में नायक और नायिका का चरित्रांकन तो अवश्य ही सुस्पष्ट होना चाहिये। प्राचीनकालीन आचार्यों ने नायक और नायिकाओं की अनेक कोटियाँ और उनके गुण-विशेषों का निर्धारण किया था। उदाहरणार्थ नायकों की निम्नांकित चार प्रसिद्ध कोटियाँ थीं—

धीरोदात्त—इस श्रेणी के नायक के अपेक्षित गुण थे कि वह कुलीन हो, आत्मश्लाघी न हो, क्षमावान और गम्भीर प्रकृति का हो, उस पर जय-पराजय या हर्ष-शोक का प्रभाव न पड़ता हो। अभिप्राय यह कि वह अत्यधिक धैर्यवान हो, वह स्वाभिमानी और स्थिर चित्त हो, तथा अपने वचनों का पालन प्राणों की बाजी तक लगाकर करे। भगवान राम इस प्रकार के नायकों में शिरोमणि हैं।

धीरललित—उदात्त वृत्ति वाले ऐसे नायक को जो कलाओं का प्रेमी और कोमल स्वभाव का होता था, जिसकी मनोवृत्ति सुखान्वेषी और निश्चितता की होती थी, जो सुखमयी क्रीड़ाओं के लिये लालायित रहते हुए विलासमय जीवन व्यतीत करता हो। महाराज उदयन की गणना धीरललित नायकों में की जाती है।

धीरप्रशांत—धैर्यवान और शान्त स्वभाव वाले, मुख्यतया ब्राह्मण-वर्णीय नेता धीरप्रशांत वर्ग में परिगणित किए जाते थे। त्यागी भरत इसी प्रकार के नायक माने जाते हैं।

धीरोद्धत—धीर होते हुए भी मायावी, आत्मश्लाघी, अहंकारी तथा चंचल स्वभाव के नायक धीरोद्धत वर्ग में सम्मिलित किए गए हैं। दुर्योधन, भीमसेन, घटोत्कच, रावण आदि की गणना इसी प्रकार के नायकों के वर्ग में होगी।

नायकों के समान नायिकाओं में भी ऐसे ही तथा कुछ अन्य गुण अपेक्षित माने जाते थे, किन्तु आजकल नायक और नायिकाओं का चरित्रांकन इन परम्परागत लक्ष्यों के आधार पर नहीं किया जाता। पहले नायक की कुलीनता-सुन्दरता, युवावस्था, दक्षता आदि गुणों पर जो बल दिया जाता था—

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूप यौवनोत्साही,
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेज्जोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ।"

उनकी ओर आजकल कोई ध्यान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि सम्प्रति एक ग्रामीण किसान (गोदान का होरी) भी नायक हो सकता है और एक अंधा, अपढ़, वृद्ध (रंगभूमि का सूरा) भिखारी भी नायक हो सकता है। यह दूसरी बात है कि आलोच्य नाटक के नायक कालिदास में परम्परागत नायकों के कई गुण मिल जाते हैं जैसे वे युवा और रूप-यौवन उत्साही हैं, वाग्विदग्ध और कृती भी हैं, श्री अर्थात् लक्ष्मीवान भी हो जाते हैं और दक्ष भी हैं, किन्तु न तो वे त्यागी हैं (काश्मीर का राज्य वे स्वेच्छा से नहीं छोड़ते, उन्हें उसे छोड़ने को बाध्य किया जाता है), न उन्हें लोग अनुराग ही करते हैं, अम्बिका, विलोम और निक्षेप उनकी निन्दा करते मिलते हैं और वह उचित ही है (प्रेक्षक-पाठकों की दृष्टि में भी उनका चरित्र प्रशंसनीय नहीं है) न वे शीलवान हैं (उनका अधिकांश समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है, वे अपनी प्रेमिका को दिये वचन को भूल जाते हैं) और न वे पूर्णतया कुलीन ही कहे जा सकते हैं। वे परम्परागत नायकों में से धीर-

ललित नायकों की श्रेणी में स्थान प्राप्त करते हैं। जहाँ तक यह प्रश्न है कि नायक और नायिका का नाटककार को सुस्पष्ट चरित्रांकन करना चाहिए, इस दिशा में नाटककार को मल्लिका के चरित्रांकन में अधिक सफलता मिली है।

पात्र चरित्र-विकास की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं—(१) स्थिर, (२) गतिशील। स्थिर पात्र जैसे आरंभ में होते हैं, अंत तक प्रायः वैसे ही रहते हैं, उनके चरित्र में मोड़ नहीं आता। इसके विपरीत गतिशील पात्रों का चरित्र परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में बदलता रहता है। इस दृष्टि से आलोच्य-नाटक के अधिकांश पात्र स्थिर पात्रों के वर्ग में आते हैं। हाँ, तृतीय अंक में कालिदास और मल्लिका का चरित्र परिवर्तित परिस्थितियों में नये मोड़ लेता है। उसमें हमें यह ज्ञात होता है कि कालिदास राजधानी और काश्मीर में रहते हुए भी वहाँ के जीवन से संतुष्ट नहीं रहे हैं, उनका अंतर्मन ग्राम-प्रान्तर की ओर ललकता रहता है, तथा मल्लिका को भी वे कभी भुला नहीं पाए हैं। मल्लिका प्रायः समस्त नाटक में कालिदास-सम्बन्धी प्रेम की माला जपती रहती है, किन्तु नाटक के अंत में वह अपनी बच्ची को वक्ष से सटाकर आवेश-पूर्वक चूमती दृष्टिगत होती है, जिससे स्पष्ट होता है कि अब उसने स्वयं को बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल ढालने का संकल्प कर लिया है।

जहाँ तक पात्रों के चरित्रांकन के असंभव प्रतीत होने तथा उससे हमारी विवेक-बुद्धि को आघात पहुँचने का प्रश्न है, यह कहना होगा कि इन दृष्टियों से कालिदास का चरित्रांकन सफल नहीं बन पड़ा है। एक भावुक कवि से हम वैसे व्यवहार की आशा नहीं करते थे, जैसा वह मल्लिका के साथ करते चित्रित किये गये हैं। अन्य पात्रों का चरित्रांकन इन दृष्टिकोणों से उपयुक्त ही है।

देशकाल अथवा वातावरण—'आषाढ़ का एक दिन' ऐतिहासिकता का पुट लिये हुए है, इस दृष्टि से उसमें देशकाल अथवा वातावरण के अंकन की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए था। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पर्वतीय प्रदेश में लकड़ी के बने घरों की दीवारों के चिकनी मिट्टी से पुते होने, दीवारों और किवाड़ों पर स्वस्तिक, कमल तथा शंखों के चित्र बने होने, बरतनों में मिट्टी और काँसे के बरतनों का उल्लेख करने जैसे थोड़े-से तथ्यों के अतिरिक्त नाटककार ने इस ओर जागरूकता नहीं दिखाई है कि गुप्तकालीन

सामाजिक जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ सके। उसमें राजनीतिक अस्थिरता आदि विषयक जो उल्लेख मिलते हैं, वे किसी भी काल के राजनीतिक जीवन पर लागू हो सकते हैं। अभिप्राय यह कि आलोच्य नाटक का यह पक्ष दुर्बल है।

कथोपकथन—मोहन राकेश को रंगमंच पर अभिनय करने और रंगमंच-सज्जा आदि का प्रत्यक्ष अनुभव है, यही कारण है कि उनके कथोपकथनों की योजना नाटकीय दृष्टि से पूर्ण सफल है। कथोपकथनों की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित स्वीकार की जाती हैं—

(१) उनसे कथा का विकास होता हो।
(२) वे पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालते हों।
(३) वे पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल हों।
(४) वे संक्षिप्त और सजीव हों।
(५) उनमें व्यंग्यात्मकता और वाग्वैदग्ध्य का पुट हो।
(६) उनमें लम्बे-लम्बे स्वगतकथन न हों।

इन दृष्टिकोणों से 'आषाढ़ का एक दिन' के कथोपकथनों पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि उनमें प्रायः ये सभी गुण विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ दन्तुल और मल्लिका के वार्तालाप से इस तथ्य का उद्घाटन होता है कि कालिदास को राजकवि के रूप में समादृत करने के उद्देश्य से, उन्हें उज्जयिनी-नरेश ने आचार्य वररुचि को ग्राम-प्रान्तर में भेजकर बुलाया है। निक्षेप और मल्लिका के वार्तालापों से इस तथ्य का परिचय मिल जाता है कि कालिदास जगदम्बा के मन्दिर में छिपे हुए हैं, तथा यह कि उन्होंने नरेश पुत्री से विवाह कर लिया है और उनके विषय में यह अपवाद प्रचलित है कि वे वारांगनाओं के साहचर्य में रहते हैं। इसी प्रकार मल्लिका और मातुल के वार्तालाप द्वारा कालिदास के काश्मीर-त्याग की घटना का पता लग जाता है। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटक कथोपकथनों में मल्लिका और अम्बिका के वे कथोपकथन लिए जा सकते हैं जिनसे कालिदास की अहंप्रियता और मल्लिका के कालिदास-सम्बन्धी निश्छल प्रेम का स्पष्टीकरण हो जाता है। दन्तुल और कालिदास के कथोपकथनों में कालिदास की परदुःखकातरता तथा दन्तुल की गिरगिटी मनोवृत्ति का पता लग जाता है। इसी प्रकार मातुल

विलोम, प्रियंगुमंजरी आदि पात्रों के कथनों से उनके चारित्रिक गुणावगुणों का परिचय मिल जाता है।

पात्रों की मनःस्थिति की दृष्टि से मल्लिका का यह कथन देखा जा सकता है जो उसकी हर्षोल्लासमयी मनःस्थिति के अनुकूल ही काव्यात्मकता का पुट लिए हुए है—"नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय। मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूं और आँखें मूंद लूं। × × × माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी।" इसी प्रकार अम्बिका की कालिदास सम्बन्धी वितृष्णा तथा मल्लिका-सम्बन्धी आक्रोश उसके इस कथन से छलके पड़ रहे हैं—

"मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था न होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?" इसी प्रकार सुरापान करके आये विलोम की भाषा में शराबियों जैसी-ही अहंवादिता है—

"भीगे दिन में फिसल कर गिरे और गिरे खाई में।···कितनी बार कहा है भैया विलोम, बहुत ऊँचे मत चढ़ा करो। परन्तु भैया विलोम क्यों मानने लगे? पहले आये तो द्वार बन्द। लौट कर गये और फिसल गये। फिर आये तो फिर द्वार बन्द। फिर लौट कर जाते तो क्या होता? आज का दिन ही ऐसा है कि···न जाने आँखों को क्या हो गया है? कभी अपरिचित आकृतियाँ बहुत परिचित जान पड़ती हैं और कभी परिचित आकृतियाँ भी परिचित नहीं लगतीं।···अब यह इतनी परिचित आकृति है और इसे मैं पहचान ही नहीं रहा। आकृति जानी हुई है और व्यक्ति नया-सा लगता है। क्यों बन्धु, तुम मुझे जानते हो?"

संक्षिप्त कथोपकथनों के उदाहरणस्वरूप अनुनासिक और अनुस्वार का यह वार्तालाप लिया जा सकता है जिससे हास्य का भी उद्रेक होता है—

अनुस्वार—ये वस्त्र ?

अनुनासिक—ये वस्त्र गीले हैं, इसलिये इन्हें नहीं हटाना चाहिये।

अनुस्वार—क्यों ?

अनुनासिक—शास्त्रीय प्रमाण ऐसा है।

अनुस्वार—कौन-सा प्रमाण है ?

अनुनासिक—यह तो मुझे स्मरण नहीं।

अनुस्वार—यह स्मरण है कि ऐसा प्रमाण है ?

अनुनासिक—हां।

अनुस्वार—तो ?

अनुनासिक—तो संदिग्ध विषय है।

अनुस्वार—हाँ, तब तो संदिग्ध विषय है।

आलोच्य नाटक के तृतीय अंक में मल्लिका का एक लम्बा स्वगत-कथन अवश्य है किन्तु उसके बीच-बीच में नाटककार ने उसको ऐसी चेष्टाएँ करते दिखाया है जैसे कभी ग्रन्थ को घुटनों पर रखना, कभी उसकी ओर उद्विग्न भाव से देखना, कभी झरोखे से टेक लगाकर बाहर की ओर देखना, कभी अपनी पुत्री की ओर संकेत करना कि यह लम्बा स्वगत कथन भी अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होता है। कथोपकथनों में व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से भी आलोच्य नाटक के कथोपकथन सफल हैं। कुछ पात्रों की व्यंग्यात्मक उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

अम्बिका—(क) "मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है।"

(ख) "और मैं घर में दुकेली कब होती हूँ। तुम्हारे यहाँ रहने पर मैं अकेली नहीं होती ?"

मातुल—"मैंने कहा कविवर आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने के लिये आये हैं।"

भाषा-शैली—भाषा-शैली के कुछ गुण तो कथोपकथनों के ही इन गुणों से साम्य रखते हैं कि वह पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल हों; तथा उसमें व्यंग्यात्मकता और वाक्-विदग्धता का पुट हो। इसके अतिरिक्त भाषा-शैली के अन्य अपेक्षित गुण हैं कि वह सरल, सुबोध और प्रवाहमयी हो, तथा उसमें कहावतों, मुहावरों और अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया गया हो।

आलोच्य नाटक की भाषा-शैली इन निकषों पर सफल ही उतरती है। सरल-सुबोध एवं प्रवाहमयी होने के साथ-साथ सरसता से ओत-प्रोत भाषा-शैली का यह उदाहरण अवलोकनीय है—

कालिदास—"स्थान-स्थान पर इन पर पानी की बूंदें पड़ी हैं, जो निःसन्देह वर्षा की बूंदें नहीं हैं। लगता है तुमने अपनी आंखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और आंखों से ही नहीं स्थान-स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद-कणों से मैले हुए हैं। स्थान-स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिए हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दांतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के-गहरे रंग, हेमन्त की पत्रधूलि और इस घर की सीलन···ये पृष्ठ अब कोरे कहां हैं मल्लिका ? इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है···अनन्त सर्गों के महाकाव्य की।"

आलोच्य कृति की भाषा-शैली में मुहावरों की बहुलता तो नहीं है, किन्तु उनका अभाव भी नहीं है। उसमें तिल-तिल कर गलना, तीसरा नेत्र खुला रहना, आंखें गीली होना, धर्मसंकट में पड़ना, नाटक रचना आदि मुहावरों का प्रयोग मिलता है। इस कृति की भाषा स्वाभाविक अलंकारों से अलंकृत भी है। उदाहरणार्थ कुछ अलंकृत वाक्य नीचे दिये जा रहे हैं—

श्लेष—कल ये मेघ उज्जयिनी की ओर उड़ जायेंगे।

मालोपमा—नील कमल की तरह कोमल आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय.।

उत्प्रेक्षा—मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिये नहीं हूं, ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएं आपके विरह में घुली जा रही हों।

रसात्मकता—भारतीय आलोचनाशास्त्र में नाटक की रसमयता पर विशेष बल दिया गया है और रसानुभूति का तथ्य मूलतया नाटकों से ही अधिक सम्बन्ध रखता है। रसात्मक भावाभिव्यंजना की दृष्टि से आलोच्य-नाटक पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि इसमें उदात्त शृंगार-रस की धारा प्रवाहित हो रही है। डॉ० कृष्णदेव झारी के शब्दों में—"यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि 'आषाढ़ का एक दिन' की नाट्य सफलता और

शक्ति इसी बात में है कि उसमें उदात्त भागों या उदात्त रसों की मार्मिक व्यंजना पाई जाती है। इसका अंगीरस उदात्त शृंगार रस है। आरंभ से अंत तक इसी शृंगार रस की व्याप्ति नाटक में पाई जाती है। यह शृंगार रस कोरा अनुरंजनकारी संभोग शृंगार नहीं है—कोरा रस नहीं है, उदात्त शृंगार रस है, उदात्त रस है। यह रीतिकालीन स्थूल ऐन्द्रिय या ऐकान्तिक शृंगार नहीं है। इसमें प्रिय के लिए कष्ट सहिष्णुता, प्रिय की मंगलकामना, निस्वार्थभावना तथा लोक-भावना आदि जीवन की उदात्त वृत्तियाँ समाविष्ट हैं।" कहना न होगा कि उदात्त शृंगार रस मल्लिका की कालिदास सम्बन्धी उदात्त प्रेम-भावना में व्याप्त है, जिसके प्रेम की निश्छलता, तीव्रता, निस्वार्थता आदि वृत्तियाँ हमें अभिभूत कर लेती हैं। त्यागमयी मल्लिका स्वमाता और विलोम की कटूक्तियों को सुनकर भी इस हेतु प्रस्तुत नहीं होती की वह अपने प्रेमी कालिदास के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखकर अपनी स्वार्थभावना का परिचय दे। कालिदास द्वारा ग्राम-प्रान्तर में आकर भी उससे मिलने न आने पर भी वह यह नहीं सहन कर सकती कि उसकी माता कालिदास की निन्दा करे। उसे स्व-प्रेमी द्वारा प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लेना भी प्रेम-मार्ग से विचलित नहीं कर पाता, उसके द्वारा उसे सर्वथा भुलाकर काश्मीर का शासन-सूत्र सँभाल लेने पर भी उसके प्रेम में न्यूनता नहीं आती। यही कारण है कि उसके इस उदात्त प्रेम की अंततः विजय होती है और कालिदास को यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैंने जो कुछ भी लिखा है, उसकी मूल प्रेरणा तुम्हीं रही हो—मेघदूत की विरह-विमर्दिता यक्षिणी और कुमारसंभव की उमा और अभिज्ञान शाकुन्तल की शकुन्तला तुम्हीं हो। इसके अतिरिक्त इस नाटक में करुण, हास्य, वात्सल्य और वीभत्स रस की भी अभिव्यंजना मिलती है। अम्बिका की दरिद्रता और जर्जरता का वर्णन हमारे मन में करुणोद्रेक करता है, अनुस्वार और अनुनासिक की बातें हास्य का उद्रेक करती हैं, अम्बिका की स्वपुत्री विषयक चिन्ता में वात्सल्य भाव का पुट है जबकि अम्बिका द्वारा राजपुरुषों को देखकर कही उक्ति, तथा मद्यप विलोम के प्रति घृणा का उद्रेक होता है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक में रसात्मक एवं भावपूर्ण स्थलों का भी अभाव नहीं है।

अभिनेयता—कथावस्तु, पात्र और उनका चरित्रांकन, देशकाल अथवा वातावरण, कथोपकथन और भाषा-शैली तथा उद्देश्य ऐसे तत्त्व हैं जो कहानी और उपन्यासों के संदर्भ में भी आवश्यक होते हैं। हाँ नाटकों के संदर्भ में

अभिनेयता उनका 'विशिष्ट है। यद्यपि कुछ नाटक ऐसे भी लिखे गये हैं जो अभिनेय न होकर पाठ्य ही हैं, किन्तु इस तथ्य को नाटक का दोष ही मानना उचित है, कि उसका अभिनय नहीं हो सकता। अभिनेयता की दृष्टि से नाटक के अपेक्षित गुण निम्नांकित हैं--

(क) उसका कथानक जटिल न होकर सरल हो।
(ख) उसका आकार संक्षिप्त तथा पात्रों की संख्या कम हो।
(ग) उसमें अंकों और दृश्यों की ऐसी योजना न हो कि रंगमंच-सज्जा में कठिनाई पड़े।
(घ) उसमें अरुचिकर और असंभव घटनाएँ न हों।
(ङ) उसमें हास्य-व्यंग्य का पुट हो।
(च) उसके कथोपकथन संक्षिप्त, सरल और सजीव हों।
(छ) उसकी भाषा सरल और प्रवाहमयी हो।
(ज) उसमें किसी गहन दार्शनिक गुत्थी को सुलझाने का प्रयास नहीं किया गया हो।

उपर्युक्त तथ्यों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि ये प्रायः वही विशेषताएँ हैं जिस पर नाटक के विभिन्न तत्त्वों की दृष्टि से विचार करते हुए पीछे विचार किया जा चुका है और जिन निकषों पर 'आषाढ़ का एक दिन' एक सफल नाट्य-कृति सिद्ध होती है। उसकी अभिनय की दृष्टि से सफलता के विषय में पुनः कहा जा सकता है कि इसका कथानक सरल और संक्षिप्त है। इसमें मात्र तीन अंक हैं और उनमें भी अनेक दृश्य न होकर मात्र एक-एक दृश्य है। इसके अभिनयीकरण के लिये रंगमंच सज्जा विषयक नाटककार ने जो निर्देश किये हैं, उनकी सहायता से थोड़े-से ही हेर-फेर से इस नाटक का सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। विकसित रंगमंच का तो कहना ही क्या, इसे स्कूल-कॉलेजों के साधारण रंगमंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनीत किया जा सकता है और किया भी गया है। इसके कथोपकथन संक्षिप्त, सरल एवं सजीव हैं, भाषा सरल और प्रवाहमयी है तथा हास्य-व्यंग्य का भी पर्याप्त पुट है। इसमें किसी गहन दार्शनिक गुत्थी को सुलझाने का भी प्रयास नहीं किया गया है। अभिप्राय यह कि अभिनेयता की दृष्टि से आलोच्य नाटक पूर्णतया सफल है।

उद्देश्य—प्रत्येक साहित्यिक कृति का भी इसी प्रकार कुछ-न-कुछ उद्देश्य

हुआ करता है जैसे हमारे कार्य निष्प्रयोजन नहीं हुआ करते। हाँ, उद्देश्य की दृष्टि से नाटक आदि सभी कृतियों से इस तथ्य की अपेक्षा रहती है, कि उनमें कृतिकार उपदेशक के समान उपदेश न बघारने लगे अपितु अपने उद्देश्य को प्रच्छन्न रीति से पाठक-प्रेक्षकों को हृदयंगम करा दे। अभिप्राय यह है कि कृतिकार घटनाओं, तथ्यों और विचारों की ऐसी संयोजना करे, कि अपने उद्देश्य के विषय में उसके द्वारा कुछ भी न कहने पर विज्ञ पाठक उस सारभूत प्रभाव को ग्रहण कर सकें, जिसको मूलाधार बनाकर उसने उस कृति की रचना की है। इस दृष्टि से भी आलोच्य कृति सफल नाटक सिद्ध होती है। इसमें नाटककार ने प्रच्छन्न रीति से भावनामयी नारी जाति की अहंवादी आत्मकेन्द्रित पुरुष-वर्ग द्वारा होने वाली दुर्गति के प्रति पाठक-प्रेक्षकों की करुणा और समवेदना को उभारने में सफलता प्राप्त की है। राज्याश्रय कलाकारों की प्रतिभा को विकसित करने का साधन होने के स्थान पर उसे कुंठित करने का ही कारण बनता है, इस तथ्य को भी नाटककार ने कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा अभिव्यंजित किया है। सारतः कहा जा सकता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' एक सफल नाट्यकृति है।

महत्वपूर्ण स्थलों की व्याख्या

(१) नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूं और आंखें मूद लूं। (पृ० ८)

शब्दार्थ—नील-कमल = नीला कमल। आर्द्र = गीला, सिक्त। चित्रमय = रंग-बिरंगा, सुन्दर। भर लूं = समाहित कर लूं।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से अवतरित है। स्व-प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा-विहार करके लौटी मल्लिका अपनी माता को वर्षा में भीगने के अनुभव को अद्भुत बताती हुई उल्लसित स्वर में कहती है—

कि माँ जल से भरे हुए बादलों से आवृत आकाश का दृश्य नील-कमल की भाँति कोमल और सीजा हुआ, पवन के समान हल्का और स्वप्नवत् सुहावना एवं मनोरम प्रतीत हो रहा था। वह वातावरण इतना चित्ताकर्षक एवं मनोहर था कि मेरी यह बलवती इच्छा जाग्रत हो उठी थी कि किसी प्रकार उस दृश्य को अपने तन-मन में समाहित कर लूँ, उसका अपने नेत्रों के माध्यम से अनुपान करके अपने नेत्रों को बन्द कर लूं जिससे वह मुझसे पृथक् न हो सके। अभिप्राय यह कि मैं उस दृश्यावली का अनवरत अवलोकन करने को उत्कंठित हो उठी थी।

विशेष—(क) यह एक अनुभूत तथ्य है कि अपनी मनःस्थिति के समान ही हमें वाह्य प्राकृतिक वातावरण सुख-दुःखात्मक प्रतीत हुआ करता है। चूंकि मल्लिका अपने प्रियतम के साथ वर्षा-विहार का सुख भोग रही थी अतः उसे आकाश की मेघराशि भी अत्यंत मनोरम प्रतीत हो रही थी।

(ख) इस अवतरण की भाषा बड़ी आकर्षक और भावमयी है।

(ग) इनमें मालोपमा अलंकार है।

(२) माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना की कविता को रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत-शिखरों को सहलाती मेघ-मालाओं में खो जाता

है, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है। (पृ० ८)

शब्दार्थ — साक्षात्कार = दर्शन, अवलोकन। अस्पृश्य = जिसे छुआ न जा सके। मांसल = मांसयुक्त, शरीरधारी। भावना = मन का अनुभव, धारणा। पर्वत-शिखरों = पहाड़ों की चोटियें। मेघ-मालाओं = बादलों की घटाएँ। अपेक्षा = मुकाबले। मोह = आकर्षण, लगाव।

सप्रसंग व्याख्या—उपर्युक्त पंक्तियों के समान प्रस्तुत पंक्तियों में भी अपने प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा-विहार करके लौटी मल्लिका अपने तत्कालीन अनुभवों का उल्लसित स्वर में वर्णन सुनाते हुए कहती है—

माँ, मुझे स्व-जीवन में आज ऐसी अनिर्वचनीय सुखानुभूति हुई है कि उसको मैं आजीवन नहीं भूल पाऊँगी। आज से पूर्व मुझे कभी भी ऐसी सौंदर्य-सुषमा के दर्शन नहीं हुए थे। उस सौंदर्य की विचित्रता यह थी कि यद्यपि हम उसे स्पर्श नहीं कर सकते थे, तथापि वह पूर्णतया सजीव और मूर्तिमान प्रतीत होता था। अभिप्राय यह कि वह अशरीरी होते हुए भी शरीरी, अमांसल होते हुए भी मांसल, तथा अस्पृश्य होते हुए भी स्पृश्य होता था। उसे देखकर यह अनुभव होता था मानो वह सजीव है। माँ, मैं उस सौन्दर्य को देखने, छूने और अनुपान करने में सक्षम थी—अभिप्राय यह कि मैं उसका सर्वथा उपभोग कर सकती थी, उसे अपने मन प्राणों में समाविष्ट कर सकती थी। उस सौन्दर्य का अवलोकन करने पर ही मैं यह समझ सकी कि वह कौन-सी शक्ति है, जिसके प्रताप से हमारी अनुभूतियाँ कविता के रूप में अभिव्यक्त हो उठती हैं। मैं आज ही इस तथ्य से परिचित हो पाई हूँ कि कैसे कोई व्यक्ति गिरि-शिखरों को स्पर्श करने वाली घटाओं के सौन्दर्य का अवलोकन करते हुए आत्म-विस्मृत हो उठता है— उनके सौन्दर्य के प्रवाह में बहते हुए स्वयं को भूल जाता है। वह कैसा सौन्दर्य होता है जिसे देखते हुए हमें अपने तन-मन की स्मृति विस्मृत हो जाती है—हम प्राकृतिक सौन्दर्य-सुधा का अनुपान करते हुए आकाश में मेघों के बनते-मिटते चित्रों को देखकर आत्मविस्मृत हो उठते हैं।

विशेष — (क) आषाढ़ के प्रथम दिवस जब ज्येष्ठ माह की तप्त-लूओं के पश्चात् प्रथम बार मेघ-घटाओं के दर्शन हुए हैं, उन मेघ-घटाओं का अत्यधिक मनभावन और आकर्षक प्रतीत होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस पर मल्लिका के आनन्दोल्लास का तो एक अन्य कारण भी उपस्थित था और वह था उसके

प्रेमी कालिदास की उपस्थिति। अतः मल्लिका ने प्रस्तुत पंक्तियों में जिस अनिवर्चनीय सौन्दर्य-सुषमा का वर्णन किया है, वह पूर्णतया स्वाभाविक है।

(ख) इन पंक्तियों में से मल्लिका की कालिदास-सम्बन्धी प्रेम-भावना भी झलक रही है।

(ग) अलंकार—उत्प्रेक्षा और मानवीकरण।

(३) जाने क्या कर रहे हैं।····कभी वर्षों में ये आकृतियां यहाँ दिखाई देती हैं और जब भी दिखायी देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है। कभी युद्ध की सूचना आती है, कभी महामारी की। लंबी सांस लेती है। पिछली महामारी में जब तुम्हारे पिता की मृत्यु हुई, तब भी मैंने ये आकृतियां यहाँ देखी थीं।

(पृ० ११)

शब्दार्थ—आकृतियां=शक्लें। अनिष्ट=अमंगल, बुराई, हानि। महामारी=भयंकर बीमारी। सिहर=कांप।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियां मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत हैं। मल्लिका और अम्बिका बातें कर रही होती हैं कि तभी उन्हें अश्वारोही राजपुरुष दिखाई देते हैं। उन्हें देखकर मल्लिका स्वमाता से यह प्रश्न करती है कि ये लोग कौन हैं और यहाँ क्या कर रहे हैं—क्योंकि मल्लिका ने इससे पूर्व राजपुरुष नहीं देखे हैं। मल्लिका को समझाती हुई अम्बिका उपेक्षापूर्वक कहती है—

ज्ञात नहीं ये लोग यहाँ क्या करने आए हैं, इन लोगों की शक्ल वर्षों में कभी-कभी ही दिखाई देती है और जब भी दिखाई देती है उसका कुछ-न-कुछ अशुभ परिणाम ही निकलता है। जब कभी ये लोग दिखाई पड़ते हैं, तभी या तो यह सूचना मिला करती है कि युद्ध होने वाला है और यदि युद्ध नहीं होता तो किसी-न-किसी प्रकार की भयंकर बीमारी फैल जाती है। मल्लिका के पिता की ऐसी ही महामारी में मृत्यु हुई थी, जिसकी स्मृति सजग हो उठने के कारण अम्बिका दीर्घ सांसें लेने लगती है और कुछ क्षण रुककर स्वपुत्री को बताती है कि जब विगत महामारी में तुम्हारे पिता का देहावसान हुआ था, तब भी मैंने इन लोगों को यहाँ देखा था।

विशेष—अब से कुछ वर्षों पूर्व ही ग्रामों में पुलिस के किसी सिपाही तक का जा पहुँचाना आंतक और त्रास का निमित्त बन जाता था। प्रायः यही दशा गुप्तकाल में भी थी, जब लोग राजपुरुषों से भयभीत रहते थे और उन्हें घृणास्पद

दृष्टि से देखते थे। प्रस्तुत पंक्तियों में अम्बिका ने राजपुरुषों का सम्बन्ध युद्ध और महामारी से जोड़कर अपनी इस घृणा का ही प्रकाशन किया है।

(४) क्या कहते हैं ? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का ? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है ? (पृ० १२)

शब्दार्थ—आलोचना=टीका-टिप्पणी, निन्दा।

सप्रसंग व्याख्या—स्वमाता के इस कथन को सुनकर कि उसने अग्निमित्र को उसका विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर आने के लिए भेजा था, मल्लिका कहती है कि मैं विवाह ही नहीं कराना चाहती। यह सुनकर कुछ क्षुब्ध होकर अम्बिका कहती है कि मुझे तो तुम्हारा यह कथन ही सत्य सिद्ध होता प्रतीत होने लगा है, क्योंकि वर-पक्ष वालों ने सम्बन्ध को अस्वीकार करते हुए कहा है। ...मल्लिका स्वमाता की बात को बीच में ही काट देती है, क्योंकि वह भाँप लेती है कि उन्होंने मेरे और कालिदास के प्रेम-सम्बन्ध के विषय में कुछ आक्षेप किया होगा। वह उत्तेजित होकर कह उठती है—

उन्होंने क्या कहा है ? तथा उन्हें मेरे सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार ही कहाँ है ? वे मेरे सम्बन्ध में कुछ कहने वाले कौन होते हैं ? उन्हें इसका अधिकार ही कहाँ है क्योंकि अपने जीवन को मैं अपनी थाती समझती हूँ और यह मानती हूँ कि अपनी जीवन रूपी थाती को मैं जैसे भी चाहूँ उसी रूप में विनष्ट कर सकती हूँ। यदि मैं अपने जीवन को विनष्ट भी करना चाहूँ, तब भी मैं यह नहीं समझती कि वे अधिकार से मेरे विषय में उचित-अनुचित टीका-टिप्पणी कर सकते हैं ? अभिप्राय यह कि मैं स्वेच्छानुसार जो भी करना चाहूँ उसके विषय में वर-पक्ष के लोग अभी से कुछ कैसे कह सकते हैं, क्योंकि न तो मैं विवाह ही कराना चाहती हूँ और न उन लोगों से अपना कुछ भी सम्बन्ध ही समझती हूँ।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों में मल्लिका के तेजस्वी रूप की झाँकी मिलती है।

(ख) इन पंक्तियों से मल्लिका के कालिदास-सम्बन्धी प्रेम का भी संकेत मिलता है, क्योंकि उसी कारण वह किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह कराना नहीं चाहती।

(५) मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है। (पृ० १३)

शब्दार्थ—अपवाद=निन्दा। अपराध=दोष। वरण=विवाह। भावना=हृदय की धारणा। सम्बन्ध=रिश्ता। अनश्वर=अमर।

सप्रसंग व्याख्या—मल्लिका द्वारा बार-बार पूछे जाने पर अम्बिका यह स्पष्ट कर देती है कि उसके और कालिदास के सम्बन्धों को लेकर ग्राम-प्रान्तर में जो निन्दित बातें फैली हुई हैं, उनके कारण उसे बड़ा मानसिक क्लेश सहन करना पड़ता है। यह सुनकर अपने भावनामय और अमर प्रेम का पक्ष-समर्थन करती हुई मल्लिका कहती है—

माँ, मुझे भी यह तथ्य विदित है कि मेरे और कालिदास के सम्बन्ध में लोग तरह-तरह की भली-बुरी बातें कहते हैं, तथा मुझे यह भी ज्ञात है कि इससे तुम्हें कितना मानसिक आघात पहुँचता है, तथापि मैं स्वयं को अपराधिनी नहीं समझती—मुझे इसमें अपना कुछ भी दोष नहीं दिखाई देता। कारण यह है कि मेरा प्रेम वासनात्मक और शरीरी न होकर भावनात्मक है, मैं और कालिदास एक दूसरे की ओर ऐन्द्रिय-भोगों की दृष्टि से आकृष्ट न होकर परस्पर भावात्मक-प्रेम के सूत्रों में आबद्ध हैं। मैं तो वस्तुतया भावनामय प्रेम की पुजारिन हूँ और अपनी इस प्रेम-भावना को ही सर्वोपरि समझती हूँ। यह कहना अनुचित न होगा कि कालिदास-सम्बन्धी मेरे हृदय में जो श्रद्धा और प्रेम की भावना है, मैं अपनी उस भावना से ही अनुराग करती हूँ और उसे पावन, मृदुल और शाश्वत भी समझी हूँ—अभिप्राय यह कि मेरी यह प्रेम-भावना निष्कलुष और अमर है, वह लोकापवादों के भय से नहीं टूट सकती।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों से मल्लिका के चरित्र के इन पक्षों का उद्घाटन होता है कि—

(क) वह अत्यधिक भावुक मनोवृत्ति की है।

(ख) उसमें दृढ़ता और आत्मविश्वास है।

(ग) उसका कालिदास-सम्बन्धी प्रेम भावनामय और शाश्वत है।

(६) हम जिएँगे हरिणशावक ! जियेंगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नही देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण भी दे सकता है। हमें नये प्राण मिल जायेंगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल हम फिर वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खायेंगे न ? (पृ० १५)

शब्दार्थ—हरिणशावक=मृगछौना। आहत=घायल। आस्तरण= विछौना। घृत=घी। वनस्थली=जंगल। दूर्वा=दूब, घास।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत गद्यांश श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से अवतरित है। प्रस्तुत पंक्तियों के भावों को व्यक्त करते हुए इस नाटक के नायक कालिदास रंगमंच पर प्रथम बार पदार्पण करते हैं। जिस हरिण के वच्चे को वह अपनी गोद में उठाए हुए हैं, वह दन्तुल के तीर से आहत हुआ है। उस हरिणशावक से कालिदास इस प्रकार वार्तालाप करते हुए प्रकट होते हैं, मानो वह कोई मानव-शिशु हो और उनकी बातों को समझ रहा हो। वे कहते हैं--

अरे मृगछौने ! तुम्हें भयभस्त होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कोई हमें मार नहीं सकता। हम इतने दुर्बल नहीं हैं कि कोई हमें एक ही बाण के प्रहार से मार गिराए। यह सत्य है कि हमारा शरीर अतीव मृदुल है, किन्तु हमारा मन अथवा हमारे प्राण इतने दुर्बल-कोमल नही हैं कि हम बाण लगने की पीड़ा को भी नहीं सह सकें। जहाँ वाण में प्राण लेने की शक्ति होती है वहाँ उँगलियों के मृदुल स्पर्श में भीं तो इतनी क्षमता हो सकती है कि वे मरते प्राणी को जीवन-दान दे सकें। इसीलिए हमें नवजीवन उपलब्ध होने की पूर्ण आशा है। अब हम जाकर मृदुल बिछौने पर विश्राम करेंगे। किसी की (मल्लिका की ओर इंगित है) कोमल उँगलियाँ हमारे शरीर पर घी का लेपन करेंगी, इससे हममें नव-जीवन का संचार हो जायेगा और कल हम पुनः वन-प्रदेश में विचरेंगे और मृदुल घास खायेंगे। क्यों भाई खायेंगे न ?

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों में कालिदास के प्रथम बार मंचावतरण का वर्णन है, और वह पूर्णतया एक भावुक कवि के ही अनुरूप है। अपनी भावुकता में कालिदास को यह स्मरण नहीं रहता कि हरिण का बच्चा उनकी बातें न तो समझ ही सकता है और न उनके उत्तर ही दे सकता है। वे उससे

(६) हम जिएँगे हरिणशावक ! जियेंगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण भी दे सकता है। हमें नये प्राण मिल जायेंगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल हम फिर वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खायेंगे न ? (पृ० १५)

शब्दार्थ—हरिणशावक=मृगछौना । आहत=घायल । आस्तरण= बिछौना। घृत=घी। वनस्थली=जंगल। दूर्वा=दूब, घास।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत गद्यांश श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से अवतरित है। प्रस्तुत पंक्तियों के भावों को व्यक्त करते हुए इस नाटक के नायक कालिदास रंगमंच पर प्रथम बार पदार्पण करते हैं। जिस हरिण के बच्चे को वह अपनी गोद में उठाए हुए हैं, वह दन्तुल के तीर से आहत हुआ है। उस हरिणशावक से कालिदास इस प्रकार वार्तालाप करते हुए प्रकट होते हैं, मानो वह कोई मानव-शिशु हो और उनकी बातों को समझ रहा हो। वे कहते हैं--

अरे मृगछौने ! तुम्हें भयभस्त होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कोई हमें मार नहीं सकता। हम इतने दुर्बल नहीं हैं कि कोई हमें एक ही बाण के प्रहार से मार गिराए। यह सत्य है कि हमारा शरीर अतीव मृदुल है, किन्तु हमारा मन अथवा हमारे प्राण इतने दुर्बल-कोमल नहीं हैं कि हम बाण लगने की पीड़ा को भी नहीं सह सकें। जहाँ बाण में प्राण लेने की शक्ति होती है वहाँ उँगलियों के मृदुल स्पर्श में भी तो इतनी क्षमता हो सकती है कि वे मरते प्राणी को जीवन-दान दे सकें। इसीलिए हमें नवजीवन उपलब्ध होने की पूर्ण आशा है। अब हम जाकर मृदुल बिछौने पर विश्राम करेंगे। किसी की (मल्लिका की ओर इंगित है) कोमल उँगलियाँ हमारे शरीर पर घी का लेपन करेंगी, इससे हममें नव-जीवन का संचार हो जायेगा और कल हम पुनः वन-प्रदेश में विचरेंगे और मृदुल घास खायेंगे। क्यों भाई खायेंगे न ?

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों में कालिदास के प्रथम वार मंचावतरण का वर्णन है, और वह पूर्णतया एक भावुक कवि के ही अनुरूप है। अपनी भावुकता में कालिदास को यह स्मरण नहीं रहता कि हरिण का बच्चा उनकी बातें न तो समझ ही सकता है और न उनके उत्तर ही दे सकता है। वे उससे

ऐसा रागात्मक सम्बन्ध जोड़ लेते हैं मानो बाण उस हरिणशावक के नहीं, वरन कालिदास के ही आकर लगा है।

(ख) इनमें कालिदास की भावुकता का सुष्ठु निदर्शन हुआ है।

(७) तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो, माँ! तुम जानती हो, उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा हो रही है। उस साधन-हीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही कैसे की जा सकती थी? (पृ० २५)

शब्दार्थ—अनुदार=कृपण, उदार न होना। विडम्बना=असंगति। अभावग्रस्त=कमियों से भरा।

सप्रसंग व्याख्या—मल्लिका के कथन को सुनकर कि मैंने कालिदास का अपनी भावना में वरण किया है, अम्बिका यह प्रश्न करती है कि वह तुमसे विवाह क्यों नहीं कर लेता? मल्लिका स्व-प्रेमी का पक्ष-समर्थन करते हुए कहती है कि—

माँ, तुम उनके विषय में कभी उदारतापूर्वक विचार नहीं करतीं अर्थात् तुम्हारा कालिदास के विषय में सोचने का ढंग न्यायपूर्ण नहीं होता। तुम तो जानती ही हो कि अब तक उनका जीवन कैसी-कैसी असंगतियों में व्यतीत हुआ है—उन्हें अपने जीवन में कैसे-कैसे कष्ट सहन करने पड़े हैं। तुम्हें यह भी ज्ञात है कि उन्होंने अपने मामा मातुल के यहाँ कितना अभावों से भरा और कष्टमय जीवन व्यतीत किया है—जीवन की सुख-सुविधाओं से वे किस प्रकार सर्वथा वंचित रहे हैं। तुम स्वयं ही सोचो कि ऐसा निस्साधन और संकटपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति विवाह के विषय में सोच भी कैसे सकता है?—उसके मन में विवाह का विचार जाग्रत होना असम्भव ही था।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों में इस तथ्य की स्पष्ट झलक मिलती है कि मल्लिका का कालिदास सम्बन्धी प्रेम बहुत दृढ़ है। इस प्रेम-भावना के कारण ही वह उसके पक्ष का समर्थन करती है।

(ख) इन पंक्तियों से इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि महाकवि कालिदास का बाल्यकाल बड़े अभावों और कष्टों में व्यतीत हुआ था।

(८) मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति

नहीं हो ? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है ? कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी, तो जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी ? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी ? फिर कह दो कि यह मेरी नहीं, विलोम की भाषा है। (पृ० २६)

शब्दार्थ—उपादान = सामग्री। आश्रय से = माध्यम से। गर्व = घमंड। सजीव = जानदार। प्रति = लिए, तरफ। व्यवस्था = प्रबन्ध। समाधान = हल।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत है। अम्बिका अपनी पुत्री मल्लिका से जब यह प्रश्न करती है कि कालिदास तुमसे विवाह क्यों नहीं कर लेता तो वह यह उत्तर देती है कि अब तक उनका जीवन बड़ा साधनहीन और अभावग्रस्त रहा है, अतः ऐसी दशा में वे विवाह के विषय में सोच ही कैसे सकते थे। अम्बिका की विचारधारा इससे भिन्न है। वह कहती है कि पहले तो कालिदास ने अभावों के बहाने से तुमसे विवाह नहीं किया है और अब जबकि उसके अभाव मिट जाएंगे वह तब भी विवाह नहीं करेगा। अपने इस कथन के कारण पर प्रकाश डालती हुई कहती है—

तुम कालिदास की मनोवृत्ति को समझ नहीं सकी हो, जबकि मैं उसे भली-भाँति समझती हूँ। वह तुम्हें हृदय से प्रेम नहीं करता अपितु तुम्हें एक ऐसा माध्यम या सामग्री समझता है जिसके द्वारा वह स्वयं अपने आपको प्रेम कर सकता है तथा आत्मगौरव का अनुभव कर सकता है—अभिप्राय यह कि कालिदास का तुम्हारी ओर जो थोड़ा-सा झुकाव है वह इसलिए नहीं है कि वह तुमसे अनुराग करता है, अपितु वह इसलिए है कि वह इस बहाने से अपने आपको ही प्रेम करता है—उसकी आत्मरति की भावना संतुष्ट होती है। किन्तु मैं यह पूछना चाहती हूँ कि तुम क्या एक सजीव प्राणी नहीं हो, अतः क्या तुम्हारा भावनामय प्रेम ही पर्याप्त है। क्या तुम्हें अथवा कालिदास को इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम सजीव प्राणी हो अतः तुम्हारे प्रेम में भी कल्पना और भावना के स्थान पर कुछ ठोस वास्तविकता होनी चाहिए ? तुम यह क्यों नहीं सोचतीं कि निकट भविष्य में जब मेरी मृत्यु हो जाएगी, जब मेरे अभाव में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी कि तुम्हारे खाने के लिए घर में इतना भी अनाज न होगा कि उससे एक समय के भोजन का प्रबन्ध हो सके,

उस समय तुम्हारे सामने कैसी विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी ? उस विकट परिस्थिति का तुम कैसे सामना करोगी—क्या तब तुम्हारी यह भावना ही उस विषम समस्या को हल कर दिया करेगी—क्या तब भावना को ही पहन-ओढ़ कर एवं खा-पी कर रह जाया करोगी ? क्या तुम्हें जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ नहीं व्यापेंगी । मैं समझती हूँ कि तुम्हें मेरी ये बातें अच्छी नहीं लग रही होंगी । अतः इनसे तुम यह कहकर छुटकारा पाना चाहोगी कि मैं उस विलोम की बातों को दुहरा रही हूँ, जो कालिदास के प्रति ईर्ष्या-भाव रखता है । इस ईर्ष्या के कारण जो तुम्हारे और कालिदास के सम्बन्ध के विरुद्ध मेरे कान भरता रहता है ।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों से अम्बिका की अनुभवशीलता और यथार्थ-वादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है ।

(ख) इनमें कालिदास की अहंप्रियता का अच्छा उद्घाटन हुआ है ।

(ग) अम्बिका के कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास मल्लिका से सच्चा प्रेम नहीं करता ।

(घ) इन पंक्तियों से इस तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है कि अम्बिका को विलोम की बातें सारपूर्ण प्रतीत होती हैं, जबकि मल्लिका उन्हें द्वेषपूर्ण बताया करती है ।

(६) न जाने इतने बड़े आचार्य को इसकी कविता में क्या विशेषता दिखायी देती है । रुककर अम्बिका की ओर देखता है । इस व्यक्ति को सामान्य लोक-व्यवहार तक का तो ज्ञान नहीं, और तुम लोकनीति की बात कहती हो ।···आप एक हरिणशावक को गोदी में लिये घर की ओर आ रहे थे । सौभाग्यवश मैंने बाहर ही देख लिया । मैंने प्रार्थना की कि कविकुल गुरु यह समय इस रूप में घर में जाने का नहीं है । उज्जयिनी से एक बहुत बड़े आचार्य आये हैं । आप सुनते ही लौट पड़े । जैसे रास्ते में साँप देख लिया हो । (पृ० ३०)

शब्दार्थ—सामान्य=साधारण । लोक-व्यवहार=जगरीति । हरिणशावक =हरिण का बच्चा, मृगछौना । कविकुल गुरु=कवियों के कुल के गुरु । रूप में=दशा में ।

सप्रसंग व्याख्या—मातुल लाल-पीला होता हुआ अम्बिका के घर आता है और कहता है कि मैं कालिदास से अपने सभी सम्बन्ध तोड़ रहा हूँ, क्योंकि

उसने राजकवि का पद स्वीकार करना अस्वीकार कर दिया है और कहीं चला गया है। अम्बिका उसे यह कहकर समझाती है कि तुम्हारा भागिनेय बड़ा चालाक है। वह जान-बूझकर यह नाटक खेल रहा है कि मन से इस पद को स्वीकार करना चाहते हुए भी ऊपरी मन से उसके प्रति उपेक्षा दिखा रहा है जिससे लोग उसकी खुशामद तो भी करें। अतः मातुल, मेरी दृष्टि में तो तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में बड़ा निपुण है। यह सुनकर मातुल कह उठा—

मैं नहीं समझ पा रहा कि कालिदास जैसे बुद्धू की कविता में वररुचि जैसे महान् आचार्य को क्या गुण दिखाई दिया है कि वे उसे उज्जयिनी लिवा ले जाने के लिये आये हैं। अम्बिका के कथन का उत्तर देता हुआ वह आगे कहता है कि अम्बिका, तुम तो उसे लोकनीति में निष्णात बता रही हो जबकि मैं तो यह समझता हूँ कि वह दुनियादारी की साधारण बातें तक नहीं जानता। आज का ही उदाहरण देख लो। वह मुझे एक हरिण के बच्चे को गोद में लेकर घर की ओर आता दिखाई दिया था और इसे मैं सौभाग्य की ही बात समझता हूँ कि उसको इस तरह आते हुए मैंने घर से बाहर ही देख लिया था। चूंकि उसका आचार्य वररुचि के समक्ष इस अभद्र वेश में जाना अनुचित था। अतः मैंने आपको समझाते हुए कहा कि हे कवियों के कुल के गुरु! इस समय आपको इस वेश में घर नहीं जाना चाहिए। हमारे घर उज्जयिनी से एक आचार्य आए हुए हैं। मेरे मुख से इन शब्दों का निकलना था कि आप वापिस लौट गये जैसे मार्ग में साँप दिखाई देने पर व्यक्ति पीछे लौट जाता है।

विशेष—(क) कालिदास को आचार्यों और राजपुरुषों से घृणा थी, प्रस्तुत पंक्तियों में इस तथ्य की अभिव्यंजना हुई है।

(ख) मातुल द्वारा कालिदास को कविकुल-गुरु कहकर सम्बोधित करने के मूल में उनका उपहास उड़ाने की वृत्ति थी। इस कथन में काकलोक्ति अलंकार है।

(ग) अंतिम वाक्य में उपमा अलंकार है।

(१०) 'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।'—ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जा रही हों, और चल दिये।···मेरे लिये धर्म-संकट खड़ा हो गया कि अनुनय करता हुआ आपके पीछे-पीछे जाऊँ, या अभ्यागतों को देखूँ। अब इस निक्षेप से आचार्य के पास बैठने को कहकर आया था, और यह धुरीहीन चक्र की तरह मेरे पीछे-पीछे चला आया है। (पृ० ३१)

शब्दार्थ—मुद्राओं = सिक्कों। क्रीत होने = खरीदा जाने। विरह = वियोग। धर्म-संकट = द्विविधा, असमंजस। अनुनय = प्रार्थना, खुशामद। अभ्यागतों = मेहमानों। धुरीहीन = बिना धुरी वाले। चक्र = चक्का, पहिया।

सप्रसंग व्याख्या—मातुल अम्बिका से कहता है कि मेरा कालिदास से सभी प्रकार के सम्बन्ध त्याग देना इस दृष्टि से उचित ही है कि उसे मेरी और अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने की चिन्ता नहीं है। वैसे तो वह यह सुनकर ही लौटा जा रहा था कि हमारे घर उज्जयिनी से एक बड़े आचार्य आए हुए हैं, किन्तु जब मैंने उसे यह भी बताया कि वह तुझे राजकवि के रूप में सम्मानित करने के लिए राजधानी लिवा ले जाने के लिये आये हैं, तो वह मेरी ओर क्रोधपूर्ण नेत्रों से देखते हुये जो कुछ कहने लगा था उससे मेरे तन-मन जले जा रहे हैं। कालिदास तो कालिदास ही है, जनाब की बातें तो सुनिये कि आप मेरी ओर घूरकर देखते हुए कहने लगे—

नहीं, मैं यह नहीं चाहता कि मुझे कुछ राजकीय सिक्के देकर खरीद लिया जाए—अर्थात् मुझे राजकवि का सम्मान देकर मेरी कवि-प्रतिभा को नरेश अपनी दासी बना लें, कुछ सिक्कों से मेरी आत्मा को खरीद लें और मुझे वही कुछ लिखने को विवश होना पड़े जो कुछ उज्जयिनी नरेश चाहें। अरी अम्बिका! वे तो यह बात ऐसे गर्वपूर्वक कह रहे थे मानों राज्यकोष की मुद्रायें उनके वियोग में तड़प रही हैं, उनके मन में यह व्याकुलता है कि कब कविकुल-गुरु कालिदास पधारें और हमें ग्रहण करके कृतकृत्य कर दें। मेरी ओर क्रोधित मुद्रा में देखते हुए कवि-कुल शिरोमणि तुरन्त ही वापस लौट गए और मैं इस द्विविधा में ग्रस्त हो गया कि उनकी खुशामद और चाटुकारिता करता हुआ उनके पीछे-पीछे जाऊँ, अथवा घर पर जो अतिथि आये हुए हैं उनकी देखभाल करूँ? और मैं घर लौट गया था। अब मैं इस भले आदमी निक्षेप से यह कहकर यहाँ आया था कि यह आचार्य (वररुचि) के समीप रहते हुए उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखे, किन्तु इसने मेरे कथन पर भली प्रकार ध्यान ही नहीं दिया है। आचार्य को तो वहाँ किसी व्यक्ति की आवश्यकता होगी और यह निक्षेप है कि यह उसी प्रकार मेरे पीछे लगा चला आया है जैसे धुरी से निकला हुआ चक्का चाहे जिधर लुढ़कता फिरता है।

विशेष—(क) 'मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ' कालिदास की इस उक्ति से उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व और मनस्विता पर प्रकाश

पड़ता है। वे अपनी कवि-प्रतिभा को राजा-महाराजाओं की दासी नहीं बनने देना चाहते और इसीलिए राजकवि का पद स्वीकार करने के विषय में घृणा और अनिच्छा व्यक्त कर देते हैं।

(ख) 'ऐसे कहा······रही हों' – में मानवीकार और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

(ग) अन्तिम वाक्य में उपमा अलंकार है।

(घ) धर्म संकट में पड़ना इस मुहावरे का लेखक ने सुष्ठु प्रयोग किया है।

(११) कालिदास अपनी भावुकता में भूल रहे हैं कि इस अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेंगे। योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है। कालिदास को राजधानी अवश्य जाना चाहिए। (पृ० ३४)

शब्दार्थ – भावुकता = भावों में खोना, वस्तुस्थिति की ओर ध्यान न देना। तिरस्कार = अनादर। निर्माण = रचना, संगठन। प्रतिष्ठा = आदर, सम्मान।

सप्रसंग व्याख्या – श्री मोहन राकेश द्वारा लिखित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत इन पंक्तियों में निक्षेप अम्बिका और मल्लिका से बातें करते हुए इस तथ्य पर बल देता है कि कालिदास को उज्जयिनी जाने के अवसर को ठुकराना नहीं चाहिए। इससे पूर्व अम्बिका यह कह चुकी है कि कालिदास हठ छोड़ता है या नहीं इस बात से हमें कोई प्रयोजन नहीं है, अतः निक्षेप का यह कथन मुख्यतया मल्लिका को सम्बोन्धित है। वह यह समझाता हुआ कि कालिदास के उज्जयिनी न जाने से क्या हानि हो सकती है, कहता है—

इस समय कालिदास इस मिथ्या भावना में डूबे हुए हैं कि राज्याश्रय को स्वीकार करने से उनकी स्वतंत्र कवि प्रतिभा को क्षति पहुँचेगी, कि उन्हें राजकवि बन जाने पर ठकुर-सुहाती बातें लिखने के लिए विवश होना पड़ेगा, कि स्वाभिमानी कवियों द्वारा राज्याश्रय स्वीकार करना अपनी आत्मा को राजा के हाथों बेच देने के समान है। किन्तु अपनी इस भावुकता के प्रवाह में बहते हुए वे इस तथ्य को विस्मृत कर रहे हैं कि यदि वे इस स्वर्णावसर का लाभ नहीं उठाते, तो उससे उनके कवि-व्यक्तित्व की बड़ी क्षति उठानी पड़ेगी। बात यह है कि किसी व्यक्ति की योग्यता भी उसकी काव्य-प्रतिभा की उत्तमता की दृष्टि से आवश्यक होती है, किन्तु कोई व्यक्ति मात्र योग्यता के ही कारण

उत्कृष्ट कवि नहीं बन सकता क्योंकि उसे तो उसके कवि-व्यक्तित्व के निर्माण का चतुर्थांश समझना चाहिए। किसी कवि द्वारा उत्कर्ष प्राप्त करने में उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और स्थिति का तीन-चौथाई हाथ रहता है—अर्थात् उसकी उन्नति का मूल कारण उसकी सामान्य सामाजिक दशा होती है न कि उसकी योग्यता। अपनी उच्च स्थिति के कारण साधारण प्रतिभा वाला व्यक्ति उत्तम प्रतिभा-सम्पन्न किन्तु सामाजिक दृष्टि से हीन व्यक्ति की तुलना में अधिक उन्नति कर सकता है।

विशेष—निक्षेप की उक्ति में जो सत्य छिपा हुआ है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है कि प्रतिभा की दृष्टि से रंक होते हुए भी उच्चासनों पर अधिष्ठित व्यक्ति उन पुरुषों की तुलना में अधिक उन्नति कर जाते हैं जिसकी प्रतिभा तो उच्चकोटि की होती है, किन्तु उन्हें अपनी प्रतिभा को विकसित करने का अवसर नहीं मिल पाता।

(१२) उस कटुता को केवल तुम्हीं दूर कर सकती हो, मल्लिका ! अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं, तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज हैं, जीवन-भर वही रहेंगे—एक स्थानीय कवि। जो लोग आज 'ऋतु-संहार' की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जायेंगे।

(पृ० ३४-३५)

शब्दार्थ—कटुता = कड़वापन। अवसर = मौका। रिक्त = शून्य, खाली। स्थानीय कवि = थोड़े-से प्रदेश में प्रसिद्ध।

सप्रसंग व्याख्या—कालिदास के उज्जयिनी जाने के प्रसंग को लेकर अम्बिका तो उपेक्षा व्यक्त करती है किन्तु मल्लिका उस विषय में निक्षेप की बातें बड़े ध्यानपूर्वक सुनती है। वह बातों-ही-बातों मे यह भी स्पष्ट कर देती है कि राजा और राजकीय पुरुषों के प्रति कालिदास के मन में जो कटुता भरी हुई है उसके कारण मैं अभी कुछ ही क्षण पूर्व घटित हुई घटना को समझती हूँ जिसमें एक राजपुरुष का उनसे आहत हरिणशावक के लिए झगड़ा हो चुका है। निक्षेप चाहता है कि कालिदास उज्जयिनी अवश्यमेव जाएँ, अतः वह मल्लिका से कहने लगता है—

मैं तो यह समझता हूँ कि मात्र तुम्हीं ऐसा एकमात्र प्राणी हो, जो कालिदास के मन मे राजपुरुषों और राजा के प्रति जो कड़वापन व्याप्त हो गया है उसे दूर कर सकती हो। मल्लिका ! कालिदास को उज्जयिनी जाने

के लिए प्रेरित करना इस दृष्टि से भी आवश्यक है कि सुनहरे अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करते—स्वर्णावसर बहुत ही शीघ्र समाप्त हो जाता है। तुम्हें इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि यदि कालिदास राजधानी जाकर राज-कवि का पद स्वीकार नहीं करते, तो इससे राज्य की कोई हानि नहीं होगी—वहाँ किसी दूसरे कवि को यह पद सौंपा जा सकता है और कोई भी कवि इस सम्मान को सहर्ष स्वीकार कर लेगा। हाँ, इसके सर्वथा विपरीत कालिदास द्वारा इस अवसर की उपेक्षा कर देने से बड़ी क्षति उठानी पड़ेगी, क्योंकि वे इस छोटे-से प्रदेश के कवि-मात्र ही बनकर रह जायेंगे। यहाँ रहते हुए उन्हें यह अवसर नहीं मिल सकता कि उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाए। यह सोचना भी मूर्खता ही होगी कि उन्हें ऐसा मौका फिर कभी भी मिल सकता है, क्योंकि वे व्यक्ति जो आजकल उनके ऋतुसंहार की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जायेंगे—कुछ दिनों में लोगों को यह स्मृति ही नहीं रहेगी कि इस ग्राम-प्रान्तर में कालिदास नामक कोई प्रतिभावान कवि रहता भी है।

विशेष—(क) निक्षेप का यह कथन कितना उचित है कि 'अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता'। अंग्रेजी की भी एक इसी प्रकार की कहावत प्रसिद्ध है—'Time and tide wait for none.'

(ख) निक्षेप की यह उक्ति भी बड़ी सार्थक है कि यदि कालिदास इस अवसर का लाभ नहीं उठाते तो वे एक स्थानीय कविमात्र ही रह जाएँगे। वे देश-व्यापी ख्याति नहीं प्राप्त कर पाएँगे।

(१३) कालिदास उज्जयिनी चला जायेगा ! और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे ग्राम-प्रान्तर में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ पड़ी रहेगी ? क्यों, अम्बिका ? अम्बिका कुछ न कहकर आसन पर बैठ जाती है। विलोम घूमकर उसके सामने आ जाता है। क्यों ? तुमने इतने वर्ष सारी पीड़ा क्या इसी दिन के लिए सही है ? दूर से देखने वाला ही जान सकता है इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या-क्या बीता। समय ने तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा की इकाई को तोड़कर रख दिया है। तुमने तिल-तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। और आज, जबकि उसके लिए जीवन-भर के अभाव का प्रश्न सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहतीं ? (पृ० ३८-३९)

शब्दार्थ — पीड़ा = कष्ट । अभाव = कमी, साधनहीनता । प्रश्न = समस्या । अपवाद = निन्दा ।

सप्रसंग व्याख्या — अम्बिका भी यद्यपि यह चाहती है कि कालिदास उज्जयिनी जाने से पूर्व मल्लिका के साथ विवाह कर ले, किन्तु वह इस विषय में मल्लिका के विचार सुन चुकी है तथा उसे यह आशा भी नहीं है कि कालिदास विवाह कर भी लेगा, अतः जब विलोम उससे इस सम्बन्ध में कहता है तो अनुभवी अम्बिका उसको टालना ही उचित समझती है। मल्लिका के विवाह के विषय में अम्बिका की इस उदासीनता को देखकर विलोम कहने लगता है कि—

क्या तुमने अब तक मल्लिका की हिताकांक्षा से जो अनेक प्रकार के कष्ट सहन किए हैं, वे इसी दिन को देखने के लिए सहे थे कि वह कालिदास अकेला ही उज्जयिनी चला जाए, जिसके कारण मल्लिका की सारे ग्राम-प्रान्तर में निन्दा होती रहती है। क्या तुम यह चाहती हो कि कालिदास तो मौज उड़ाने के लिए राजधानी चला जाए, और मल्लिका यहीं पड़ी लोक-निन्दा सहन करती रहे ? तुमने मल्लिका के पालन-पोषण में जितनी आपत्तियाँ सहन की हैं उनकी तुम तो भुक्तभोगिनी हो ही, दूर से देखने वालों से भी यह तथ्य छिपा नहीं रहा है कि उन्होंने तुम्हारी कैसी दुरवस्था की है—उन्होंने तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा को किस बुरी तरह से मथा है। तुम इस तथ्य का विचार करते हुए कि मल्लिका को किसी प्रकार के अभाव का अनुभव न हो, उसकी सुख-सुविधाओं के लिए स्वयं को तिल-तिल करके गलाती रही हो—उसकी सुख-सुविधाओं के ध्यान में तुम अनुदिन क्षीण होती रही हो। यह कैसी विडम्बना है कि आज तुम उसी मल्लिका के विषय में कुछ सोचना नहीं चाहतीं, जिसकी हिताकांक्षा और सुख-सुविधाओं के लिए तुमने अपने जीवन को होम कर दिया है। तुम यह क्यों नहीं सोचती कि कालिदास के चले जाने पर मल्लिका के लिए आजीवन अभाव की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

विशेष—(क) विलोम के उपर्युक्त कथन से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि वह बुरा व्यक्ति तो अवश्य है जैसाकि नाटक के तीसरे अंक की घटनाओं से स्पष्ट होता है, किन्तु वह मल्लिका का अहित नहीं चाहता। इस तथ्य को अम्बिका और कालिदास स्वीकार कर लेते तो न तो मल्लिका को

कठिनाइयों का सामना करना पड़ता और न हम विलोम से ही उतनी घृणा करते, जितनी अब करते हैं।

(ख) अपवाद का विषय होना तथा तिल-तिल कर गलना इन मुहावरों का लेखक ने सुष्ठु प्रयोग किया है।

(१४) अब भी उत्साह का अनुभव नहीं होता···? विश्वास करो तुम यहाँ से जाकर भी यहाँ से अलग नहीं होओगे। यहाँ की वायु, यहाँ के मेघ और यहाँ के हरिण, इन सबको तुम साथ ले जाओगे··। और मैं भी तुमसे दूर नहीं होऊँगी। जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत-शिखर पर चली जाऊँगी और उड़कर आते मेघों में फिर जाया करूँगी। (पृ० ४६)

शब्दार्थ—उत्साह=उमंग, जोश। विछिन्न=अलग-थलग, पृथक्।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक से उद्धृत है। निक्षेप द्वारा प्रबोधित किए जाने पर मल्लिका यह निश्चय कर लेती है कि वह येन-केन-प्रकारेण कालिदास को उज्जयिनी भेजकर ही रहेगी। वह निक्षेप के साथ जगदम्बा के मन्दिर में जाकर कालिदास को अपने घर बुला लाती है और इस तथ्य पर बल देती है कि तुम्हें अवश्य ही राजधानी जाकर राजकवि का आसन ग्रहण कर लेना चाहिए। कालिदास जब यह कहते हैं कि मैं इस ग्राम-प्रान्तर से कई सूत्रों से जुड़ा हुआ हूँ जिनमें से एक तुम भी हो, तो मल्लिका यह सोचकर कि कालिदास मेरी खुशी के लिए राजकवि का पद त्यागना चाहते हैं, वे कदाचित् यह सोच रहे हैं कि मैं उनसे अपने अन्तर्मन से जाने के लिए नहीं कह रही, तो वह कालिदास की आँखों में झाँकती हुई कहती है कि मेरी ओर देखो! तदनन्तर वह उनसे पूछती है कि—

क्या तुम्हें मेरी आँखों में झाँकने पर भी राजधानी जाने की उमंग नहीं हो रही है—अर्थात् क्या तुम्हें मेरी आँखों में यह भाव झलकता नहीं दिखाई देता कि मैं अपने अन्तर्मन से यह चाहती हूँ कि तुम उज्जयिनी चले जाओ! वह उन्हें विश्वास दिलाती हुई कहती है कि तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर नहीं हो पाओगे, मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध-सूत्र टूटने नहीं पाएगा। तुम भी यहाँ के वातावरण से पृथक् नहीं हो सकते क्योंकि यहाँ की मेघराशि, हरिण-शावकों और वायु आदि तथ्यों को अपनी स्मृति में सँजोकर ले जाओगे और वे सदैव तुम्हारे साथ बने रहेंगे। तुम वैसे तो मेरे अंतर्मन में निवास किया

ही करोगे, हाँ, जब कभी मैं तुमसे मिलना चाहा करूँगी, मेरी यह इच्छा हुआ करेगी कि मैं तुम्हारे सन्निकट पहुँच जाऊँ, तो मैं पर्वत की चोटी पर जाकर मेघों में स्वयं को समाहित कर लिया करूँगी और उनमें समाविष्ट होकर तुम्हारे समीप छा जाया करूँगी।

विशेष—मल्लिका कितनी अधिक भावनामयी या भावुक है, उसका मन कल्पना की कैसी उड़ानें भरता है, यह तथ्य प्रस्तुत पंक्तियों के अन्तिम वाक्य से भलीभाँति अभिव्यंजित हो रहा है, जिसमें वह यह इच्छा व्यक्त करती दृष्टिगोचर होती है कि मैं मेघ-घटाओं में समाविष्ट होकर तुम्हारे ऊपर फिर जाया करूँगी। उसकी इस इच्छा से बढ़कर और अधिक भावुकता और क्या हो सकती है ?

(१५) आतिथ्य की बात मत सोचो। मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि के रूप में नहीं आयी हूँ।...संभव था ये न भी आते, परन्तु मैं ही विशेष आग्रह के साथ इन्हें लायी हूँ। मैं स्वयं एक बार इस प्रदेश को देखना चाहती थी। इसके अतिरिक्त...गले से हल्का विदग्धतापूर्ण स्वर निकल पड़ता है इसके अतिरिक्त एक और भी कारण था। चाहती थी कि इस प्रदेश का कुछ वातावरण साथ ले जाऊँ। (पृ० ७२)

शब्दार्थ—आतिथ्य=अतिथि-सत्कार। आग्रह=हठ। अतिरिक्त=अलावा, सिवाय। विदग्धता=चातुर्य।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के द्वितीय अंक से अवतरित हैं। कालिदास उज्जयिनी जाकर मल्लिका की खोज-खबर लेना भूल जाते हैं और नरेश-पुत्री प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लेते हैं। हाँ, जब-जब उन्हें ग्राम-प्रान्तर की स्मृति आती है तो वे कई-कई दिवसों तक उदासीन रहने लगते हैं। यही कारण है कि जब उन्हें काश्मीर का शासक नियुक्त किया जाता है तो विदुषी प्रियंगुमंजरी कालिदास के ग्राम-प्रदेश से होकर जाने की योजना बनाती है। ग्राम-प्रान्तर में आकर जब वह मल्लिका से मिलने आती है तो मल्लिका इस संकोच में पड़ जाती है कि वह एक राजपुत्री का अतिथि-सत्कार किस रूप में करे ? जब वह उससे आसन ग्रहण करने को कहती है, तो प्रियंगुमंजरी कह उठती है कि—

तुम मेरा आदर-सत्कार करने की चिन्ता मत करो क्योंकि मैं तुम्हारे यहाँ एक अतिथि के रूप में नहीं आयी हूँ। यह भी संभव था कि मेरे प्राणेश्वर यहाँ

न भी आते, किन्तु मैं उनको यहाँ हठ करके लायी हूँ। इसके पीछे यह कारण कार्यरत है कि मैं इस ग्राम-प्रदेश को भलीभाँति देखना चाहती थी। प्रियंगुमंजरी के हृदय का मूलभाव भी आंशिक रुकावट के पश्चात् उसके मुख से निकल पड़ता है। वह अपने कथन में चातुर्य का पुट देते हुए कहने लगती है कि मेरे यहाँ आने का अन्य कारण मेरी यह अभिलाषा है कि यदि बन पड़े तो मैं अपने साथ यहाँ का कुछ वातावरण भी ले जाऊँ। अभिप्राय यह कि मैं यह समझ कर कि इस ग्राम-प्रान्तर के वातावरण की ऐसी क्या अनूठी विशेषता है जिसका स्मरण करके मेरे पति आत्मविस्मृत हो उठते हैं, उस विशिष्ट वातावरण को अपने साथ काश्मीर ले जाना चाहती हूँ।

विशेष—कालिदास जैसा कि नाटक के तीसरे अंक में भाव व्यक्त करते हैं, उस ग्राम-प्रान्तर में इसलिये नहीं आना चाहते थे कि यदि वहाँ जाकर मैं मल्लिका से मिला तो संभव है कि मल्लिका की आँखों के भाव को देखकर मैं विचलित हो जाऊँ। किन्तु प्रियंगुमंजरी को यह तथ्य बड़ा अखरता था कि वे ग्राम-प्रान्तर की याद आने पर कई दिवसों तक बड़े उद्विग्न रहते थे, अतः वह वहाँ के वातावरण का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करके, वहाँ के वातावरण को काश्मीर ले जाना चाहती थीं, वहाँ वैसा ही कृत्रिम वातावरण बनाना चाहती थीं।

(१६) ऐसे अवसरों पर उनके मन को सन्तुलित रखने के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक-एक क्षण का महत्त्व है। कभी एक क्षण के लिये भी चूक जायें, तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने लिये व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पड़ता है।···साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण में पहुँच चुके हैं। मेरा अधिक समय इसी आयास में बीतता है कि उनका बढ़ा हुआ चरण पीछे न हट जाय···बहुत परिश्रम पड़ता है इसमें। (पृ० ७४-७५)

शब्दार्थ—अवसरों=मौकों। सन्तुलित=व्यवस्थित। स्खलित=पतित, बिगड़ जाए। अनिष्ट=हानि, अमंगल। जागरूक=चौकन्ना, सचेत। चरण=कदम, क्षेत्र। आयास=चेष्टा। परिश्रम-साध्य=कठिनाई से सफलता मिलने वाला।

सप्रसंग व्याख्या—प्रियंगुमंजरी मल्लिका से बातें करती हुई इस स्थिति

का स्पष्टीकरण करती है कि कालिदास को राजधानी में रहते हुये भी जब कभी ग्राम-प्रान्तर की याद आती है तो वे उसी में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि अन्य सभी बातों के प्रति उदासीन रहने लगते हैं। उनकी यह उदासीनता अब बड़ी हानिप्रद सिद्ध हो सकती है, क्योंकि अब वे काश्मीर-नरेश के रूप में ऐसा पद संभालने जा रहे हैं, जिसमें प्रत्येक क्षण बहुमूल्य होता है। कालिदास को राजनीतिक क्षेत्र में सफल बनाने के लिए प्रियंगुमंजरी कितना प्रयास करती रहती है, इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए तथा कालिदास के ग्राम-प्रान्तर सम्बन्धी प्रेम का उद्घाटन करती हुई वह कहती है—

उन अवसरों पर जब उन्हें ग्राम-प्रान्तर की स्मृति सताने लगती है उनके मन को व्यवस्थित रखना बड़ा कठिन हो जाता है और मुझे तदर्थ बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। राजनीति का क्षेत्र साहित्य के क्षेत्र के समान सुगम-सरल नहीं हैं। उसमें प्रत्येक क्षण बहुमूल्य होता है। राजनीतिक जीवन में प्रत्येक क्षण इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि यदि एक क्षण भी असावधान रहा जाए, तो उसके बड़े भयंकर परिणाम निकल सकते हैं। राजनीति का क्षेत्र ऐसा है जिसमें क्रियाशील रहने के लिये व्यक्ति को सदैव सचेष्ट रहना पड़ता है—प्रत्येक क्षण बड़ी सावधानी से कार्य करना पड़ता है। जहाँ तक मेरे पति के जीवन का प्रश्न है, उनके जीवन का साहित्य प्रथम कदम था। किन्तु अब वे आगे बढ़कर जीवन के द्वितीय क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं और वह है राज-नीतिक जीवन का क्षेत्र। मैं सदैव यही प्रयत्न करती रहती हूँ कि जैसे वे साहित्यिक क्षेत्र में सफल सिद्ध हुए हैं उसी प्रकार उनका राजनीतिक जीवन भी सफल रहे। जिस मार्ग पर उन्होंने अब कदम बढ़ा दिया है, उसमें अब उन्हें पीछे न लौटना पड़े। राजनीतिक जीवन होता ही बड़ा कष्ट-साध्य है, उसमें लोहे के चने चबाने पड़ते हैं।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों से मुख्यतया दो तथ्यों का उद्घाटन होता है—

(क) प्रियंगुमंजरी वास्तव में ही विदुषी है और स्वपति के जीवन को अधिकाधिक सफल बनाने का प्रयास करती रहती है।

(ख) कालिदास राजधानी में रहते हुये भी ग्राम-प्रान्तर को भुला नहीं पाये हैं—वहाँ की स्मृति उन्हें व्याकुल कर देती है।

(१७) लो ! 'मेघदूत' की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थीं उसके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है ? आज उस कोमलता का और भी

साकार रूप देख लिया ? मल्लिका ठगी-सी उसकी ओर देखती रहती है। आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है, तो क्यों नहीं स्वीकार कर लेतीं। घर की भित्तियों का परिसंस्कार हो जायेगा और तुम उनके यहाँ परिचारिका बन कर रह सकोगी। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य तुम्हें चाहिए ? (पृ० ८२)

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। साकार=मूर्तिमती, सजीव। भित्तियों=दीवारों। परिसंस्कार=सुधार। परिचारिका=दासी।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत गद्यांश श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित—'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक से उद्धृत है। निक्षेप से यह सूचना पा-कर कि मैंने कालिदास को पर्वत शिखर की ओर जाते देखा है, अम्बिका और मल्लिका उनके आने की अधीरता से प्रतीक्षा करती है। मल्लिका को तो यह पूर्ण विश्वास था कि वे अवश्य आयेंगे, किन्तु पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर भी वे नहीं आते। इसके विपरीत प्रियंगुमंजरी बातों-ही-बातों में इस तथ्य का स्पष्टीकरण कर देती हैं कि वे तो ग्राम-प्रान्तर में आना भी नहीं चाहते थे और मैं ही उन्हें आग्रह करके यहाँ लाई हूँ। वह मल्लिका के समक्ष ये प्रस्ताव भी रखती हैं कि तुम मेरे साथ काश्मीर चलो तथा मैं तुम्हारे जीर्ण-शीर्ण घर की दीवारों का राजकीय स्थपतियों से परिसंस्कार कराये देती हूँ। मल्लिका जब उसके दोनों प्रस्तावों को अस्वीकार कर देती है तो वह यह कहती हुई चली जाती है कि मुझे कल की यात्रा की तैयारी करनी है। अम्बिका भी उनकी बातें सुनती रही है, अतः वह प्रियंगुमंजरी के चले जाने पर मल्लिका की कालिदास-सम्बन्धी भावना का उपहास करती हुई मेघदूत के कुछ पन्ने उसकी ओर बढ़ाते हुए कहती है—

लो, अब तुम इस मेघदूत की पंक्तियों का पाठ करती रहो। तुम कहा करती थीं न कि मेघदूत में कालिदास के हृदय की कोमलता मूर्तिमान् हो उठी है, और तुमने उस कोमलता का और भी सजीव रूप अपनी आँखों के समक्ष देख ही लिया है। मल्लिका चकित होकर स्वमाता की ओर देखने लगती है और अम्बिका उससे कहती जाती है—आज कालिदास तुम्हें तुम्हारी उस भावना का मूल्य अदा करना चाहता है जिसमें तुमने उसका वरण किया था। अब तुम इस मूल्य को स्वीकार क्यों नहीं कर लेतीं ? तुम्हारी भावना को इससे बढ़कर और क्या मूल्य हो सकता था कि तुम उसकी पत्नी की दासी

बन जाओ, तथा तुम्हारे घर की टूटी-फूटी दीवारों की मरम्मत करा दी जाये ? अभिप्राय यह कि उसे तुम्हारी मानसिक दशा से कोई प्रयोजन नहीं है, वह तो तुम्हारे घर की दीवारों की मरम्मत करा देने भर को ही तुम्हारी भावना का उचित मूल्य समझता है। तुम उसकी जीवन-सहचरी बनने के स्वप्न देखती रहती हो, किन्तु तुम अधिक-से-अधिक उसकी पत्नी की चरण-सेविका ही बन सकती हो।

विशेष—अम्बिका के इन शब्दों ने मल्लिका के हृदय को विष में बुझे बाणों के समान छलनी कर दिया होगा। ये पंक्तियाँ काकुवक्रोक्ति अलंकार से गर्भित हैं।

(१८) मैं कब कहता हूँ कि दूसरा अर्थ नहीं है ? अर्थ बहुत स्पष्ट है। वे यहाँ की हर वस्तु को विचित्र रूप में देखते हैं और उस वैचित्र्य को यहाँ से जाकर दूसरों को दिखाना चाहते हैं। तुम, मैं, यह घर, ये पर्वत, सब उनके लिए विचित्र के उदाहरण हैं। मैं तो उनकी सूक्ष्म और समर्थ दृष्टि की प्रशंसा करता हूँ जो जहाँ वैचित्र्य नहीं, वहाँ भी वैचित्र्य देख लेती है। एक कलाकार को मैंने यहाँ की धूप में अपनी छाया की अनुकृति बनाते देखा है।

(पृ० ८५)

शब्दार्थ—अर्थ=मतलब, उद्देश्य। वैचित्र्य=विचित्रता, अनोखापन। समर्थ=सामर्थ्यवान, सशक्त। अनुकृति बनाते=चित्र बनाते, नकल करते।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के द्वितीय अंक से अवतरित हैं। ग्राम-प्रान्तर की स्मृति आने पर कालिदास अन्यमनस्क हो उठा करते थे, अतः प्रियंगुमंजरी यह निश्चय करती है कि ग्राम-प्रान्तर के वातावरण की मुख्य-मुख्य बातों की अनुकृति करके काश्मीर ले जाई जाएं और उसके आधार पर वहाँ वैसे ही कृत्रिम वातावरण का निर्माण कर लिया जाए। इस उद्देश्य से वह अपने साथ बहुत से चित्रकार भी लाती है और उन्हें आदेश देती है कि यहाँ की प्रत्येक अनूठी वस्तु की प्रतिलिपि तैयार कर लो। जैसा कि हुआ करता है, राजकीय पुरुषों (राज्य कर्मचारियों) के समान ही वे चित्रकार छोटी-बडी, महत्त्वपूर्ण, और अमहत्त्वपूर्ण सभी प्रकार की वस्तुओं के चित्र उतारते फिरते हैं। विलोम मल्लिका और अम्बिका की उपस्थिति में जब उनका उपहास करता तो मल्लिका

उत्तर देती है कि इसका कोई विशेष प्रयोजन हो सकता है। मल्लिका के कथन को उपहास में उड़ाते हुए विलोम कहता है—

हाँ, मैं यह कब कह रहा हूँ कि इन बातों का कोई विशेष प्रयोजन नहीं हो सकता। मेरी समझ में तो उनके इस कृत्य का यह अर्थ समझ में आ रहा है कि उन्हें यहाँ की प्रत्येक वस्तु अनोखी और अनूठी प्रतीत होती है और उस अनूठेपन के चित्र बनाकर वे दूसरों को दिखाना चाहते हैं। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन राजकीय चित्रकारों की दृष्टि में तुम, मैं, यह घर, यहाँ के पर्वत सभी वस्तुएँ अनोखी हैं और इसीलिए वे इन सभी के चित्र बना ले जाना चाहते हैं। मैं तो उनकी उस सूक्ष्म-ग्राही दृष्टि की प्रशंसा करने को बाध्य हो रहा हूँ कि उसके प्रताप से वे उन वस्तुओं में भी विचित्रता के दर्शन कर लेते हैं जिनमें कोई भी विशेषता या अनोखापन नहीं है। मैं अधिक तो क्या कहूँ, मैंने तो एक चित्रकार को यहाँ अपनी छाया की भी प्रतिलिपि तैयार करते देखा है—अर्थात् इस ग्राम-प्रान्तर में आकर उसे अपनी छाया भी ऐसी विचित्र दिखाई दे रही प्रतीत होती है कि वह उसी का चित्र बनाने में मग्न था।

विशेष—प्रस्तुत अवतरण में नाटककार ने उन राज्य-कर्मचारियों के निठल्लेपन का खाका खींचने का प्रयास किया है जो महत्त्वपूर्ण कार्यों के करने से तो जी चुराते हैं, किन्तु बेकार के कार्यों की ओर बड़ी दिलचस्पी दिखाया करते हैं।

(१९) यह जानता कि राज-प्रासाद में रहकर पाँव तोड़ बैठूँगा तो कभी ग्राम छोड़कर वहाँ न जाता। अब पीछे से मेरा घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं पैर टिकता ही नहीं। इन चिकने शिला-खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैर को पकड़ती तो थी। मैं तो अब घर के रहते बेघर हो रहा हूँ। न बाहर रहते बनता है न अन्दर। उन श्वेत शिला-खंडों के दर्शन से ही मुझे प्रासाद का स्मरण हो आता है, जहाँ रहकर एक पाँव तोड़ आया हूँ। (पृ० ९४-९५)

शब्दार्थ—राजप्रासाद = राजमहल। ग्राम = गाँव। गृहहीन = बिना घर के। प्रासाद = महल। स्मरण = याद।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से अवतरित हैं, जिसके रचयिता श्री मोहन राकेश हैं। मातुल

प्रियंगुमंजरी और कालिदास के साथ काश्मीर चला जाता है, किन्तु उसे वहाँ का जीवन रास नहीं आता। होता यह है कि राजमहल के चिकने पत्थर के फर्श पर से उसका पैर फिसल जाता है, जिससे गिर कर उसकी एक टाँग टूट जाती है। इसी विषय में विचार व्यक्त करते हुए, जिसमें नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन की सादगी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, वह मल्लिका से कहता है—

यदि मुझे पहले ही यह तथ्य ज्ञात होता कि मैं राजमहल में रहते हुए अपनी एक टाँग से हाथ धो बैठूंगा, तो कभी भी काश्मीर जाने का नाम नहीं लेता। अब मेरा दुर्भाग्य यह है कि मेरे ग्राम के घर के फर्श को भी राजकीय स्थपतियों ने ऐसा चिकना बना दिया है कि उस पर कहीं पैर ही नहीं जमता। इस समय मेरे घर की दीवारों और फर्श में जो चिकने प्रस्तर-खंड लगे हुए हैं, उनसे तो मेरा पहला मिट्टी से निर्मित और कच्चे फर्श वाला घर ही उत्तम था, क्योंकि तब मिट्टी पर पैर तो जमकर पड़ते थे, उससे फिसलने का तो भय नहीं रहता था। अरी मल्लिका सम्प्रति तो मैं एक अच्छे-खासे गृह का स्वामी होते हुए भी घर से वंचित अर्थात् गृहहीन-जैसा हो रहा हूँ। अभिप्राय यह कि जिस घर में मैं सुविधापूर्वक रह ही नहीं सकता, वह घर मेरे लिए व्यर्थ है। अब मेरी दुर्दशा तो देखो कि न तो वर्षा के कारण मैं बाहर ही रह सकता हूँ और न चिकने फर्श वाले अपने घर में ही रह सकता हूँ। मेरे घर में जो श्वेत प्रस्तर-खंड लगे हुए हैं उनसे तो मुझे इतनी घृणा हो गई है कि जैसे ही मैं उन्हें देखता हूँ मुझे काश्मीर के महल के श्वेत प्रस्तर-खंडों की स्मृति आ जाती है और मेरे मन में यह भय व्याप्त हो जाता है कि कहीं मैं पुनः फिसल कर न गिर पड़ूं।

विशेष—मनुष्य अपने बचपन से जैसी भी परिस्थितियों में रहता है वह उन्हीं परिस्थितियों का आदी हो जाता है और उससे अच्छी परिस्थिति में भी सुखपूर्वक नहीं रह पाता, प्रस्तुत पंक्तियों में मातुल के माध्यम से नाटककार ने इसी तथ्य का उद्घाटन करने की चेष्टा की है।

(२०) नहीं, उज्जयिनी नहीं गया। वहाँ के लोगों का तो कहना है कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता। उसका राजधानी में कितना मान है। यदि काश्मीर में रहना सम्भव नहीं था, तो उसे सीधे राजधानी चले जाना चाहिये था। परन्तु

असम्भव भी नहीं हैं। एक राजनीतिक जीवन, दूसरे कालिदास। मैं आज तक दोनों में से किसी की भी धुरा नहीं पहचान पाया। मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैं समझ पाता हूँ सत्य सदा उसके विपरीत होता है और मैं जब उस विपरीत तक पहुँचने लगता हूँ, तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं जो कुछ समझ पाता हूँ, वह सदा झूठ होता है। इससे अब तुम निष्कर्ष निकाल लो कि सत्य क्या हो सकता है कि उसने संन्यास ले लिया है, या नहीं लिया। मैं समझता हूँ कि उसने संन्यास नहीं लिया, इसलिए सत्य यही होना चाहिये कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है।

(पृ० ९८)

शब्दार्थ—मान = आदर। धुरी = रहस्य, वास्तविकता। विपरीत = उल्टा। मिथ्या = झूठ। निष्कर्ष = नतीजा, परिणाम।

सप्रसंग व्याख्या—मल्लिका को उज्जयिनी-नरेश के निधन के पश्चात् काश्मीर की राजनीतिक अस्थिरता का वृत्तांत सुनाते हुए मातुल कहता है कि ऐसा सुना जाता है कि वहाँ विरोधी शक्तियों द्वारा सिर उठाने के कारण कालिदास ने काश्मीर छोड़ दिया है। यह सुनकर जब मल्लिका यह प्रश्न करती है कि क्या वे लौटकर उज्जयिनी चले गए हैं, तो मातुल उत्तर देता है—

नहीं, वह उज्जयिनी नहीं गया है। उज्जयिनी के लोग तो ऐसा सोचते हैं कि कालिदास ने संन्यास ले लिया है और वह काशी चला गया है। हाँ, मुझे इस बात पर यकीन नहीं आता। कारण यह है कि उज्जयिनी में उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है, अतः यदि उसका काश्मीर में रहना दूभर हो गया था तो उसे उज्जयिनी ही चला जाना चाहिये था। किन्तु मैं यह भी सोचता हूँ कि कालिदास का संन्यास लेकर काशी चला जाना असंभव भी नहीं है। मैं क्या बताऊं, मैं तो राजनीतिक जीवन और कालिदास को समझने का प्रयास कर करके हार गया किन्तु मुझे आज तक इन क्षेत्रों में से किसी की भी वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सका है। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मैं जो कुछ भी सोचा करता हूँ, वस्तुस्थिति उसके सर्वथा विपरीत हुआ करती है। और जब मैं उस विपरीत तक पहुँचने की चेष्टा करता हूँ अर्थात् अपने अनुमान की विरोधी बात सोचता हूँ तो वस्तुस्थिति उसके भी प्रतिकूल निकला करती है। इसीलिए प्रायः ऐसा होता है कि मैं

जो कुछ भी निष्कर्ष निकालता हूँ, वह प्रायः झूठा ही हुआ करता है। मेरे अनुमानों की इस असत्यता से तुम यह नतीजा निकाल सकती हो कि उसने संन्यास लिया है अथवा नहीं लिया, इनमें से कौन-सी बात सच हो सकती है। मेरा अनुमान है कि उसने संन्यास नहीं लिया है, अतः सच बात यह होनी चाहिये कि कालिदास ने संन्यास ले लिया है और वह काशी चला गया है।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों से मातुल की विचारधारा की असत्यता और अस्थिरता पर प्रकाश पड़ता है।

(ख) मातुल का यह कथन कथोद्‌घाटक है क्योंकि इसके माध्यम से नाटककार ने पाठक-प्रेक्षकों और मल्लिका को यह सूचना दिलवा दी है कि कालिदास ने काश्मीर त्याग दिया है और वे कदाचित् संन्यास लेकर काशी चले गये हैं।

(२१) नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिये नहीं कहा था।...मैंने इसलिये भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार सँभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभ-कामनाएं दीं—यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभ-कामनाएं ग्रहण नहीं कीं।

ग्रन्थ को हाथों में लिये जैसे अभियोगपूर्ण दृश्य से उसे देखती है। मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। (पृ० ६६)

शब्दार्थ—शासन-भार = शासक होना राज्य सँभालना। प्रत्यक्षतः = प्रकट रूप में। शुभकामनाएं = मंगलेच्छाएँ, भला होने की अभिलाषा व्यक्त करना। सार्थक = अर्थवती, धन्य। उपलब्धि = महत्त्वपूर्ण प्राप्ति। अभियोग = दोष, उलाहना।

सप्रसंग व्याख्या—मातुल से यह सूचना पाकर कि लोगों का ऐसा विश्वास है कि काश्मीर की विरोधी शक्तियों से घबड़ाकर कालिदास ने काश्मीर त्याग दिया है और वह संन्यास लेकर काशी चला गया है, मल्लिका के अंतर्मन में अंतर्द्वन्द्व छिड़ जाता है। मातुल के चले जाने पर वह सोच-विचार में डूबी हुई बुदबुदाने लगती है—

नहीं, मैं यह संभव नहीं मानती कि तुम संन्यास लेकर काशी चले गए हो। मेरा अंतर्मन कहता है कि तुमने संन्यास नहीं लिया है। मैंने तुम्हें जब ग्राम-प्रान्तर से राजधानी जाने के लिए विवश किया था, तब मेरा यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि तुम वहाँ से आकर संन्यास ले लो। मैंने तो यह भी नहीं चाहा था कि तुम अपनी काव्य-साधना से विमुख होकर एक शासक के रूप में कार्य करो। फिर भी जब तुमने मेरी अभिलाषाओं के विपरीत भी शासन-भार सँभाल लिया तो भी मैं तुम्हारी मंगलेच्छा की प्रार्थना करती रही हूँ। मैंने सदैव तुम्हें शुभ-कामनाएं ही दी हैं, यद्यपि तुमने उन्हें प्रकट रूप में स्वीकार अवश्य नहीं किया है। ऐसा कहते हुए मल्लिका कालिदास-रचित ग्रंथ को अपने हाथों पर रखकर बाँहें सीधी कर लेती है और उसकी ओर उपालंभमय दृष्टि से देखती हुई आगे कहती है कि यद्यपि मैं तुम्हारी जीवन-सहचरी बनकर नहीं रह पाई हूँ, फिर भी तुम मेरे जीवन के सदैव ही अभिन्न अंग बने रहे हो। मैं ऐसी चेष्टा करती रही हूँ कि मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध कभी टूटने नहीं पाये। जब तुम काव्य-रचनाओं के प्रणयन में अनुरत रहे हो, तब मैं अपने मन को यह कहकर समाश्वासन देती रही हूँ कि मेरा जीवन निष्फल नहीं है। यदि मेरा प्रियपात्र काव्योत्कर्ष प्राप्त करता जा रहा है तो उसकी इस सफलता की मैं भी सहभागिनी हूँ—मेरे प्रियतम की सिद्धि मेरी भी सिद्धि और उपलब्धि है।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में, जो मल्लिका के स्वगतकथन का अंश है, उसके अंतर्मन की कथा मुखरित हो उठी है। उसकी यह भावना कितनी श्लाघ्य है कि कालिदास की ओर से उपेक्षा किए जाने पर भी वह उनको अपने जीवन का अभिन्न अंग समझती रहती है और उनकी उन्नति को अपनी उन्नति और उनकी उपलब्धियों को अपनी उपलब्धियाँ समझती रहती है।

(२२) इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं इसकी देख-भाल करती हूँ।...यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी-कितनी आकृतियाँ हैं। जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ। (पृ० १००)

शब्दार्थ—जीव = प्राणी । सेवा-सुश्रूषा = देख-रेख । अभाव = साधन-हीनता । कोष्ठ = घेरा, कमरा । उपार्जित = अर्जित, प्राप्त ।

सप्रसंग व्याख्या—श्री मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक से अवतरित प्रस्तुत पंक्तियाँ भी मल्लिका के लम्बे स्वगत-कथन का अंश हैं। इन पंक्तियों में वह अपने जीवन के उस दुर्भाग्यमय अंश पर प्रकाश डालती है, जिसमें उसे विवश होकर विलोम के साथ ऐन्द्रिय-सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है और विलोम से उसके एक कन्या का जन्म होता है। अपने इस दुष्कृत्य के कारण वह लोकनिन्दा की पात्री बन जाती है। इन तथ्यों का उद्‌घाटन करती हुई वह आवेश-पूर्वक उस पालने की ओर संकेत है जिसमें उसकी पुत्री सोयी हुई है, और कहती है—

इस पालने में जो शिशु लेटा हुआ है क्या तुम उसे जानते और पहचानते हो ? यह और कोई न होकर स्वयं मैं ही हूँ जो शनैः-शनैः बड़ी होती जा रही है। अब स्थिति बदल चुकी है, पहले माँ मेरी देखभाल किया करती थीं, जबकि अब मैं इस कन्या की देख-रेख करती हूँ। हाँ, यह मेरी साधनहीनता और अभावग्रस्तता की स्थिति की संतान है। मैंने अपने हृदय के प्रकोष्ठ में जिस भावना से तुम्हें स्थान दिया था अर्थात् तुम्हें अपना पति-परमेश्वर समझा था, उस स्थान को कोई नहीं पा सका है। हाँ, मेरे मन के अभावों में, मेरी जीवन-दशा की साधनहीनता की स्थिति में मेरे जीवन में न जाने कौन-कौन प्रवेश कर गया है। शायद तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि सम्प्रति मैं अपने असली नाम को त्याग चुकी हूँ, लोग अब मुझे मल्लिका के आदरास्पद सम्बोधन से नहीं पुकारते, अपितु मैं उनके लिए अब एक विशेषण मात्र रह गई हूँ—अब वे मुझको कुलटा या वेश्या समझते हैं।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियाँ कथोद्‌घाटक तो हैं ही क्योंकि उनसे कालिदास और स्वमाता की अनुपस्थिति में मल्लिका को जैसा गर्हित जीवन व्यतीत करने को विवश होना पड़ता है, उस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है, ये पंक्तियाँ मार्मिकता की दृष्टि से भी प्रशंसनीय हैं। इनमें मल्लिका के हृदय की टीस और व्यथा बड़े करुण रूप में अभिव्यक्त हुई है।

(ख) मल्लिका की ऐसी उदात्त प्रेम-भावना की कि 'वह उसके जीवन को नष्ट करने वाले कालिदास के प्रति घृणा न रखकर अब भी प्रेम-भाव ही रखती है'—जितनी भी प्रशंसा की जाए, वही कम है।

(ग) इन पंक्तियों में मल्लिका अपने वारांगना के रूप की ओर उल्लेख करती है, किन्तु तदर्थ हम उससे घृणा न करके, उनके इस अधोपतन के लिए कालिदास को ही दोषी समझते हैं।

(२३) व्यवसायी कहते थे, उज्जयिनी में अपवाद है। तुम्हारा बहुत-सा समय वारांगणाओं के सहवास में व्यतीत होता है।...परन्तु तुमने वारांगणाओं का यह रूप भी देखा है? आज तुम मुझे पहचान सकते हो? मैं आज भी उसी तरह पर्वत-शिखर पर जाकर मेघ-मालाओं को देखती हूँ। उसी तरह 'ऋतु संहार' और 'मेघदूत' की पंक्तियां पढ़ती हूँ। मैंने अपने भाव के कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया। परन्तु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हो?

(पृ० १००)

शब्दार्थ -- व्यवसायी = व्यापारी । अपवाद = निन्दा । वारांगणाओं = वेश्याओं । साहचर्य— साथ रहने, संगति । रिक्त = खाली ।

सप्रसंग व्याख्या — 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से उद्धृत प्रस्तुत पंक्तियां भी मल्लिका के स्वगत कथन का अंश हैं। इनसे पूर्ववर्ती पंक्तियों में वह इस तथ्य का उद्घाटन कर चुकी है कि मुझे अभावग्रस्त जीवन ने वारांगणा का रूप धारण करने को विवश कर दिया है। प्रस्तुत पंक्तियों में वह अपने इस पतित-रूप का सम्बन्ध इस अपवाद के साथ जोड़ती हुई कि कालिदास का अधिकांश समय वेश्याओं की संगति में व्यतीत होता है, कहती है—

मैंने व्यवसायियों के मुख से सुना था कि उज्जयिनी में यह लोकापवाद प्रचलित है कि तुम्हारा पर्याप्त समय वेश्याओं की संगति मे व्यतीत होता है, किन्तु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि मैं भी वारांगणा बन चुकी हूँ? क्या तुमने कभी मुझ जैसी वेश्या भी देखी है? क्या अब तुम मुझे पहचान भी सकते हो? अभिप्राय यह है कि वेश्यावृति और कालचक्र ने मुझे इतना मथ डाला है कि अब मैं पहचानी तक नहीं जाती। हाँ, मेरी उस प्रेम-भावना में अब भी कोई अन्तर नहीं आया है, जिसके द्वारा मैंने तुमको अपना जीवन-धन स्वीकार किया था, और इस प्रेम-भावना के वशीभूत होकर ही मैं आज भी उस पर्वत-शिखर पर जाया करती हूँ जहाँ कभी हमने विहार किया था। गिरि-शिखर पर जाने, वहाँ जाकर नीरद घटाओ को देखने के साथ-साथ मैं अब भी उसी प्रकार तुम्हारे ऋतुसंहार और मेघदूत की पंक्तियों का पाठ करती हूँ जैसे

तुम्हारे ग्राम-प्रान्तर में होने के समय ऋतुसंहार की पंक्तियाँ दुहराया करती थी। यह तो सत्य है कि मैंने अपने हृदय के उस कोष्ठ को खाली नहीं होने दिया है जिसमें तुम्हारे प्रति प्रेम-भावना भरी हुई है, तथापि क्या तुम यह कल्पना कर सकते हो कि तुम्हारी वियोगावस्था में मुझे कितनी बाधा-विषमताएँ सहन करनी पड़ी हैं—उन बाधा-विषमताओं ने मेरे जीवन को किस तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है ?

विशेष—(क) मल्लिका के प्रस्तुत कथन में आक्रोश और व्यंग्य का गहरा पुट है, जिसे पढ़कर हमारा हृदय कालिदास के विश्वासघात के प्रति विक्षुब्ध हो उठता है।

(ख) भावनामयी मल्लिका अपने जीवन को कालिदास की स्मृति में विनष्ट कर बैठने पर भी उन्हें भुला नहीं पाती और उनकी कृतियों का पाठ करती रहती है, उनके साथ भ्रमण के लिए जाने वाले स्थानों पर विचरण करती फिरती है। उसकी दशा वास्तव में ही बड़ी दयनीय हो जाती है।

(२४) हाँ, क्योंकि सत्ता और प्रभुता का मोह छूट गया है। आज मैं उस सबसे मुक्त हूँ जो वर्षों से मुझे कसता रहा है। काश्मीर में लोग समझते हैं कि मैंने संन्यास ले लिया है परन्तु मैंने संन्यास नहीं लिया। मैं केवल मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त हुआ हूँ जिससे पुनः कालिदास के कलेवर में जी सकूं। एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खींचता था जिसे तोड़कर मैं यहाँ से गया था। यहाँ की एक-एक वस्तु में जो आत्मीयता थी, वह यहाँ से जाकर मुझे कहीं नहीं मिली। मुझे यहाँ की एक-एक वस्तु के रूप और आकार का स्मरण है। (पृ० १०४)

शब्दार्थ—सत्ता=शासन। प्रभुता=शासकत्व। मुक्त=स्वतंत्र। कलेवर=शरीर। सूत्र=धागा, सम्बन्ध। आत्मीयता=अपनापन। आकार=शक्ल। स्मरण=याद। मोह=ललक।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत गद्यांश श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से अवतरित है। काश्मीर में विरोधी शक्तियों द्वारा ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित कर दी जाती है कि उन्हें वहां का शासन-भार त्यागने को विवश होना पड़ता है। मातुल के अनुसार यद्यपि लोगों का यह अनुमान था कि वे संन्यास लेकर काशी चले गए हैं किन्तु न तो उन्होंने ऐसा किया था और न मल्लिका को ही इसका विश्वास था। हाँ,

कालिदास जब अस्त-व्यस्त दशा में मल्लिका के यहाँ पहुँचते हैं तो वह मातुल के कथन को दोहराती हुई कहती है कि उनसे मुझे आज ही तुम्हारे द्वारा काश्मीर त्याग देने की सूचना मिली थी। उसके इस कथन का वह यह कहकर स्पष्टीकरण करने लगते हैं—

हाँ, मैंने काश्मीर त्याग दिया है, क्योंकि अब मेरे मन से शासन और प्रभुत्व की ललक जाती रही है। अपने शासन-भार को त्यागकर आज मैं उन समस्त कष्टों से स्वतंत्र हो गया हूँ जो मेरी अन्तरात्मा को इतने दिनों तक पीड़ित करते रहे हैं। काश्मीर में तो लोग यह समझते हैं कि मैंने संन्यास ले लिया है किन्तु मैंने संन्यास नहीं लिया। मैं तो काश्मीर के शासन-भार को इसलिए त्याग कर आया हूँ जिससे मैं मातृगुप्त के रूप में काश्मीर का जो शासन-संचालन कर रहा था, अपने उस रूप को छोड़कर अब पुनः कालिदास के रूप में जीना चाहता हूँ—अर्थात् अब मैं पुनः कालिदास के रूप में रहते हुए काव्य-साधना करना चाहता हूँ। उज्जयिनी और काश्मीर में मुझे सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं, फिर भी इस ग्राम-प्रान्तर की वस्तुएँ मेरे मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करती रहती थीं। यहाँ की प्रत्येक वस्तु में जिस प्रकार के अपनत्व का भाव था वैसे अपनत्व का भाव मुझे कहीं भी नहीं मिला। यहाँ की प्रत्येक वस्तु की स्मृति मेरे अन्तर्मन में ऐसी बसी रही है कि मैं यहाँ की किसी भी वस्तु के स्वरूप को नहीं भूल सका हूँ—वे मुझे अब तक याद हैं।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों से कालिदास के जीवन के विषय में इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि कालिदास राजसी वैभव-विलास में रहते हुए भी उस जीवन से संत्रस्त ही रहे थे। उन्हें रह-रहकर अपने ग्राम-प्रान्तर और वहाँ की वस्तुओं की स्मृति कचोटती रहती थी, इसीलिए वे अंततः राज्य-भार त्यागकर ग्राम-प्रान्तर में वापस लौट आते हैं।

(२५) मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा······और यह आशंका निराधार नहीं थी। (पृ० १०६)

शब्दार्थ—भर्त्सना=डांट-फटकार। अनन्तर=पश्चात। प्रतिष्ठा=सम्मान। आशंका=सन्देह। छा लेगा=हावी हो जायेगा। निराधार=निर्मूल, अवास्तविक, झूठी।

सप्रसंग व्याख्या—श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से अवतरित प्रस्तुत पंक्तियाँ कालिदास द्वारा मल्लिका से कही गयी हैं। इनमें कालिदास ने उन कारणों पर प्रकाश डाला है, जिन्होंने उन्हें काश्मीर का शासन-भार संभालने के लिए अनुप्रेरित किया था। वे मल्लिका से कहते हैं—

जब तुम मुझे उज्जयिनी जाने के लिए विवश कर रही थीं तब मैं वहाँ जाने से इसलिए हिचकिचा रहा था कि मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि ग्राम-प्रान्तर में बड़ा ही अभावग्रस्त और डाट-डपट से युक्त जीवन व्यतीत करने के पश्चात् जब मैं राजकवि का सम्मानित पद प्राप्त करूँगा. तो उस परिवर्तित जीवन की मुझ पर क्या प्रतिक्रिया होगी? तब मेरे मन के किसी कोने में यह भय व्याप्त था कि राज-दरबार का रंगीन वातावरण मुझ पर हावी हो जायेगा और उससे मेरे जीवन की दिशा वदल जायेगी अर्थात् मैं यह सोचकर डरता था कि कहीं मैं विलासमय जीवन की चका-चौंध में न फँस जाऊँ और जैसा कि मेरे जीवन की घटनाओं से स्पष्ट है मेरा वह भय निर्मूल भी नहीं था, क्योंकि मैं वास्तव में ही राजधानी के विलासमय जीवन में ऐसा निबद्ध हो गया था कि इस ग्राम-प्रान्तर और यहाँ के लोगों की सुधि देना ही भूल बैठा था।

विशेष—यह एक अनुभूत तथ्य है कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक कष्टमय जीवन व्यतीत करता है सुखमय जीवन की उस पर उतनी ही अधिक सम्मोहिनी पड़ा करती है। कालिदास चूंकि अपने मामा के घर में बड़ा अभावग्रस्त और साधनहीन जीवन व्यतीत कर रहे थे अतः उन्हें यह आशंका होना स्वाभाविक ही था कि न जाने उस वातावरण का मेरा जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ेगा?

(२६) किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्य क्षेत्र मेरे कार्य क्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़ कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ। मैं अपने को आश्वासन देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूंगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूंगा। परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे-धीरे खण्डित

होता गया, होता गया। और एक दिन'''एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी सम्बन्ध था। (पृ० १०७-१०८)

शब्दार्थ—राज्याधिकारी = शासक। कार्यक्षेत्र = काम करने का स्थल या क्षेत्र। अनधिकार = अपनी सामर्थ्य से परे। क्षितिज-रेखा = वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले प्रतीत होते हैं। सहारा देता = समझाता। प्रतीक्षा = इन्तजार। खण्डित होता गया = टूटता गया।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से उद्धृत हैं। इनमें कालिदास मल्लिका से बातें करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि राजसी विलास-वैभव और शासक का जीवन मेरी मनोवृति के प्रतिकूल था। वहाँ मैं कभी सुखानुभव नहीं कर सका, यद्यपि मुझे अपने उस जीवन में पर्याप्त आदर-सम्मान मिला था और मेरी कृतियों की प्रतिलिपियाँ देश के कोने-कोने में पहुँच गयी थीं। इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं—

शायद किसी अन्य व्यक्ति के लिए ही राजसी वैभव-विलास के वातावरण में रहना स्वाभाविक और सुखप्रद हो सकता था, किन्तु उस वातावरण में रहते हुए मैं सुख नहीं प्राप्त कर सका। कारण यह था 'राज्य-कार्य का क्षेत्र मेरे कार्य-कर्म के प्रतिकूल था। उज्जयिनी और काश्मीर में रहते हुए मुझे ऐसा अनुभव होता कि मैं प्रभुत्व और सुख-सुविधाओं के आकर्षण में ग्रस्त होकर अपने कवि-कर्म के स्वाभाविक क्षेत्र से पृथक् हो गया हूँ। मैंने एक अस्वाभाविक और अनधिकार क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है। जब-जब मैं क्षितिज-रेखा की ओर दृष्टिपात् करता था तभी मेरे मन में यह व्यथा उभर उठती थी कि मैं उस विशाल प्राकृतिक क्षेत्र से विच्छिन्न होकर इस राजनीतिक जीवन के संकुचित क्षेत्र में आ बसा हूँ। जब मेरा मन इस व्यथा से अतीव व्याकुल हो उठता था, तब मैं अपने मन को यह कहकर समाश्वासन दे लिया करता था कि मैं शीघ्र ही अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लूंगा और अपने जीवन को राजनीतिक ही नहीं अपितु साहित्यिक क्षेत्र की ओर भी लगा सकूंगा—मैं अपने जीवन को दो समान भागों में बाँट लूंगा, किन्तु मैं अपनी परिस्थितियों को वशीभूत नहीं कर सका अपितु मैं उन परिस्थितियों के हाथों में खेलता रहा हूँ, वे ही मुझे अनुप्रेरित करती रही हैं। मैं जिस कल की प्रतीक्षा करता रहा था वह कभी नहीं आया और परिस्थितियाँ मेरे जीवन को चूर-चूर करती रहीं—वे मेरे जीवन को तोड़ती ही चली गयीं। एक दिन मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि परिस्थितियों ने मुझे सभी प्रकार से तोड़ कर रख दिया है। मैं अब वह व्यक्ति नहीं रहा हूँ जो ग्राम-प्रान्तर में रहते हुए अपना सम्बन्ध विशाल के जोड़े हुए था, जिसका उस विशाल प्राकृतिक परिवेश से

सम्बन्ध था, जिसके हृदय में प्राकृतिक दृश्यावली अनूठे भाव जागृत करती थी।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में नाटककार ने कालिदास के जीवन की इस विडम्बना पर प्रकाश डाला है कि वे राजकीय जीवन में सुखी नहीं रह सके थे। अपनी इन विषम परिस्थितियों को बदलने की उन्होंने बार-बार चेष्टा भी की थी, किन्तु उन्हें बहुत दिवस तक बदल नहीं सके थे। अततः जब काश्मीर में विरोधी परिस्थितियों ने सिर उठाया तो वे वहाँ का शासन त्याग कर उज्जयिनी नहीं गए, अपितु ग्राम-प्रान्तर में लौट आए थे।

(२७) काश्मीर जाते हुए मैं यहाँ से होकर नहीं जाना चाहता था। मुझे लगता था कि यह प्रदेश, यहाँ की पर्वत-शृंखला और उपत्यकाएँ मेरे सामने एक मूक प्रश्न का रूप ले लेंगी। फिर भी लोभ का संवरण नहीं हुआ। परन्तु उस बार यहाँ आकर मैं सुखी नहीं हुआ। मुझे अपने से वितृष्णा हुई। उनसे भी वितृष्णा हुई जिन्होंने मेरे आने के दिन को उत्सव की तरह माना। तब पहली बार मेरा मन मुक्ति के लिए व्याकुल हुआ था। परन्तु उस समय मुक्त होना सम्भव नहीं था। मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं इससे बचना चाहता था। उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था। मैं जानता था तुम पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, दूसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे मन के कोई वैसा भाव नहीं आएगा। और मैं यह आशा लिये हुए चला गया कि एक कल ऐसा आएगा जब मैं तुमसे यह सूत्र कह सकूंगा। और तुम्हें अपने मन के द्वन्द्व का विश्वास दिला सकूंगा।······यह नहीं सोचा कि द्वन्द्व एक ही व्यक्ति तक सीमित नहीं होता, परिवर्तन एक ही दिशा को व्याप्त नहीं करता। इसलिए आज यहाँ आकर बहुत व्यर्थता का बोध हो रहा है। (पृ० १०८-१०९)

शब्दार्थ—पर्वत-शृंखला = पर्वत की श्रेणियाँ। उपत्यकाएँ = घाटियाँ। मूक = मौन। संवरण = सँभाल पाना। वितृष्णा = घृणा। अस्थिर = व्याकुल। प्रतिक्रिया = परिणाम, प्रतीकार, बदला। विपरीत = विरुद्ध, उलटा। द्वन्द्व = संघर्ष। व्याप्त = फैला हुआ। व्यर्थता = बेकारी। बोध = ज्ञान।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक के तृतीय अंक से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों

में वे इस तथ्य का रहस्योद्‌घाटन करते हैं कि मैं काश्मीर जाते हुए ग्राम-प्रान्तर में होकर क्यों नहीं जाना चाहता था और ग्राम-प्रान्तर में आकर भी तुमसे मिलकर क्यों नहीं गया था। वे कहते हैं—

मैं काश्मीर जाते समय यहाँ से होकर इसलिए नहीं जाना चाहता था क्योंकि मुझे यह आशंका थी कि यह ग्राम-प्रान्तर, यहाँ की पर्वत-श्रेणियाँ और घाटियाँ मेरे समक्ष इस मौन प्रश्न के रूप में आ खड़ी होंगी, कि मैंने उन्हें कैसे भुला दिया है ? फिर भी मैं अपनी यहाँ आने की लालसा को दबा नहीं सका, हाँ, यहाँ आकर मैं सुखानुभव नहीं कर सका था। यहाँ आकर मुझे स्वयं से घृणा ही हुई थी। इसी प्रकार मेरे मन में उन लोगों के प्रति भी सद्‌भाव नहीं था जो मेरे आगमन पर बड़े प्रसन्न थे और उसे उत्सव के रूप में मना रहे थे। तब मैं राजकीय जीवन को छोड़ने के लिए व्याकुल हो उठा था, किन्तु उसमें सफल नहीं हो सका। मैं तुमसे मिलने के लिए इसलिए नहीं आया था क्योंकि मुझे यह भय था कि मुझे तुम्हारी प्रेमाकुल और डबडबायी आँखें अपने मार्ग से विचलित न कर दें—उनसे मेरा वह अन्तर्मन जो शासकीय जीवन से छुटकारा पाने को विकल हो रहा था, कहीं और भी अधिक व्याकुल न हो उठे। इसीलिए मैंने तुमसे मिलना बचाया था। मुझे यह तो ज्ञात था कि मेरे द्वारा तुमसे मिलने के लिए न आने पर तुम्हारे मन पर कैसे बीतेगी तथा तुम्हारी माँ और विलोम आदि लोग इस विषय में कैसी कटु बातें कहेंगे, फिर भी मैं यह सोचकर निश्चित था कि तुम मेरे विषय में प्रतिकूल भावना नहीं बनाओगी—मेरे इस उपेक्षा-भाव से भी तुम्हारे मन में घृणा या द्वेष की भावना जाग्रत नहीं होगी। ऐसा होते हुए भी मैं अपने हृदय में यह आशा सँजोये हुए काश्मीर चला गया था कि कभी ऐसा कल भी आयेगा जब मैं तुमको ये सब बातें बताकर अपने मन के बोझ को हल्का कर सकूंगा। हाँ, यह मेरा भ्रम ही था कि मैं यह नहीं सोच सका कि मानसिक संघर्ष मात्र एक व्यक्ति तक ही परिसीमित नहीं रहता, उसका प्रभाव दोनों ही दिशाओं को प्रभावित करता है। यही कारण है कि जब आज मैं इस ग्राम-प्रान्तर में लौटकर आया हूँ तो मुझे अपना जीवन बहुत ही व्यर्थ प्रतीत हो रहा है।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में नाटककार ने कालिदास के इस मानसिक संघर्ष पर प्रकाश डाला है कि वे इस भय से ग्राम-प्रान्तर में नहीं आए थे कि कहीं ग्राम-प्रान्तर में आने और मल्लिका से मिलने पर वे ग्राम-प्रान्तर के ही होकर न रह जाएँ।

प्रमुख परीक्षोपयोगी प्रकाशन

केशव काव्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन	डॉ० धर्मस्वरूप गुप्त	.. ..
कबीर की भाषा	डॉ० राधश्याम मिश्र	५० ०
संस्कृत साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डॉ० गोविन्दराम शर्मा	१० ..
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डॉ० गोविन्दराम शर्मा	१० ०
भ्रमरगीत का काव्य-वैभव	डॉ० मनमोहन गौतम	० ..
महादेवी की साहित्य साधना	डॉ० सुरेशचन्द गुप्त	१ ५०
प्रेमचन्द और उनकी रंगभूमि	डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त	४ ५०
बिहारी की काव्य-कला	प्रो० उदयभानु 'हंस'	१० ००
शकुन्तला नाटक : एक अनुशीलन	प्रो० सुधांशु चतुर्वेदी	२.५०
कबीर ग्रन्थावली	डॉ० एल. बी. राम 'अनन्त'	१५.००
साहित्य लहरी	डॉ० मनमोहन गौतम	१० ००
सूर सारावली	डॉ० मनमोहन गौतम	१० ००
जायसी ग्रन्थावली	डॉ० मनमोहन गौतम	१५ ००
विद्यापति पदावली	श्री कुमुद विद्यालंकार	१० ००
साकेत सौरभ	डॉ० नगीन चन्द सहगल	१५.००
कामायनी दीपिका	डॉ० नगीन चन्द सहगल	०.५०
प्रियप्रवास की टीका	डॉ० नगीन चन्द सहगल	१.००
आधुनिक कवि पन्त	प्रो० भारत भूषण 'सरोज'	१.५०
आधुनिक कवि महादेवी	प्रो० भारत भूषण 'सरोज'	१ ५०
कामायनी की टीका	प्रो० सरोज एवं अग्रवाल	४.००
पन्त और उनका पल्लव	प्रो० कृष्ण देव श०..	० ५०
प्रसाद और उनकी लहर	प्रो० पुरुषोत्तम लाल विज	४.००
प्रसाद और उनका आँसू	प्रो० पुरुषोत्तम लाल विज	१.५०
महाकवि निराला और उनका [illegible]	डॉ० कृष्णदेव शर्मा	१.००
महाकवि निराला और उनकी राम की शक्ति पूजा	डॉ० कृष्णदेव शर्मा	१.००
रत्नाकर और उनका उद्धवशतक	डॉ० राजेश्वर चतुर्वेदी	४.२५

सिंगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली-६